श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्री श्री भागवत पत्रिका

वर्ष—७ संख्या—११-१२

राष्ट्रभाषा हिन्दीमें श्रीश्रीरुप-रघुनाथकी वाणीकी एकमात्र वाहिका

व्यास-पूजा एवं विरह-विशेषांक

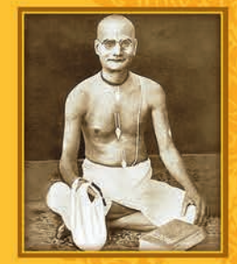

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

॥श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः॥

श्रीगौराब्द ५२४, माधव–गोविन्द मास
वि.सं. २०६७, माघ–फाल्गुन मास; सन् २०१०, २० जनवरी–१९ मार्च
वर्ष ७ संख्या ११–१२

विषय–सूची

श्रीव्यासपूजा–विशेषांक

श्रीगुरुदेवाष्टकम् ४
श्रील–विश्वनाथ–चक्रवर्त्ति–ठक्कुर

श्रीगुरु–भक्ति ८
श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्रतिमुहूर्त्तमें श्रीगुरुकी पूजा १३
श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद

गुरुसेवक ही सर्वोत्तम हैं २१

श्रील प्रभुपादकी आविर्भाव तिथिमें विरह–स्मृति २५
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

हमारे चिर पथ–प्रदर्शक ३१
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

श्रीव्यासपूजाके अवसरपर दीन–अकिञ्चनकी
श्रीहरि–गुरु–वैष्णवोंके निकट प्रार्थना ४०
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

सद्–गुरु कौन हो सकते हैं? ५२
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज

श्रीश्रीव्यास–पूजा और श्रीगौड़ीय वेदान्त ६४
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

गुरुवर्गके प्रीतिमूलक आशीर्वचन ७२

सतीर्थ गुरुभ्राताओंके शुभाकांक्षामय और स्नेहपूर्ण वचन ७९

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण
गोस्वामी महाराजके कतिपय वचनामृत ९०

विरह–विशेषांक (संख्या–१)

महाभागवतोंके द्वारा अस्वस्थ लीलाको प्रकाशित
करनेका यथार्थ तात्पर्य ११०

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण
गोस्वामी महाराजजीका श्रीराधारमणविहारीजीकी
नैश–लीलामें प्रवेश ११५

संस्थापक एवं नियामक

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद
अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके

अनुगृहीत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद त्रिदण्डिस्वामी
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

प्रेरणा-स्रोत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन
गोस्वामी महाराज

सम्पादक—श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी,
श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

प्रचार सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त वन महाराज

प्रचार सह-सम्पादिका—श्रीयुक्ता सुचित्रा देवी दासी

सहकारी सम्पादक संघ—

(१) डॉ. श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, पी-एच. डी., डी. लिट्. (संघपति)
(२) डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्ट, एम. ए., पी-एच. डी.
(३) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त तीर्थ महाराज
(४) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त सिद्धान्ती महाराज
(५) डॉ. (श्रीमती) मधु खण्डेलवाल, एम. ए., पी-एच. डी.
(६) श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन'
(७) श्रीपुरन्दर दास ब्रह्मचारी 'सेवाविग्रह'

कार्याध्यक्ष—श्रीपाद प्रेमानन्द दास ब्रह्मचारी 'सेवारत्न'

कार्यकारी मण्डल—श्रीविजयकृष्ण दास ब्रह्मचारी, श्रीमदनमोहनदास ब्रह्मचारी, श्रीअच्युतानन्द दास ब्रह्मचारी, श्रीप्राणकृष्णदास ब्रह्मचारी, श्रीगौरराजदास ब्रह्मचारी, श्रीसञ्जय दास ब्रह्मचारी, श्रीजगदीशप्रसाद दासाधिकारी, भक्त सोनु

ले-आउट और डिजाइन—श्रीकृष्णकारुण्य दास ब्रह्मचारी, श्रीकमलाकान्त दास ब्रह्मचारी, श्रीजयदेव दास ब्रह्मचारी

प्रकाशक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त माधव महाराज, पी-एच. डी.

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१ (उ. प्र.)
दूरभाष : ०८७९१२७३३०६

श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाकी ओरसे त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त माधव महाराज द्वारा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरासे प्रकाशित एवं रैक्मो प्रिन्टर्स, दिल्लीसे मुद्रित।

Visit us at:
www.purebhakti.com

e-mail:
mathuramath@gmail.com,
vijaykrsnadas@gmail.com

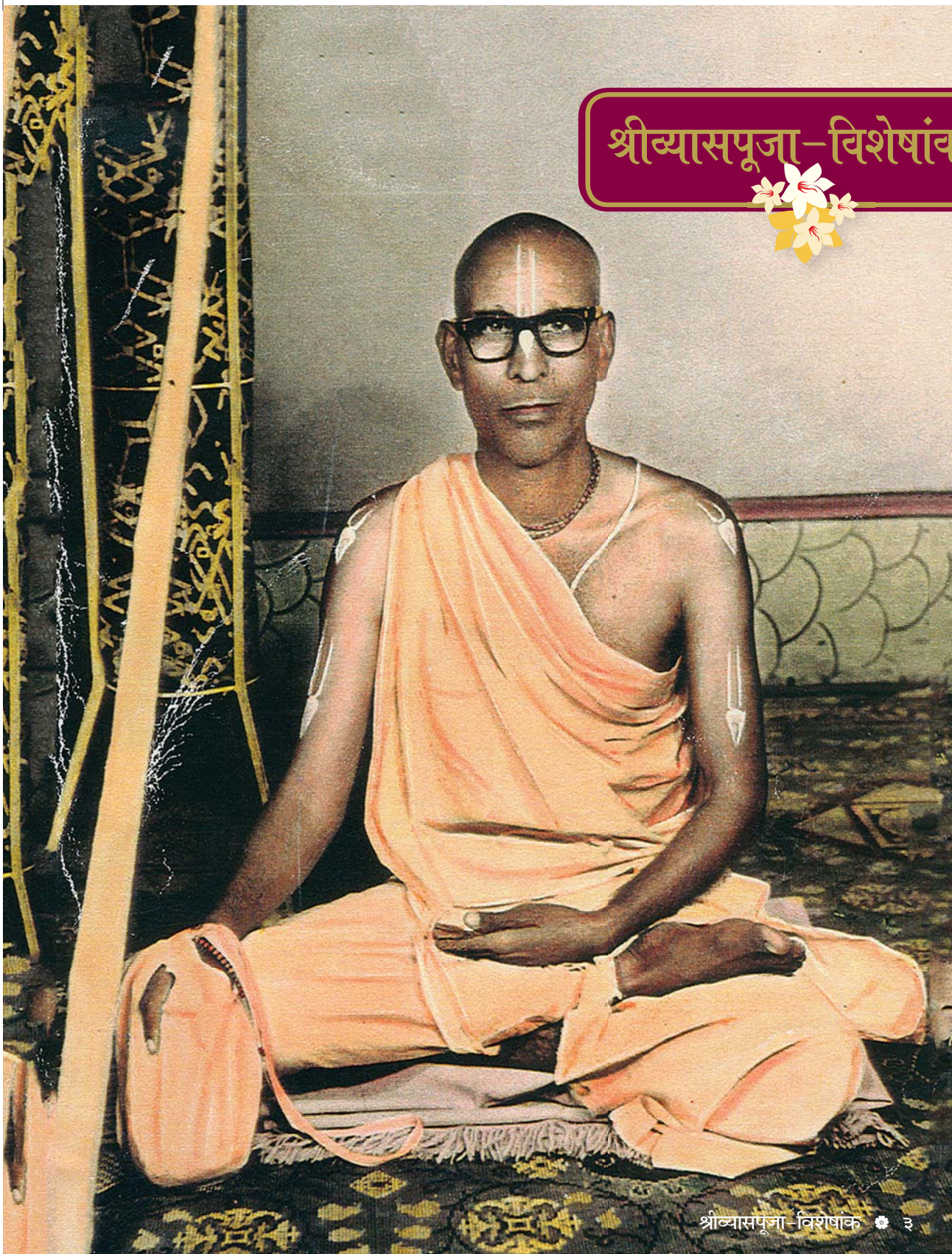
श्रीव्यासपूजा-विशेषांक

श्रीगुरुदेवाष्टकम्

श्रील–विश्वनाथ–चक्रवर्त्ति–ठक्कुर–विरचितम्

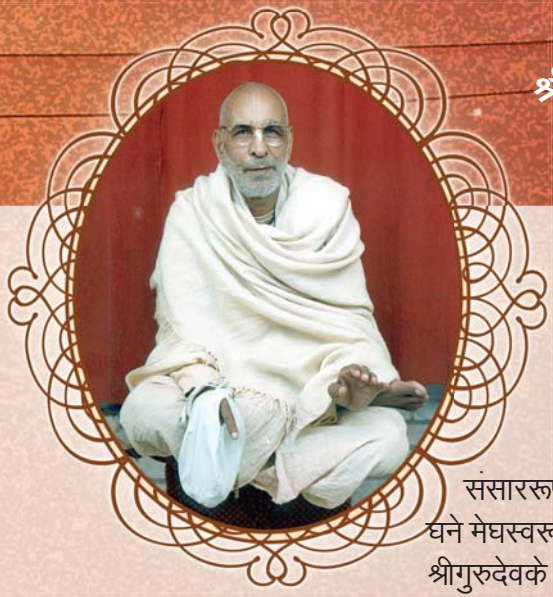

संसार–दावानल–लीढ–लोक–
त्राणाय कारुण्य–घनाघनत्वम्।
प्राप्तस्य कल्याण–गुणार्णवस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥१॥

संसाररूपी–दावानलसे सन्तप्त लोगोंकी रक्षाके लिए जो करुणाके घने मेघस्वरूप होकर कृपावारि वर्षण करते हैं, मैं उन्हीं कल्याणगुणनिधि श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी वन्दना करता हूँ॥१॥

महाप्रभोः कीर्त्तन–नृत्य–गीत–,
वादित्र–माद्यन्मनसो रसेन।
रोमाञ्च–कम्पाश्रु–तरङ्गभाजो,
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥२॥

सङ्कीर्त्तन, नृत्य, गीत तथा वाद्यादिके द्वारा उन्मत्तचित्त श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमरसमें जिनके रोमाञ्च, कम्प और अश्रु तरङ्ग उद्गत होते रहते हैं, मैं उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी वन्दना करता हूँ॥२॥

श्रीविग्रहाराधन–नित्य–नाना–,
शृङ्गार–तन्मन्दिर–मार्जनादौ।
युक्तस्य भक्तांश्च नियुञ्जतोऽपि,
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥३॥

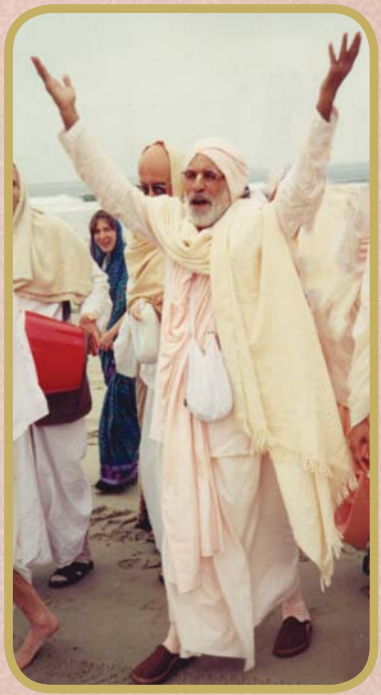

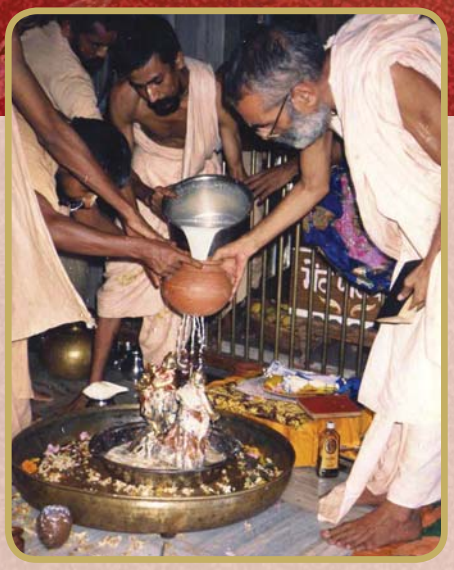

जो श्रीभगवद्विग्रहकी नित्य–आराधना, शृङ्गाररसोद्दीपक तरह–तरहकी वेश रचना और श्रीमन्दिरकी मार्जन आदि सेवाओंमें स्वयं नियुक्त रहते हैं तथा (अनुगत) भक्तजनको नियुक्त करते हैं, मैं उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी वन्दना करता हूँ॥३॥

चतुर्विध–श्रीभगवत्प्रसाद–,
स्वाद्वन्न–तृप्तान् हरिभक्तसङ्घान्।
कृत्वैव तृप्तिं भजतः सदैव,
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥४॥

जो श्रीकृष्णभक्त–वृन्दको चर्व्य, चूष्य, लेह्य और पेय–इन चतुर्विध रस–समन्वित सुस्वादु महाप्रसादान्न द्वारा परितृप्तकर (अर्थात् प्रसाद–सेवनके द्वारा प्रपञ्चनाश और प्रेमानन्दका उदय करवाकर) स्वयं तृप्ति लाभ करते हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ॥४॥

श्रीराधिका–माधवयोरपार,
माधुर्य–लीला–गुण–रूप–नाम्नाम्।
प्रतिक्षणास्वादन लोलुपस्य,
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥५॥

जो राधामाधवके अनन्त माधुर्यमय नाम, रूप, गुण और लीला समूहका आस्वादन

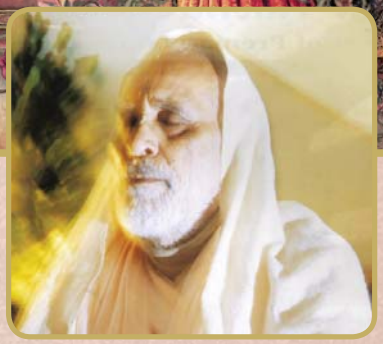

करनेके लिए सर्वदा लुब्धचित्त हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ॥५॥

निकुञ्जयूनो रतिकेलिसिद्ध्यै,
र्या यालिभिर्युक्तिरपेक्षणीया।
तत्रातिदाक्ष्यादतिवल्लभस्य,
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥६॥

निकुञ्ज बिहारी 'ब्रज–युव–द्वन्द्व' के रतिक्रीड़ा–साधनके निमित्त सखियाँ जिन युक्तियोंका अवलम्बन करती हैं, उस विषयमें अति निपुण होनेके कारण जो उनके अतिशय प्रिय हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ॥६॥

साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै–,
रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य,
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥७॥

निखिल शास्त्रोंने जिनका साक्षात् हरिके अभिन्न–विग्रहरूपसे गान किया है एवं साधुजन भी

जिनकी उसी प्रकारसे चिन्ता किया करते हैं, तथापि जो प्रभु भगवानके एकान्त प्रिय भक्त हैं, उन्हीं (भगवान्‌के अचिन्त्य–भेदाभेद–प्रकाश–विग्रह) श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ॥७॥

यस्य प्रसादाद्भगवत्प्रसादो:
यस्याप्रसादान्न गति: कुतोऽपि।
ध्यायंस्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसन्ध्यं,
वन्दे गुरो: श्रीचरणारविन्दम्॥८॥

एकमात्र जिनकी कृपा–द्वारा ही भगवद्–अनुग्रह लाभ होता है, जिनके अप्रसन्न होनेसे जीवोंका कहीं भी निस्तार नहीं है, मैं त्रिसन्ध्या उन्हीं श्रीगुरुदेवकी कीर्त्ति समूहका स्तव और ध्यान करते–करते उनके पादपद्मोंकी वन्दना करता हूँ॥८॥

श्रीमद्गुरोरष्टकमेतदुच्चैर्ब्राह्मे मुहूर्त्ते पठति प्रयत्नात्।
यस्तेन वृन्दावन–नाथ–साक्षात्–सेवैव लभ्या जनुषोऽन्त एव॥९॥

जो व्यक्ति इस गुरुदेवाष्टकका ब्राह्म मुहूर्त्तमें (सूर्योदयसे चार दण्ड पहले) अतिशय यत्नके साथ उच्चस्वरसे पाठ करते हैं, वे वस्तु–सिद्धिके समय वृन्दावनचन्द्रका सेवाधिकार प्राप्त करते हैं॥९॥

॥इति श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्तिठक्कुरविरचितस्तवामृतलहर्यां श्रीगुरुदेवाष्टकम् सम्पूर्णम्॥

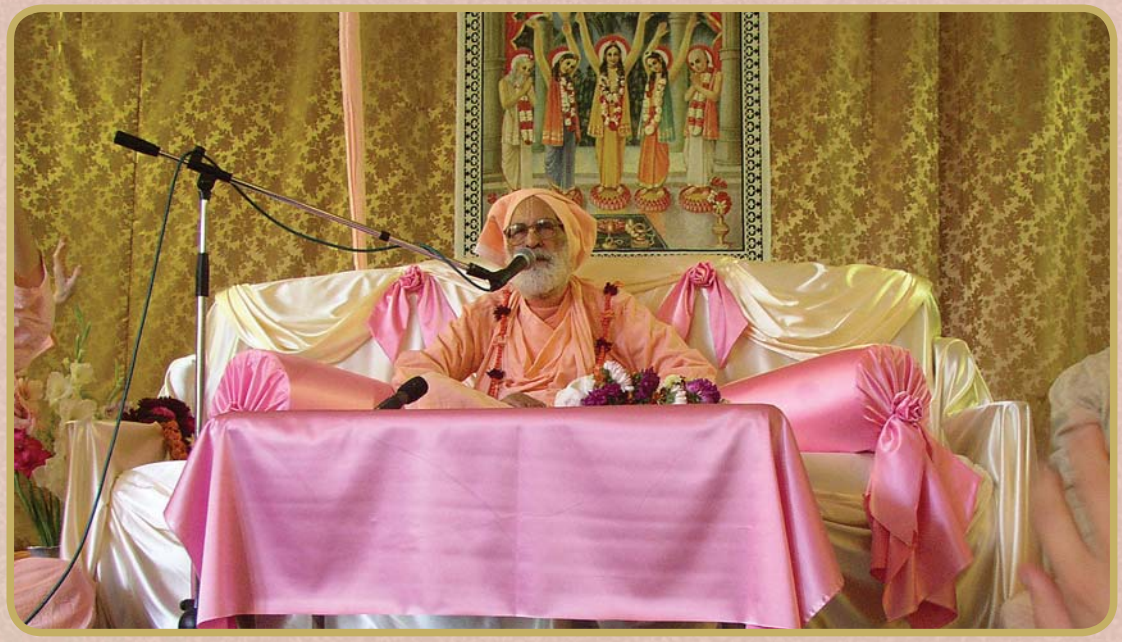

श्रीगुरु–भक्ति

ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सद्गुरुकी कृपासे यथार्थ सुखकी प्राप्ति

सुविस्तृत संसार–जालमें आबद्ध अन्धजीवगण सुखकी आशामें माया और मोह–द्वारा मुग्ध होकर इधर–उधर परिभ्रमण करते हैं; विद्या, बुद्धि, धन और मान आदि सभीमें सुखको ढूँढते हैं, परन्तु किसी भी प्रकारसे अपनेको सुखी नहीं कर पाते। इस प्रकार जीवके अनेक जन्म बीत जाते हैं। बहुत जन्मोंमें अर्जित सुकृतियोंके फलस्वरूप जब जीवके हृदयमें भगवद्–विषयिनी श्रद्धाका संचार होता है, तभी उसे सुख–प्राप्तिका आभास होता है। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, जीवगण उनके नित्य किङ्कर (दास) हैं। श्रीकृष्णके प्रति भक्ति करनेसे जीवके समस्त क्लेश दूर हो जाते हैं तथा उसे कृष्णदास्य प्राप्त होता है। इस प्रकारके दृढ़ विश्वासका नाम 'श्रद्धा' है। श्रद्धावान् जीव शीघ्र ही सद्गुरुका चरणाश्रय करता है तथा श्रीगुरुकृपाके द्वारा उसे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

जीवोंके परम-बन्धु

असीम कृपामय वैष्णवगण इस जगतके जीवोंके परम बन्धु हैं। जीवोंको कृष्ण–विमुख जानकर वे उनके निकट निरन्तर भक्तितत्त्वका प्रचार करते हैं। जब जीवगण भक्तितत्त्वमें श्रद्धावान् होकर वैष्णव–चरणाश्रय करते हैं, तब वैष्णवगण श्रीगुरुरूपसे उनको भगवद्–भजनका उपदेश प्रदान करते हैं। वे भजनविज्ञ तथा अनन्यचित्तवाले योग्य शिष्यमें कृपाका सञ्चार कर श्रीकृष्णके अप्राकृत भण्डारके दर्शनके लिए उसमें शक्ति प्रदान करते हैं। इस प्रकार वैष्णव–कृपाकी सीमा नहीं है।

शत–शत अनर्थोंसे परिपूर्ण, विभिन्न प्रकारसे मायाद्वारा मोहित, संसार–सागरमें पतित अति–क्षुद्र अधम–जीवको जो श्रीगुरुरूपमें अपने चरणोंमें स्थान देते हैं, उसके भजनविहीन जीवनका भार स्वयं ग्रहण करते हैं, अपने विशुद्ध चरित्र और सुदृढ़ भजनसे उसे मुग्धकर व शक्तिका सञ्चार कर उसे भजनमार्गमें क्रमशः अग्रसर करते हैं, यथार्थतः उनकी अपार कृपाकी कोई सीमा नहीं है। वह अनन्त और अद्भुत है। इसलिए श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय ने लिखा है–

श्रीगुरु करुणा–सिन्धु, अधम जनार बन्धु,
लोकनाथ लोकेर जीवन।
हा हा प्रभु कर दया, देह मोरे पदछाया,
एबे यश घुषुक त्रिभुवन॥
चक्षुदान दिला जेइ, जन्मे जन्मे प्रभु सेइ,
दिव्यज्ञान हृदे प्रकाशित।
प्रेमभक्ति जाँहा हइते, अविद्या विनाश जाते,
वेदे गाय जाँहार चरित॥

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका १)

[श्रीगुरुदेव करुणाके सागर हैं, अधम जनोंके परमबन्धु हैं तथा जगतके जीवनस्वरूप हैं। हे प्रभो! आप मुझपर कृपाकर अपने चरणोंकी छाया प्रदान कीजिए। आपका यश त्रिभुवनमें प्रचारित हो। जो दिव्यचक्षु प्रदानकर हृदयके अज्ञानतारूपी अन्धकारका विनाश करते हैं, दिव्य ज्ञानका प्रकाशकर हृदयमें प्रेमाभक्तिको उदित कराते हैं, स्वयं वेद भी जिनके अलौकिक चरित्रका गुणगान करते हैं, वे ही मेरे जन्म–जन्मान्तरोंके प्रभु हैं।]

दीक्षागुरु और शिक्षागुरु–दोनोंके प्रति एक जैसे सम्मानका प्रदर्शन

दीक्षागुरु और शिक्षागुरु भेदसे श्रीगुरु दो प्रकारके हैं। जिनसे मन्त्र प्राप्त होता है, वे दीक्षागुरु हैं और जिनसे भजन–शिक्षा ग्रहण की जाती है, वे ही शिक्षागुरु हैं। शिष्य दोनोंके प्रति ही एक जैसा सम्मान प्रदर्शन करेंगे, दोनोंको ही कृष्णशक्तिका प्रकाश–रूप जानेंगे, उनके प्रति किसी प्रकारकी भेद–भावना रहनेसे शिष्य अपराधी हो जायेंगे। श्रीचैतन्य–चरितामृत (आदि १/४४–४५,४७) में कथित है–

यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास।
तथापि जानिये आमि ताँहार प्रकाश॥
गुरु कृष्णरूप हन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे॥

भागवतोत्तम गुरुदेव इच्छा करनेपर शिष्यमें शक्तिसञ्चारकर उसे परमभागवत बना सकते हैं, किन्तु अयोग्य शिष्यको उस प्रकार बनानेकी श्रीगुरुदेवमें स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती।

शिक्षागुरुके त जानि कृष्णेर स्वरूप।
अन्तर्यामी, भक्तश्रेष्ठ—एइ दुइ रूप॥

[यद्यपि मेरे गुरु श्रीचैतन्य महाप्रभुके दास हैं, फिर भी मैं उन्हें उनके प्रकाशके रूपमें जानता हूँ। शास्त्रप्रमाणोंके अनुसार गुरु कृष्णके रूप हैं, कृष्ण गुरुरूपसे भक्तोंपर कृपा करते हैं। शिक्षागुरुको मैं कृष्ण स्वरूप जानता हूँ। शिक्षागुरु दो प्रकारके हैं—भजनके अनुकूल विवेकदाता चैत्यगुरु एवं भजनानन्दी महान्त—गुरु।]

श्रीगुरु—भगवानके प्रकाश-विशेष

गुरुको साक्षात् भगवान् मानना अपराध है, क्योंकि इस प्रकारके विचारसे यह 'जीव और ईश्वरमें समानता' रूप मायावाद मत हो जाता है। श्रीगुरुकी श्रीभगवानके प्रकाश—विशेष या श्रीभगवानकी शक्तिके रूपमें भक्ति करनेसे कोई दोष नहीं रहता है। प्रेममय भगवान् ही श्रीगुरुदेवमें प्रकटित होकर दीक्षा दे रहे हैं—शिष्यके मनमें इस प्रकारका भाव रहनेसे ही उसका मङ्गल होगा, श्रीगुरुवाक्यमें उसका दृढ़ विश्वास होगा और उनके प्रति अचला भक्ति होगी।

श्रीगुरु और शिष्यके लक्षण

श्रद्धावान् जीव बहुत यत्नपूर्वक सद्गुरुका चरणाश्रय करेंगे। वैष्णवाचार्य श्रील सनातन गोस्वामीने विविध शास्त्रोंसे श्रीगुरुके लक्षण और शिष्यके लक्षण अपने हरिभक्तिविलास नामक ग्रन्थमें संग्रह किये हैं। उन सभी शास्त्रवाक्योंका तात्पर्य यह है कि दृढ़—चरित्र, विशुद्धभक्त भागवतोत्तम ही जीवके गुरु हैं तथा निष्पाप, शुद्ध, श्रद्धायुक्त विनीत शिष्य ही शिक्षाके लिए उपयुक्त है। इस विचारका उल्लंघन होनेपर अनर्थ उपस्थित होता है। श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखवाक्य ये हैं—**"जेइ कृष्ण—तत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय"** (चैतन्यचरितामृत मध्य ८/१२८) [जो कृष्णतत्त्वको अच्छी तरह जानते हैं, वे ही गुरु हैं।] एवं **"गुरु यथा भक्तिशून्य तथा शिष्यगण"** (चैतन्यभागवत मध्य २१/६५) [भक्तिशून्य गुरुके शिष्य भी वैसे ही होते हैं]। प्रभुके श्रीमुखवाक्य सर्वत्र सत्य हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

गुरु और शिष्य–दोनोंका सम्बन्ध जीवनके बाद भी वर्तमान

शास्त्रमें कहा गया है कि गुरु बहुत दिनोंतक शिष्यकी परीक्षा लेंगे एवं शिष्य भी श्रीगुरुके चरित्रका सम्पूर्ण रूपसे दर्शन करेंगे। इस प्रकार दोनों एक दूसरेकी शुद्धता जाननेके बाद सम्बन्ध स्थापित करेंगे। गुरु–शिष्य—दोनोंका सम्बन्ध जीवनके बाद भी वर्तमान रहता है। यदि शिष्य यत्नके साथ ढूँढकर सद्गुरुका आश्रय नहीं करते हैं, तो वे विभिन्न कारणोंसे गुरुदेवके प्रति अचला भक्ति नहीं रख सकते और गुरुके प्रति अवज्ञा दोषके कारण परमार्थसे विच्युत हो जाते हैं। यदि गुरु अयोग्य हैं, तो शिष्य उनका परित्यागकर अन्य सद्गुरुको स्वीकार करेंगे। शिष्य यदि पतित हो जाता है और श्रीगुरु उसका संशोधन करनेमें असमर्थ होते हैं, तो गुरुको उस शिष्यका परित्याग कर देना चाहिए।

श्रीगुरुके आदेशका विशेष यत्न और दृढ़ताके साथ पालन करनेसे गुरुकृपाकी प्राप्ति

श्रीगुरुदेव शिष्यको जिस प्रकार आदेश देंगे, दृढ़ श्रद्धाके साथ शिष्यको उसका पालन करना चाहिए। वैसा न कर विभिन्न लोगोंके निकट जाकर विभिन्न प्रकारके उपदेशोंका श्रवण करनेसे लौल्य–दोषसे शिष्यका भजन नहीं होगा। यह देखना होगा कि श्रीगुरुदेव जो आदेश देते हैं, वह सत्शास्त्रविरुद्ध है या नहीं। यदि शास्त्रविरुद्ध लगता है, तो सरल भावसे श्रीगुरुके चरणोंमें उसे निवेदनकर शास्त्रवाक्यके साथ समन्वय (मेल–जोल) कर लेंगे। श्रीगुरुदेव जैसा आदेश देते हैं, विशेष यत्न और दृढ़ताके साथ उसका पालन न करनेसे किसी भी प्रकारसे गुरुकृपा प्राप्त नहीं की जा सकती।

शिष्यमें श्रीगुरुके प्रति ममता उदित होनेका क्रम

भागवतोत्तम गुरुदेव इच्छा करनेपर शिष्यमें शक्तिसञ्चारकर उसे परमभागवत बना सकते हैं, किन्तु अयोग्य शिष्यको उस प्रकार बनानेकी श्रीगुरुदेवमें स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती। जीव यत्नपूर्वक श्रीगुरुवाक्य पालनकर शीघ्र ही गुरुकृपा–रूपी धनसे धनी हो जाते हैं। श्रीगुरुकृपा क्या वस्तु है, उस समय वे समझ सकते हैं। जबतक भजनमें अनर्थ रहते हैं, तबतक यत्नपूर्वक शास्त्रोक्त विधि–निषेधोंका पालनकर श्रीगुरु–द्वारा उपदिष्ट भजन–पथ पर अग्रसर होना पड़ता है। **श्रीगुरुदेवकी कृपासे शिष्य जब अनर्थ–सागरको पारकर निष्ठा और उसके बाद रुचिके राज्यमें उपस्थित होता है, तब श्रीगुरुकृपा प्रबलरूपसे प्रवाहित होती है।** उस समय श्रीगुरुदेव उसके जीवनके धन हो जाते हैं। शिष्यमें उनके प्रति ममता उदित होती है एवं क्रमशः भजन–सौख्यकी वृद्धिके साथ वह ममता परिपक्व होकर श्रीगुरुदेवके प्रति अपूर्व दास्य–रसका विस्तार करती है। शिष्य श्रीगुरुदेवके चरणोंमें अति यत्नके साथ अपना जीवन समर्पण करते हैं।

श्रीगुरु–वाक्योंका पालन ही उनकी प्रधान सेवा

जबतक स्वाभाविक प्रीतिका उदय नहीं होता है, तबतक श्रीगुरुकृपा प्राप्तिके लिए उनकी सेवा करना शिष्यके लिए नितान्त आवश्यक है। **यत्नके साथ श्रीगुरुवाक्योंका पालन करना ही उनकी प्रधान सेवा है।** अनेक शिष्य श्रीगुरुदेवके वाक्योंका आचरण करनेमें उतना यत्न नहीं करते, किन्तु किसी प्रकार श्रीगुरुदेवका पाद–सेवन या वायु–वीजन (पंखा) करनेके लिए अत्यन्त व्यस्त हो जाते हैं। यदि सहज प्रीतिके साथ ऐसा किया जाता है, तो वह अति उत्तम है, किन्तु यदि हृदयमें कपटता रहती है या इस प्रकारकी सेवासे श्रीगुरुदेवका प्रिय बन जाऊँगा—ऐसी आशा रहती है, तो वह उतना अच्छा नहीं है, उससे श्रीगुरुदेवका प्रिय नहीं हुआ जाता। **उनके आदेशोंका पालन करनेसे वे अधिक सन्तुष्ट होते हैं।** यह निश्चित है कि उस प्रकारका सेवन बुरा नहीं है, क्योंकि वैसी सेवाके फलसे श्रीगुरुवाक्योंका पालन करनेके लिए शक्ति मिलती है एवं उसी (श्रीगुरुवाक्य–पालन) से श्रीगुरु–प्रसाद (कृपा) प्राप्त होता है। सहज प्रीतिके द्वारा सेवा करनेसे आत्मसन्तुष्टि प्राप्त होती है।

[श्रीगौड़ीय–पत्रिका (वर्ष–१२, संख्या–१०) से अनुवादित]

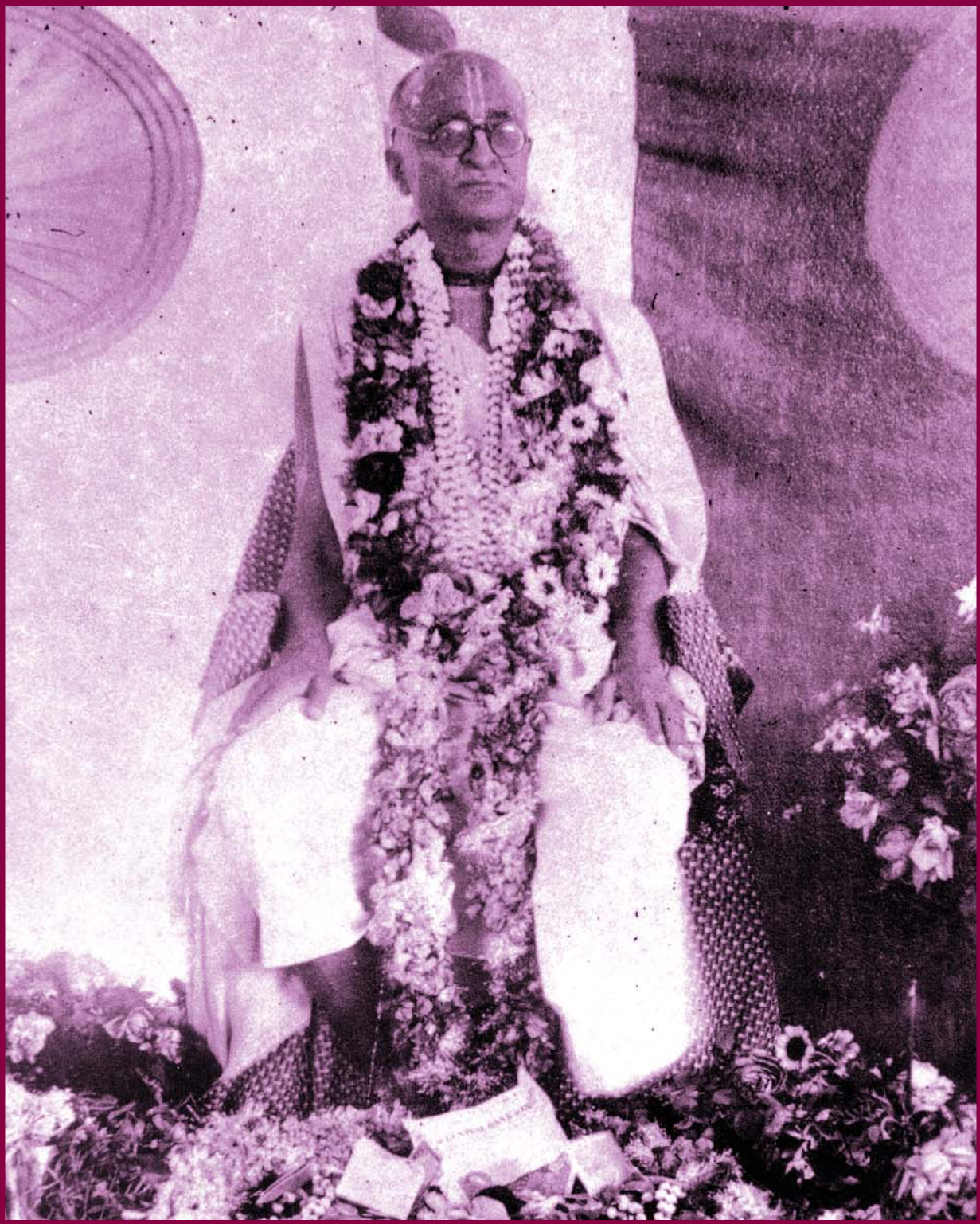

प्रतिमुहूर्त्तमें श्रीगुरुकी पूजा

श्रीव्यासपूजाके अवसरपर
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादका प्रत्यभिभाषण

स्थान—श्रीचैतन्यमठका सारस्वत नाट्यमन्दिर, मायापुर
समय—७ फरवरी १९३१, कृष्ण पञ्चमी, रात ९ बजे

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवै नमः॥

"हम सब मिलकर भगवान्‌की सेवा करेंगे"

आज मेरा श्रीगुरुदेवकी पूजा करनेका सुयोग प्राप्त दिवस है। पिछले वर्ष भी मुझे अपने गुरुदेवकी पूजा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, आज भी वैसा सुयोग उपस्थित हुआ है। भगवत्कृपासे श्रीगुरु–सेवा करनेका सुयोग हमें एक वर्षतक प्राप्त हुआ। यदि श्रीगुरुदेव हमें अपनी सेवासे वञ्चित करनेकी अभिलाषा करते, तो ऐसा होनेपर हम वर्षव्यापी जीवन लाभ नहीं कर पाते। **हमने जो यह वर्षव्यापी जीवन लाभ किया है, उसके अनुरूप हम अपने श्रीगुरुदेवकी सेवा कर पाये हैं अथवा नहीं, इस विषयकी अलोचना करनेका समय उपस्थित हुआ है।**

श्रीगुरुदेवने कहा है कि **"हम सब मिलकर भगवान्‌की सेवा करेंगे।"** इस **'हम'** शब्दके द्वारा उन्होंने केवल एक व्यक्तिको लक्ष्य करके यह बात नहीं कही है। अनेक लोग स्वार्थपर होकर कहते हैं—मैं ही सेवा करूँगा, अथवा यह केवल मेरा ही कार्य है, किसी औरका इसमें अधिकार नहीं है। किन्तु श्रीगुरुदेवका दयार्द्रचित्त कहता है—"आओ, हिंसाका परित्यागकर सभी मिलकर भगवान्‌की पूजा करते हैं। यह समस्त अभिलषित वस्तुओंमें–से सर्वश्रेष्ठ वस्तु है।" "समस्त अभिलषित वस्तुओंमें–से सर्वश्रेष्ठ वस्तु" होनेके कारण अन्य लोग इसे कर नहीं पायेंगे अथवा अन्य लोगोंको करने नहीं दूँगा, इस प्रकारकी हिंसा मेरे श्रीगुरुमें नहीं है। **सभीके द्वारा मिलकर जो कीर्त्तन किया जाता है, वही 'सङ्कीर्त्तन' है।** जैसे भक्तिसन्दर्भमें कहा गया है—**'बहुभिर्मिलित्वा यत् कीर्त्तनं, तदेव सङ्कीर्त्तनम्।'** सङ्कीर्त्तनके अन्तर्गत वन्दना–स्तुति आती है।

बाहरीरूपसे देखनेपर प्रतीत होता है कि स्तावक (स्तुति करनेवाले) का स्थान–निम्न है और स्तवनीय (स्तुतिके पात्र) का स्थान उच्च है, किन्तु इस बातका तृतीय पक्ष श्रवण करनेपर अच्छी तरहसे यह समझ सकते हैं कि स्तावककी महिमा स्तवनीय वस्तुकी अपेक्षा स्तवन–कार्यमें कितने परिमाणमें अधिक अग्रसर हुआ है और अधिक भी है।

"भगवान्‌को पुकारनेके लिये 'तृणादपि सुनीच' होना होगा।"

'भगवान्‌को पुकारनेके लिये कहा है' कहनेसे "भगवान्‌की सहायता ग्रहण करनेके लिये कहा है"—यह तात्पर्य है।

तृणादपि सुनीचता और कपटतामें अन्तर

श्रीगौरसुन्दरकी वाणी यही है कि **"भगवान्‌को पुकारनेके लिये 'तृणादपि सुनीच' होना होगा।"** कोई अपनी तुच्छताकी उपलब्धि न होने–तक किसी दूसरेको पुकारते नहीं हैं। जब हम किसी अन्यकी सहायताके लिये प्रार्थी होते हैं, तब हम स्वयंको असहाय मानते हैं—मेरे द्वारा कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो रहा है, अतएव किसी अन्यकी सहायता ग्रहण करनेके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। पाँचजनोंके मिलकर करनेसे ही जो कार्य सम्पन्न हो सकता है, वह केवल एक व्यक्ति द्वारा सम्भवपर नहीं है। "श्रीगौरसुन्दरने भगवान्‌को पुकारनेके लिये कहा है"—यह बात श्रीगुरुदेवसे पायी जाती है। **'भगवान्‌को पुकारनेके लिये कहा है' कहनेसे "भगवान्‌की सहायता ग्रहण करनेके लिये कहा है"—यह तात्पर्य है,** किन्तु यदि हम भगवान्‌को पुकारते समय उन्हें भृत्यत्व (दास) के रूपमें परिणत कर बैठते हैं अथवा अपने किसी कार्यकी पूर्ति कर लेनेके लिये उनकी सहायता ग्रहण करना चाहें, तो 'तृणादपि सुनीचता' नहीं रह सकती। **केवल बाहरीरूपसे प्रकाश होनेवाला दैन्य 'तृणादपि सुनीचता' नहीं है, वह कपटता है।** जिस प्रकारसे पुकारनेपर सभी भृत्यगण उत्तर देते हैं, वैसी पुकार भगवान्‌तक नहीं पहुँचती। कारण, वे परम स्वतन्त्र, पूर्ण चेतन वस्तु हैं, किसीके भी वशमें नहीं आते हैं। अपनी अस्मिताको निष्कपट दैन्यमें प्रतिष्ठित न करनेपर पूर्ण–स्वतन्त्र भगवान्‌के निकट हमारा आवेदन नहीं पहुँचता है।

और एक बात है, 'तृणादपि सुनीच' होकर पुकारनेके साथ यदि सहनशीलता–गुणसे सम्पन्न न हों, तो ऐसा होनेपर भी पुकारना नहीं होता है। यदि हम किसी वस्तुके प्रति लोभी होकर असहिष्णुता दिखाते हैं, तो 'तृणादपि सुनीच' भावके विरुद्ध भावावलम्बन करना होगा। यदि हम सम्पूर्णरूपसे विश्वास–युक्त होते हैं—"भगवान् पूर्ण वस्तु हैं, उनको पुकारनेपर कुछ अभाव नहीं रह सकता", ऐसा होनेपर उस समय सहनशीलताका अभाव नहीं होगा। और यदि

हम लोभी होकर, असहिष्णु होकर चञ्चलता प्रकाश करते हैं—'स्वयं अपने कुछ कृतित्व—सामर्थ्यका अवलम्बनकर कार्य सम्पन्न करूँगा'—ऐसे विचारको गाँठ बाँधकर रखते हैं, तो ऐसा होनेपर भी भगवान्‌को पुकारना नहीं होता है। आत्मम्भरिता (अपने ऊपर निर्भरता) अधिक होनेपर भी भगवान्‌को पुकारना नहीं होता है। आत्माकी सत्ताका विनाश करनेकी चेष्टामें नियुक्त रहनेपर भी पुकारना नहीं होता है।

वास्तविक मङ्गल-विधाता—आश्रयजातीय भगवान् श्रीगुरुदेव

हम अनेक समय ऐसा समझते हैं कि हम अनुग्रहकर स्तवादि करते हैं—भगवान्‌को न पुकारकर भी अन्य कार्योंमें नियुक्त हो सकते हैं—इस प्रकारकी बुद्धि भी सहनशीलताके अभावकी ही परिचायक है। इन सभी मनोभावोंसे हमारी रक्षा करनेके लिये—हम निष्कपट 'तृणादपि सुनीच' भावसे जितना वञ्चित होते हैं, उससे रक्षा करनेके लिये रक्षककी आवश्यकता है—**ऐसी दुष्प्रवृत्तिसे रक्षा करनेके लिये आश्रयकी आवश्यकता है।** ठाकुर नरोत्तम (प्रार्थना ४४) में कहते हैं—

आश्रय लईया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे,
आर सब मरे अकारण।

अर्थात् जो आश्रय ग्रहणकर भजन करते हैं, श्रीकृष्ण उन्हें त्यागते नहीं हैं, किन्तु जो आश्रय—रहित होकर भजन करते हैं, वे अकारण ही भजन—पथसे विच्युत हो जाते हैं।

श्रीगुरुदेवकी सेवा ही सबसे पहले प्रयोजन है। जगतमें कर्म, ज्ञान या अन्य अभिलाषाओंको प्राप्त करनेके लिये भी गुरुकी आवश्यकता होती है, किन्तु उन समस्त गुरुओंके द्वारा प्रदत्त विद्या तुच्छ—तुच्छ फलका ही प्रसव करती है। पारमार्थिक श्रीगुरुदेव ऐसे तुच्छ फलके प्रदाता नहीं हैं। श्रीगुरुदेव वास्तविक मङ्गल—विधाता हैं। जिस मुहूर्त्त आश्रयजातीय भगवान्‌के अनुग्रहसे रहित हो जायेंगे, उसी मुहूर्त्त जागतिक विभिन्न अभिलाषाएँ उपस्थित होंगी। यदि वर्त्म—प्रदर्शक गुरुदेव हमें यह उपदेश प्रदान न करें कि—किस प्रकार श्रीगुरुदेवका आश्रय ग्रहण करना होगा, किस प्रकार गुरुपादपद्मके साथ व्यवहार करना होगा—यह सब शिक्षा यदि न दें, तब प्राप्त—रत्नको प्राप्त करके भी भूलवश फेंकना हुआ।

एकमात्र भजन-प्रणाली स्वरूप नामभजनके प्रदाता श्रील गुरुदेवकी पूजा

नामभजन ही एकमात्र भजन—प्रणाली है। श्रीगुरुदेव यह भजन—प्रणाली ही प्रदान करते हैं, अतः वर्षके आरम्भसे ही श्रीगुरुपादपद्मकी पूजा करना ही हमारा कर्त्तव्य है। श्रीरूप गोस्वामीने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/७४) में कहा है—**"आदौ गुरुपदाश्रयस्तस्मात् कृष्णदीक्षादिशिक्षणम्। विश्रम्भेण गुरोः सेवा साधुवर्त्मानुवर्त्मनम्॥"** अर्थात् सर्वप्रथम श्रीगुरुपदाश्रयकर उनसे श्रीकृष्ण सम्बन्धित दीक्षा और शिक्षा आदि ग्रहण करनी चाहिए। तत्पश्चात् उनकी विश्रम्भभावसे सेवा करनी चाहिए और अपनेको ऐसे साधु—महापुरुषोंके पथमें चलाना चाहिए इत्यादि।

अपनी पारदर्शिताके द्वारा अज्ञेय-दुर्ज्ञेय राज्यमें अग्रसर नहीं हुआ जा सकता

अपनी सौ—सौ पारदर्शिताके द्वारा अज्ञेय राज्य, दुर्ज्ञेय राज्यमें अग्रसर नहीं हुआ जा सकता—जिस भविष्यत जगत्‌को देखने नहीं दिया जा रहा है, जिसे भविष्यकाल कहा जाता है, उसमें अपनी चेष्टाके द्वारा अग्रसर नहीं हुआ जा सकता। जहाँ अति—लोक (पारमार्थिक लोक) का विचार होता है, वहाँ इहलोकके विचार हमें पहुँचा नहीं सकते। जो समस्त वस्तुएँ कालके अन्तर्गत हो गयी हैं, केवल उन वस्तुओंमें ही इन्द्रियज्ञान प्राप्त किया है अर्थात् इन्द्रियज्ञानके द्वारा उन्हीं वस्तुओं जाना जा सकता है। किन्तु, आनेवाले कालके विषयमें मैं कुछ नहीं जानता। ये चक्षु मात्र दो—एक मील देख सकते हैं, ये कर्ण केवल कुछ दूरके शब्द सुन सकते हैं। इस प्रकारके इन्द्रियोंके गोचर ज्ञानसे इन्द्रियोंसे अतीत राज्य—पूर्ण—राज्यके विषयमें जाना नहीं जा सकता। इस प्रकारके राज्यमें केवल अपनी पारदर्शिताके द्वारा अग्रसर होनेकी चेष्टा करनेपर हम

किन्तु जो गुरुपादपद्म इन समस्त वञ्चनाओंसे हमारी रक्षा कर सकते हैं, प्रत्येक वर्षके प्रारम्भमें, प्रत्येक मासके प्रारम्भमें, प्रत्येक दिनके प्रारम्भमें, प्रत्येक मुहूर्त्तके प्रारम्भमें उन्हीं गुरुपादपद्मकी पूजा करना ही हमारा कर्त्तव्य है।

कभी भी अन्त तक भी अग्रसर नहीं हो सकते। रावणके द्वारा स्वर्गकी ओर सीढ़ी बाँधनेकी चेष्टा करनेके समान सीढ़ी कुछ दूर उठते–ना–उठते ही आश्रयके अभावमें आकाशमें, शून्यमें अधिक समय टिक नहीं सकती, चूर–चूर होकर नीचे गिर जाती है। केवल अपनी पारदर्शिताकी पूँजी लेकर अज्ञेय राज्यमें प्रवेश करनेकी इच्छा करनेपर भी हम अधःपतित हो जाते हैं और लघुको गुरु करनेपर भी हम अधःपतित हो जाते हैं।

कौन गुरु हैं और कौन नहीं?

कौन लघु है, कौन गुरु है, हम उसका विचार करेंगे। जो समस्त गुरुओंकी एकमात्र आराध्य वस्तु हैं, उसी पूर्ण वस्तुकी जो सेवा करते हैं, वही गुरु हैं। मैं सितार सिखानेवाले गुरु अथवा कसरत सिखानेवाले गुरुके विषयमें नहीं कह रहा हूँ, वे मृत्युसे रक्षा नहीं कर सकते। भागवतमें एक श्लोक भी मिलता है (५/५/१८)—"वह गुरु, गुरु नहीं है, वह पिता, पिता नहीं है, वह माता, माता नहीं है, वह देवता, देवता नहीं है, वह स्वजन, स्वजन नहीं है, जो मृत्युके मुखसे हमारी रक्षा नहीं कर सकते, हमें नित्य जीवन नहीं दे सकते। इस जड़ जगतमें अभिनिवेश–रूपी अज्ञान–मृत्युसे हमारी रक्षा नहीं कर सकते।"

प्रत्येक मुहूर्त्तके प्रारम्भमें श्रीगुरुपादपद्मकी पूजा करना ही कर्त्तव्य

अज्ञताके कारण ही मृत्युके मुखमें पतित होना पड़ता है, विज्ञतासे मृत्युके मुखमें पतित नहीं होना पड़ता। हम यहाँ जो विद्या अर्जन करते हैं, पागल होनेपर, लकवा मारे जानेपर वा मृत्युके उपरान्त उस विद्याका मूल्य नहीं रहता। यदि वास्तव सत्यका अनुसन्धान नहीं करते हैं, तो हम अचेतन हो जाते हैं। जो मृत्युके मुखसे उद्धार नहीं कर सकते, वे कुछ दिनोंके लिए ही भोगोंकी वस्तुएँ देनेवाले लोग हैं। जो वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ आदि इन्द्रियोंकी प्रेरणासे हमें लुब्ध करते रहते हैं, वे वञ्चक हैं। किन्तु जो गुरुपादपद्म इन समस्त वञ्चनाओंसे

हमारी रक्षा कर सकते हैं, प्रत्येक वर्षके प्रारम्भमें, प्रत्येक मासके प्रारम्भमें, प्रत्येक दिनके प्रारम्भमें, प्रत्येक मुहूर्त्तके प्रारम्भमें उन्हीं गुरुपादपद्मकी पूजा करना ही हमारा कर्त्तव्य है।

भिन्न–भिन्न मूर्त्तियोंमें मेरे गुरुदेव विराजमान हैं, यदि वे भिन्न–भिन्न मूर्त्तियोंमें विराज न करें, तब कौन मेरी रक्षा करेगा? मेरे गुरुदेवने जिनको अपना बना लिया है, वे मेरे उद्धारकारी हैं; किन्तु मेरे गुरुपादपद्मकी निन्दा करनेवाले हैं या जो इस प्रकार निन्दा करनेवालेको किसी प्रकारका प्रश्रय देते हैं, ऐसे अमङ्गलकारी पाषण्डीका मुख मेरे दर्शन–पथपर कभी नहीं आये।

जो प्रत्येक मुहूर्तमें मुझे अपने चरणकमलोंमें आकर्षण करके रखते हैं, मैं उन गुरुपादपद्मसे जिस क्षण भ्रष्ट होता हूँ, गुरुपादपद्मको भूल जाता हूँ, उस मुहूर्तमें मैं निश्चय ही सत्यसे विच्युत हो जाता हूँ। गुरुपादपद्मसे विच्युत होनेपर असंख्य अभाव मुझे अभिनिविष्ट करती हैं। मैं शीघ्रतापूर्वक स्नान करनेके लिये दौड़ता हूँ, शीतका निवारण करनेके लिये व्यस्त हो जाता हूँ, गुरुपादपद्मकी सेवा छोड़कर अन्य कार्योंकी ओर धावित हो जाता हूँ। जो गुरुपादपद्म मेरी इन समस्त द्वितीय अभिनिवेशोंसे अनुक्षण रक्षा करते हैं, वर्ष–मास–दिन–मुहूर्त्तके आरम्भमें यदि उन गुरुपादपद्मका स्मरण न करूँ, तब मैं निश्चय ही और भी अधिक असुविधामें पड़ जाऊँगा। **तब मैं स्वयं गुरु बननेकी इच्छा करूँगा—अन्य लोग मुझे गुरु कहकर मेरी पूजा करें, मेरी ऐसी दुर्बुद्धि आकर उपस्थित होगी—यही द्वितीय अभिनिवेश है।** आज जो हम एकदिनके लिये 'गुरुपूजा' करनेके लिये उपस्थित हुए हैं, ऐसा नहीं है, नित्य प्रतिमुहूर्त्त ही हमारे लिये गुरुपूजा है।

गौरसुन्दर साक्षात् कृष्णवस्तु हैं, वे जगत्–गुरुके रूपमें यहाँ आये हैं। उन्होंने जो 'शिक्षाष्टक' कहा है, महान्त गुरु एवं महान्त गुरुपादपद्ममें प्रणत महान्त सभी वैष्णव उसी शिक्षामें मुझे सब प्रकारसे शिक्षित करते हैं। महान्तगुरुके पादपद्ममें प्रणत सभी महान्त वैष्णव मेरा विपदसे उद्धार करते हैं।

आश्रयजातीयके रूपमें प्रत्येक वस्तुमें गुरुपादपद्मका अवस्थान

आश्रयजातीय गुरुवर्ग विभिन्न आकारोंमें–विभिन्न मूत्तियोंमें हमारे ऊपर दया करनेके लिये उपस्थित हैं। ये दिव्यज्ञानदाता गुरुपादपद्मके ही प्रकाश विशेष हैं। विभिन्न आदर्शोंमें जगद्गुरुका बिम्ब प्रतिबिम्बित होता है। प्रत्येक वस्तुमें मेरे गुरुपादपद्म प्रतिफलित हैं। विषय–जातीय कृष्ण आधा–भाग और आश्रय–जातीय आधा–भाग हैं। उन दोनोंका विलास–वैचित्र्य ही पूर्णता है। विषयजातीयकी पूर्ण प्रतीति–श्रीकृष्ण हैं और आश्रयजातीयकी पूर्ण प्रतीति—मेरे गुरुपादपद्म हैं। चेतनकी भूमिका–समूहमें जो आश्रयजातीय अप्राकृत प्रतिबिम्ब पड़ता है, वही भिन्न–भिन्न मूर्त्तियोंमें मेरे गुरुपादपद्म हैं। जो प्रत्येक क्षण यह दिखलाते हैं कि सम्पूर्ण जीवन भगवान्‌की सेवा करनी होगी, वही गुरुपादपद्म हैं। वे गुरुपादपद्म ही प्रत्येक जीवके हृदयमें प्रतिबिम्बित हो रहे हैं—आश्रयजातीयके रूपमें प्रत्येक वस्तुमें उनका अवस्थान है। वे प्रत्येक वस्तुमें विराजमान हैं—

चूत–प्रियाल–पनसासन–कोविदार–
जम्बर्क–बिल्व–बकुलाम्र–कदम्ब–नीपाः।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः
शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः॥

(श्रीमद्भा॰ १०/३०/९)

अर्थात् हे चूत, हे प्रियाल, पनस, आसन, कोविदार, जम्बु, अर्क, बिम्ब, बकुल, आम्र, कदम्ब, नीप एवं अन्यान्य परहितकर यमुनातटवासी तरुगण, तुम सभी हमें यह बतला दो कि कृष्ण किस पथसे गये हैं, कृष्णके विरहमें हमारा चित्त शून्य बोध हो रहा है।

जब कृष्ण रासस्थलीसे चले गये, तब मुक्तपुरुष गोपीगण सभी वस्तुओंके पास जा–जाकर कृष्णका अन्वेषण कर रही हैं, क्या तब गोपियोंकी आध्यक्षिकता प्रबल थी? क्या तब उनका इन्द्रियजज्ञान प्रबल था? ये सब कथाएँ हमें अपने गुरुपादपद्मसे सुननेका अवसर प्राप्त होता है। नन्दगोविन्द, यशोदागोविन्द, श्रीदाम–सुदाम–गोविन्द, चित्रक–पत्रक–गोविन्द, वंशी–गोविन्द, गो–गोविन्द,

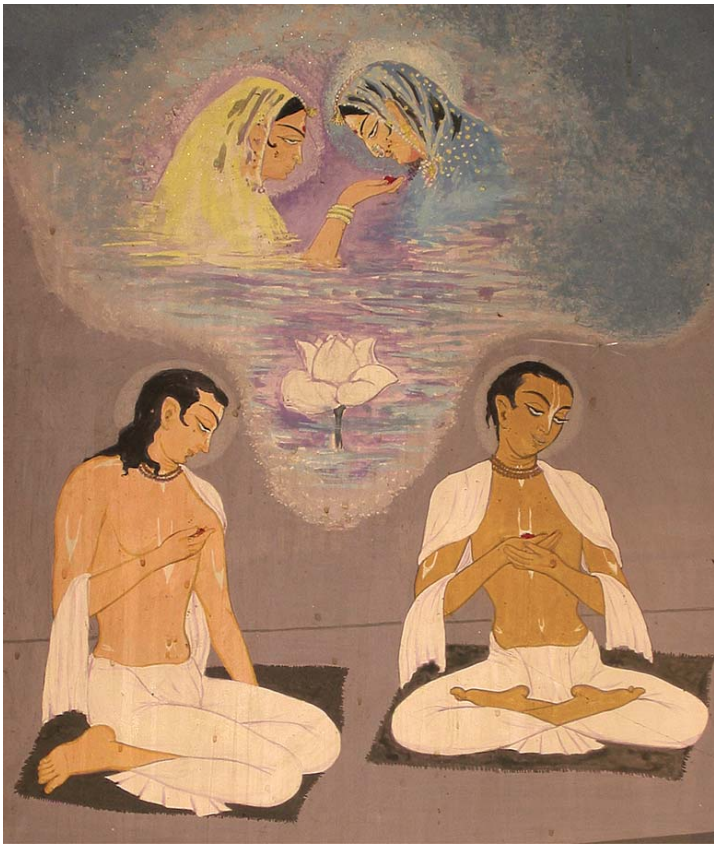

यदि चित्तमें श्रीगुरुपादपद्मका भ्रमण–पर्यटन दिखाई देता है, यदि हृदयमें गुरुपादपद्मका दर्शन होता है, तभी ये सब कथाएँ स्फुरित होती हैं।

कदम्ब–गोविन्द आदि चिद्विलास–वैचित्र्य रसमय श्रीराधा–गोविन्दका विलास–व्यापार है। **यदि चित्तमें श्रीगुरुपादपद्मका भ्रमण–पर्यटन दिखाई देता है, यदि हृदयमें गुरुपादपद्मका दर्शन होता है, तभी ये सब कथाएँ स्फुरित होती हैं।** जो प्रत्येक विषयमें हमें भगवत्सेवा करनेके लिये प्रबुद्ध करते हैं, उनकी पूजा छोड़कर पूर्ण वस्तुकी सेवा प्राप्त करनेका और कोई उपाय नहीं है।

गुरुपादपद्मके द्वारा नवीन–नवीन कथाओंको प्रकाशित करना

हमने आज भी अनेक कथाएँ सुननेका अवसर पाया है, कैसी–कैसी निष्ठाकी कथा पाई है—यद्यपि अंग्रेजी भाषामें अनेक कथाएँ कही गयी हैं, किन्तु उसमें भी हमारे सुननेके लिये अनेक विषय थे। हम भी गुरुपादपद्ममें इस प्रकारकी निष्ठा प्रदर्शन कर सकें। विभिन्न आधारोंमें प्रतिफलित श्रीगुरुपादपद्मका बिम्ब हमारी शिक्षाके लिये नित्य ही अनेक नवीन–नवीन कथाएँ प्रकाशित करते रहते हैं। मैं दाम्भिकतापूर्ण क्षुद्र जीव हूँ, मेरा यह सब सुननेका अधिकार क्यों होगा? श्रीगुरुपादपद्म मुझे यह सब निष्ठापूर्ण वाक्य सुननेका अवसर देकर प्रतिमुहूर्त्त बतलाते हैं—**"अहो क्षुद्र जीव! तुम गुरुपादपद्ममें ऐसी निष्ठा प्रदर्शन करो।"** विभिन्न आधारोंमें अपने गुरुपादपद्मकी प्रकटित मूर्त्तिकी भगवत्–सेवा–वृत्ति देखनेपर मनमें अभिलाषा होती है कि मुझे इनके साथ हरिसेवा करनेके लिये कोटि–कोटि जन्म प्राप्त हों। इनके साथ मेरी कोटि–कोटि जन्मोंकी भगवत्सेवा–विमुखता नष्ट हो जाय।

मुक्तपुरुषका दृष्टिकोण

जब मैं दक्षिणदेशमें मङ्गलगिरिपर महाप्रभुका पादपीठ प्रतिष्ठित करनेके लिये गया था, तब वहाँ हममेंसे कुछ लोगोंने प्रश्न किया था—"हम जब प्रथम बार मठमें आये थे, तब आपके बन्धु–बान्धवोंका चरित्र और भगवत्–सेवाके प्रति अनुराग देखकर हमारा उत्साह और आशा कितनी वर्द्धित हुई थी, आजकल हमारी दृष्टि क्रमशः खर्व हो रही

है, हम अनेक प्रकारके विचार करनेके लिये बैठे हैं। कुछेक ब्रह्मचारी समावर्त्तनकर गृहमें प्रवेश कर गये हैं।'

मैंने इसके उत्तरमें कहा—गृहमें प्रवेश करनेसे ही हरिभजन छोड़ देना होता है, ऐसा मैं नहीं कह सकता। मैं तो आश्चर्यपूर्ण वैष्णवोंको देख रहा हूँ! मैं उनकी वैष्णवता देख रहा हूँ—उनकी हरिभक्ति और कितनी बढ़ गई है। मैं कितना पाषण्ड था, उनके सङ्गमें मेरी पाषण्डता कितनी कम हो गई है। मैं देखा रहा हूँ कि मेरे विमुख होनेपर भी सभी हरिभजन कर रहे हैं। श्रीरघुनाथदास गोस्वामी प्रभुके पादपद्मकी कृपासे मैं जान पाया हूँ—

"वैष्णवेर निन्द्य कर्म ना पाड़े काणे।
सबे कृष्ण भजे तिंह एई मात्र जाने॥"

अर्थात् वैष्णवोंके निन्दनीय कर्म कानोंमें न पड़ें। श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीपाद केवल यही जानते थे कि सभी कृष्ण भजन कर रहे हैं।

मैं तो देख रहा हूँ कि सभी उन्नतिके पथपर अग्रसर होकर हरिभजन कर रहे हैं। भगवान्का संसार सब प्रकारसे समृद्ध हुआ है। केवल मेरा ही मङ्गल नहीं हुआ—सभीका मङ्गल हुआ है। आप लोग अल्प–अभावमें ही चञ्चल हो गये हैं, आपकी भगवत् सेवामें उत्कण्ठा अधिक है; तभी ऐसा कह रहे हैं, वे और भी अधिक भावसे हरिभजन करें, उनको हरिभजन करते देखकर भी आपकी तृप्ति नहीं हो रही है। आप लोग चाहते हैं कि, वे लोग आपके प्राण–प्रभुकी सेवा और कोटिगुण अधिक भावसे करें; किन्तु मेरा क्षुद्र हृदय—मेरा क्षुद्र आधार है, इसीलिये उनके विपुल हरिभजनको मैं अपने क्षुद्र भाजनसे पकड़ नहीं पा रहा हूँ, मेरे क्षुद्र पात्रसे उनकी हरिभजनकी चेष्टा छिटककर गिर गई है। इनके हरिभजनकी कथा मैं अपने क्षुद्र आधारपर रख नहीं पा रहा हूँ। ये लोग कैसे आश्चर्य–आश्चर्य आदर्श जीवन दिखलाकर चले जा रहे हैं। केवल मैं ही हरिभजन नहीं कर पाया; मैं केवल दूसरेके छिद्र देखनेमें ही व्यस्त हूँ, मैं कैसे भजनके पथपर अग्रसर होऊँगा? मैं तो वैष्णवोंके छिद्र अन्वेषण करनेमें ही व्यस्त हो गया हूँ।

हरिभजनसे विमुख व्यक्तिकी स्थिति

वैष्णवोंके छिद्र कौन अन्वेषण करते हैं? आध्यक्षिक सम्प्रदाय—जिनके बाह्यविषयोंसे प्रताड़ित चक्षु, नाख, कर्ण आदि सम्बल हैं—**जो हरिभजन विमुख हैं, वे।** जब मुझे कोई कहता है कि किसी व्यक्तिने हरिनाम छोड़ दिया है, तो मैं समझता हूँ कि निश्चय ही उसका हरिभजन बहुत अधिक हुआ है, उसका हृदय बहुत उन्नत हो रहा है, तभी एकमात्र मङ्गलके पथ–स्वरूप हरिभजनको छोड़कर वह अन्य कार्यमें व्यस्त हो गया है। जो धनी हो गये हैं, वे तृप्तिलाभ करनेके कारण ही और धनार्जनका क्लेश नहीं लेना चाहते।

गीतामें भगवान्ने कहा है कि भगवान्के किसी भी भक्तका कभी भी अमङ्गल नहीं होता है—उनका कभी भी विनाश नहीं है—(श्रीगी॰ ९/३१) **"न मे भक्तः प्रणश्यति।"**

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(श्रीगी॰ ९/३०–३१)

जिन्होंने अनन्य–भावसे भजन किया है, क्या वे कभी अधःपतित हो सकते हैं? निश्चय ही उन्होंने मङ्गल लाभ किया है। हमारी दृष्टि खराब है; तभी हम स्वयं ही अपना मङ्गल लाभ नहीं कर पा रहे हैं।

परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्।
विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च॥

(श्रीमद्भा॰ ११/२८/१)

अर्थात् आश्रय प्रकृति और विषय पुरुषके मिलनमें विश्वको एक स्वरूप देखकर किसी अन्यके स्वभाव और कर्मकी कभी भी प्रशंसा अथवा निन्दा नहीं करनी चाहिये।

आध्यक्षिक हो जानेसे मैं अधोक्षजकी सेवासे वञ्चित हो जाऊँगा—गुरुपादपद्मकी सेवासे वञ्चित हो जाऊँगा। मेरा अपना अमङ्गल होनेपर ही अन्यके अमङ्गलकी बात मेरे मनमें आती है। मैं स्वयं छिद्रयुक्त होनेके कारण ही अन्य लोगोंके छिद्रानुसन्धानके प्रति आकृष्ट होता हूँ। अपना

मङ्गल कर लेनेमें सामर्थ्य होनेपर फिर दूसरोंके अमङ्गल, दूसरोंके छिद्र देखनेका समय नहीं हुआ करता।

कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत
दीक्षास्ति चेत् प्रणतिमिश्च भजन्तमीशम्।
शुश्रूशाया भजनविज्ञमनन्यमन्य–
निन्दादिशून्यहृदमीप्सितसङ्गलब्ध्या॥

(उपदेशामृतम् ५)

अर्थात् यदि कोई सद्गुरुपादपद्ममें दीक्षित होकर कृष्णनामका गान करता है, तो उसे हृदयसे आदर करना चाहिये एवं हरिभजनमें प्रवृत्त होकर नाम भजन करनवालेकी प्रणाम आदिके द्वारा सम्मान करना चाहिये। और ऐकान्तिक कृष्णाश्रित, कृष्णके अतिरिक्त अन्य प्रतीतिरहित होकर निन्दा–वन्दना आदि भेदभाव शून्य–हृदय, भजन–विज्ञ महाभागवतको स्वजातीयाशय स्निग्धगणोंमें सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ उत्तम सङ्ग जानकर मध्यम अधिकारी प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवाके द्वारा उनका आदर करेंगे।

जीवन अल्पकालस्थायी है। हम पिछले वर्ष यहाँ श्रीगुरुपादपद्मकी पूजा करनेके लिये मिलित हुए थे। भगवान्ने जिनपर कृपा की, वे चले गये और हम दूसरोंके छिद्रोंका अनुसन्धान करनेके लिये–'तृणादपि सुनीचेन' के अभावका आदर्श दिखानेके लिये इस देवीधामपर विषयभोगमें व्यस्त हैं।

श्रीगुरुपादपद्म दूसरोंके छिद्र दर्शन करनेसे निवृत्त रहते हैं; किन्तु मेरा अमङ्गल, मेरे शत–सहस्र छिद्रोंको सर्वदा दिखलानेके अलावा श्रीगुरुपादपद्मका और कोई कृत्य नहीं है। श्रीगुरुपादपद्मके आदर्शसे हम वञ्चित न हो जायँ। आजसे यदि पुनः एक वर्ष जीवित रहूँ, तो प्रति मुहूर्त्त गुरुसेवा करुँगा, परचर्चा छोड़ दूँगा। 'मैं बड़ा बहादुर हूँ, मैं बड़ा पण्डित, बुद्धिमान, वक्ता हूँ, और वह मूर्ख, निर्बोध है, कुछ भी बोल नहीं सकता है'–इस प्रकारकी परचर्चाको कम करके यदि हरि चर्चा करूँ, तो समझूँगा कि हमारा मङ्गल होगा। इसके बलपर भगवद् विमुखजनोंका कभी भी आदर नहीं करुँगा।

अद्वयज्ञान ब्रजेन्द्रनन्दनके आश्रय–अंश ही गुरुपादपद्म हैं। वे विषय–विग्रह दर्शनमें कृष्णचन्द्र स्वयं हैं, गुरुपादपद्माश्रित मैं भी उनके अन्तर्गत आश्रित हूँ।

साधक और सिद्धकी अवस्था एक नहीं

आशाभरैरमृतसिन्धुमयैः कथञ्चित्
कालो मयातिगमितः किल साम्प्रतं हि।
त्वञ्चेत् कृपां मयि विधास्यसि नैव किं मे
प्राणैर्व्रजेन च वरोरु वकारिणापि॥

(विलापकुसुमाञ्जलि १०२)

कुछ लोग मुझसे पूछते हैं–हम सभीको सिद्ध प्रणाली क्यों नहीं प्रदान करते? किन्तु मैं यह नहीं समझ पाता कि साधक और सिद्धकी अवस्था किस प्रकार एक हो सकती है? अनर्थमय साधनकालमें अनर्थमुक्त साधन और सिद्धिकी कथाका किस प्रकार अनुशीलन किया जा सकता है, यह मेरे विचारमें नहीं आता। यदि कोई सिद्ध हो जाता है, तो वह दया करके यदि मुझे बतलाये, तभी मैं जान पाऊँगा कि उनका कौनसा सिद्धस्वरूप है।

श्रीगुरुदेव मधुर रसमें वार्षभानवी हैं। अपने चेतन–भावके विचारानुसार जो जिस भावसे उनका दर्शन करते हैं, गुरुदेव वही वास्तव वस्तु हैं। वात्सल्य रसमें वे नन्द–यशोदा, सख्य रसमें–श्रीदाम–सुदाम, दास्य रसमें–चित्रक–पत्रक हैं। इन सब विषय–आश्रयोंकी आलोचना गुरुसेवा करते–करते हृदयमें उपस्थित होगी। ये सब कथाएँ कृत्रिम–भावसे हृदयमें उदित नहीं होती; सेवा–प्रवृत्ति उदित होनेपर स्वयं भाग्यवान् जनमें उदित हो जाती हैं। **हमारा गुरुसेवाके अतिरिक्त और कोई कृत्य नहीं है।** जड़ जगतका मिश्र–भाव लेकर शेष–शिव–ब्रह्मा आदिके लिये भी अगम्य नित्यलीलाकी कथाओंकी आलोचना नहीं होती। मैं आप लोगोंके चरणोंमें दण्डवत् करता हूँ, अपने गुरुवर्गको दण्डवत् करता हूँ।

[गौड़ीय (खण्ड–९,संख्या–२८) से अनुवादित]

गुरुसेवक ही सर्वोत्तम हैं

व्यासपूजाके अवसरपर आचार्य–केशरी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके प्रवचनका सारमर्म

३–६ फरवरी, १९६१, श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चूचूँडा

शिक्षा और दीक्षागुरुमेंसे सर्वप्रथम मन्त्र प्रदाता दीक्षागुरुकी पूजा करना ही कर्त्तव्य

श्रीगुरुपूजाका नामान्तर ही श्रीव्यासपूजा है। व्यासदेव शिक्षादाता होनेके कारण ही शिक्षागुरु हैं। गुरु दो प्रकारके होते हैं—शिक्षागुरु और दीक्षागुरु। अर्चनमार्गके विचारसे सर्वप्रथम गुरुपादपद्मका अर्चन करना ही कर्त्तव्य है। यद्यपि शिक्षा और दीक्षागुरु दोनों एक ही हैं—**'शिक्षागुरुके त जानि कृष्णेर स्वरूप'** (श्रीचैतन्य–चरितामृत आदि १/४५) [अर्थात् शिक्षागुरुको श्रीकृष्ण–स्वरूप जानो], तथापि सर्वप्रथम दीक्षागुरुकी पूजा करना ही कर्त्तव्य है। सूक्ष्मभावसे विचार करनेपर देखा जाता है कि—**मन्त्रदाता गुरु ही सर्वश्रेष्ठ हैं**। जो मननधर्मसे त्राण करते हैं अथवा जिस वस्तुके द्वारा त्राण करते हैं, वही मन्त्र है। शब्दब्रह्म मननधर्मसे हमारा त्राण करते हैं, अतः मन्त्रगुरु ही सर्वश्रेष्ठ हैं। कृष्णको प्राप्त करनेका मन्त्र प्रदान करनेके कारण सर्वप्रथम मन्त्रगुरुकी पूजा करना ही कर्त्तव्य है। श्रीवेदव्यासको शिक्षागुरुके रूपमें ग्रहण किया गया है। समस्त शिक्षाओंको ग्रहणकर उन्हें अन्य लोगोंको जो प्रदान करते हैं—वही शिक्षागुरु हैं।

सेव्य वस्तुका प्रीतिविधान करना ही सेवा है, ऐसा न करनेपर सेवा नहीं होती। पृथ्वी रसातलमें जाये, किन्तु मैं गुरुदेवका प्रीति विधान करनेके लिये ही दृढ–प्रतिज्ञ हूँ।

असद्–गुरु सर्वदा ही त्याज्य

जो दीक्षागुरुकी सेवाकी शिक्षा प्रदान करते हैं—वही शिक्षागुरु हैं। जो दीक्षागुरुकी सेवाशिक्षासे विमुख हैं, वे शिक्षागुरु पदवाच्य अर्थात शिक्षागुरु कहलानेके योग्य नहीं हैं। वे वैष्णव ही नहीं हो सकते, क्योंकि वे दीक्षागुरुको मर्यादा देनेकी शिक्षा नहीं देते। इस प्रकारके उपदेष्टा अपने निज–दीक्षागुरुके प्रति किस प्रकारकी वृत्तिका अवलम्बन करते हैं? फिर जो वास्तविक गुरु कहलानेके योग्य ही नहीं हैं, उनकी बात तो पृथक् है। असद्–गुरु सर्वदा ही त्याग देने योग्य हैं।

गुरुकी प्रीतिकी कामना ही शिष्यकी एकमात्र काम्य–वस्तु

वैष्णव सेवा ही गुरुसेवा है—**'छाड़िया वैष्णव सेवा, निस्तार पेयेछे केवा'** [अर्थात् वैष्णवसेवा छोड़कर इस संसारसे निस्तार कौन पाया है?]। वैष्णव जो चाहते हैं, उनकी इच्छानुसार कार्य करना ही वैष्णव–सेवा है। **सेव्य वस्तुका प्रीतिविधान करना ही सेवा है, ऐसा न करनेपर सेवा नहीं होती।** इसीलिये शास्त्रोंमें **'गुरुोराज्ञा ह्यविचारणीय'** [अर्थात् श्रीगुरुकी आज्ञा अविचारणीय रूपसे पालन करनी चाहिए] उल्लिखित हुआ है। निर्विचारपूर्वक गुरुकी आज्ञाका पालन करना ही शिष्यका एकमात्र कर्त्तव्य है। **"मारबि राखबि जो इच्छा तोहारा। नित्य दास प्रति तुया अधिकार॥"** (श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी शरणागतिसे) [अर्थात् हे प्रभो! आपकी जैसी इच्छा है, वैसे ही मुझे मारें या जीवित रखें, मैं आपका दास हूँ, इसलिए मुझपर आपका पूर्ण अधिकार है।] गुरुकी प्रीतिकी कामना करना ही शिष्यकी एकमात्र काम्य–वस्तु है, उनके प्रीतिविधानके लिये सत्–शिष्य सब प्रकारकी दुर्दशाको वरण करनेके लिये प्रस्तुत रहते हैं।

प्राकृत जगतमें देशसेवाके लिये अपना जीवन उत्सर्ग करनेवालोंके साथ पारमार्थिक कल्याणवर्ती सेवकोंकी तुलना की जाती है। हरि–गुरु–वैष्णवोंकी सेवाके लिये शिष्यका जीवन उत्सर्ग करना ही श्रेष्ठ व्रत है। ऐसा न करनेपर शिष्यका शिष्यत्व साधित नहीं होता, जानना चाहिये। गुरुपादपद्ममें अपना सर्वस्व समर्पित करना ही शिष्यका वास्तविक लक्षण है। केवल मैं स्वयं नहीं, अपितु जगतमें सभी मेरे गुरुदेवके सेवक हों, यह विचार ही सत्–शिष्यकी काम्य–वस्तु है। सत्शिष्य विश्वके सभी श्रेष्ठ पुष्पोंको गुरुसेवामें

समर्पित करते हैं। इस प्रकारकी आत्मसमर्पणकी वृत्ति ही गुरुपूजा अथवा सेवा है। यह वृत्ति अपार्थिव और वैकुण्ठ विचारसे प्रसूत है। जो जीवन्मुक्त हैं, उनके द्वारा ही गुरुदेवकी सुष्ठुसेवा संभव है। जो प्राकृत बद्ध जीवोंकी प्राकृत भावधारामें आबद्ध हैं, उनके द्वारा गुरुसेवा संभवपर नहीं है।

हरिसेवक श्रेष्ठ नहीं, किन्तु गुरुसेवक ही सर्वोत्तम

श्रीसूत गोस्वामीके द्वारा नैमिषारण्यमें भागवतकी आलोचना करते समय सभी ऋषि मुखमें तृण धारणकर वहाँ समागत हुए थे। ब्रह्मज्ञगण भी गुरुसेवकके निकट कृपाप्रार्थी होते हैं। हरिसेवक श्रेष्ठ नहीं हैं, किन्तु गुरुसेवक सर्वोत्तम हैं। तभी ६० हजार ऋषि गुरुसेवक सूत गोस्वामीके शरणागत होकर भागवत श्रवण करनेके लिये पिपासु हुए थे। गुरुसेवक ऋषिगणोंके भी मान्य एवं पूज्य हैं।

जो अद्वैतचिन्ताधारामें स्नात हैं, वे गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें 'अज्ञान–बोधिनी' ग्रन्थमें लिखित 'अनवगत स्वात्' होनेके कारण गुरुकी अवज्ञा करनेकी शिक्षा देते व ग्रहण करते हैं। वे गुरुको अगुरु अथवा लघु मानते हैं। अनवगत अथवा अतत्त्वदर्शी होनेके कारण वे किस प्रकार गुरुपदवाच्य हो सकते हैं?

गुरुसेवाका आदर्श

आनन्दगिरिके प्रति शङ्करका योगबल प्रकाशित करना विशेष ध्यान देने योग्य है। पद्मपादका गुरुसेवक आनन्दगिरिके प्रति अवज्ञा प्रकाश करना असङ्गत था। शङ्करकी इच्छासे आनन्दगिरिने जिस प्रकार गुरुका स्तव किया था, उसके द्वारा सभी चमत्कृत हुए थे। पद्मपादने इस बातके लिये गुरुसेवकके निकट क्षमा प्रार्थना भी की थी। गुरुसेवा ही सभी मङ्गलोंकी हेतु है–इस विचारको सदैव स्मरण रखना चाहिये। पद्मपादका कापालिकके हाथोंसे अपने गुरुदेवका उद्धार करना गुरुसेवा का आदर्श है। रामानुजाचार्यके प्रचारसे कृमिकण्ठ राजाकी उनके प्रति ईर्ष्या और उनका वध करनेकी चेष्टाको देखकर शिष्य कुरेशने विचारस्थलपर जाकर उस राजाको परास्त किया। जिन शिष्योंकी ऐसी विचारधारा है, उनकी गुरुसेवा ही सफलीकृत है। जगद्गुरु श्रील प्रभुपादके साथ भी ऐसी ही घटना घटित हुई थी। श्रीरामानुजकी त्रिदण्डसन्यासकी धाराका ही श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रर्वतन करनेके कारण उन्हें रामानुजका द्वितीय–स्वरूप कहा जाता है। गुरुसेवाके लिये सर्वत्याग–आत्मत्याग करनेका प्रयोजन है। (परमगुरुदेवने नवद्वीपमें कुलियाकी दुर्घटनाका उल्लेखकर रामानुज–कुरेशकी लीला प्रकाशकी कथाको प्रसङ्ग क्रममें व्यक्त किया। इसके द्वारा श्रील प्रभुपादमें रामानुजका आवेश हुआ था एवं इसमें गुरुसेवाका आदर्श है, ऐसा जताया।) गुरुसेवा करनेपर मेरी सुविधा होगी, आलस्यको प्रश्रय देनेका सुयोग मिलेगा, अन्य सेवकोंके ऊपर कर्तृत्व कर सकूँगा—ऐसा विचार सेवकका नहीं हो सकता।

श्रीमद्भागवतके ज्ञानमें ही ज्ञानकी परिसमाप्ति

भगवान्के प्रियसेवक वा प्रियजनके साथ भजनगोप्य विषय आलोच्य हैं। इसी कारण शौनकादि ऋषियोंने सूत गोस्वामीसे चरम मङ्गलके विषयमें प्रश्न पूछा था। वेद–वेदान्त–उपनिषद आदिकी आलोचना करनेपर वास्तविक ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती है–**"आविरिञ्चादमङ्गलम्"**। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीका **'कैवल्यं नरकायते'** विचार ज्ञानकी असारताको प्रमाणित करता है। श्रीमद्भागवतका ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है एवं इसमें ही ज्ञानकी परिसमाप्ति है। गुरुकृपाके बलसे ही श्रीमद्भागवत स्फूरित होता है।

गुरुसेवाके विरुद्धवादी 'वैष्णव' कहलाने योग्य नहीं

"हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रुष्टे न कश्चन। तस्मात् सर्वप्रर्यत्नेन गुरुमेव प्रसीदयेत्॥" (भक्तिसन्दर्भ २३७) [अर्थात् हरि रुष्ट होनेसे श्रीगुरु हमारा त्राण कर लेंगे, किन्तु श्रीगुरु जब रुष्ट हो जाते हैं, तब हमारा त्राण करनेके लिए कोई नहीं है। इसीलिए सम्पूर्ण प्रयत्नसे श्रीगुरुका

ही प्रीतिविधान करना परम उचित है।] **पृथ्वी रसातलमें जाये, किन्तु मैं गुरुदेवका प्रीति विधान करनेके लिये ही दृढ–प्रतिज्ञ हूँ।** गुरुदेवके विरुद्ध–आचरण करनेपर शिष्यकी दुरावस्थाका ज्वलन्त उदाहरण हैं–अनन्त वासुदेव, सुन्दरानन्द आदि। अनन्त–वासुदेव शेषकालमें नाम परिवर्तितकर पुरीदासके नामसे परिचय देनेके लिये बाध्य हुये।

"गुरुर किंकर हय मान्य से आमार।" (श्रीचैतन्य–चरितामृत मध्य १०/१४२) [अर्थात् गुरुसेवक मेरे लिए माननीय हैं] सद्गुरु–पदाश्रित सेवक दूसरे सेवकोंको अवश्य ही सम्मान प्रदान करेंगे। गुरुसेवा–शिक्षा–दानकारी ही वास्तविक शिक्षागुरु हैं, गुरुसेवाके विरुद्धवादी कभी भी शिक्षागुरु कहलाने योग्य नहीं हैं। यहाँ तक कि वे 'वैष्णव' संज्ञासे भी संज्ञित नहीं हो सकते।

निर्गुण गुरुपादपद्मकी महिमा

श्रीगुरुदेव निर्गुणवस्तु–ब्रह्मवस्तु हैं। निर्गुण गुरुपादपद्मके सेवक ही ब्रह्मचारी पदवाच्य हैं। परम कारुणिक निर्गुण गुरुपादपद्मकी महिमा ऐसी है कि वे त्रिगुणमें आविर्भूत होनेपर भी उनकी अप्राकृत सत्ता सर्वत्र सदैव रक्षित होती है। भगवद्भक्तकी सेवाके लिये प्रकृति और मौलिक सभी पदार्थ ही अनुकूल भावापन्न हो जाते हैं। सत्–शिष्यके द्वारा किसी प्रकारसे निगुर्ण गुरुपादपद्मके साथ संयोग स्थापित कर लेनेपर मायिक गुण उसपर और आक्रमण नहीं कर पाते।

निर्गुणवस्तु श्रीकृष्ण भौम जगतमें आविर्भूत होते हैं। अप्राकृत निर्गुण वस्तुकी उत्पत्ति और विनाश नहीं है। जन्म और मृत्यु प्रकृतिके अन्तर्गत धर्म हैं। 'जन्म' कहनेपर जिस प्रकार प्राकृत चिन्ताधारा मानस–पटपर प्रवाहित हो जाती है, 'आविर्भाव' कहनेपर भाषा कुछ मार्जित हो जाती है, किन्तु वह भी हृदयमें सन्देहकी सृष्टि करती है। जन्म–मृत्युमें हेयता, अवरता विद्यमान है। पार्थिव चिन्तास्रोतसे बद्धजीवका उद्धार करनेके लिये ही अपार्थिव निर्गुण–तत्त्वका जगतमें आविर्भाव होता है। इसीलिये श्रील प्रभुपादका पुरुषोत्तम क्षेत्रमें–निर्गुण क्षेत्रमें आविर्भाव हुआ। निर्गुण वस्तु निर्गुण क्षेत्रमें ही विचरण करती है।

प्रभुपादका आसुरिक–जागतिक–समाजके साथ चिरकाल असहयोग

प्राकृत नीति या आदर्श अप्राकृत वस्तुको प्राप्त करानेमें सहायक नहीं हैं। दुनियाके विचारसे जो चरम दुर्नीति और आदर्शविरोधी है, भगवद् आराधनामें वही विशेष गुणके रूपमें परिगणित है। गोपियोंका ऐकान्तिक भावसे श्रीकृष्ण–भजन ही इसका वास्तविक आदर्श है। पारमार्थिकगण भगवत्–भागवत–सेवाके अविरोधके लिये सर्वत्र ही प्राकृत नीतिका विसर्जन किया करते हैं। श्रील प्रभुपादने आसुरिक–जागतिक समाजके साथ चिरकाल असहयोग मनोभाव प्रदर्शित किया है। वैष्णव–मर्यादाका लंघन वे कदापि सहन नहीं करते थे। इसीलिए मुक्त–पुरुषोंके प्रति लौकिक, कौलिक गुरुके अशिष्ट आचरण होनेपर उसका साक्षाद्–भावसे प्रतिवाद करनेमें उन्होंने कभी पैर पीछे नहीं हटाये। उन्होंने कभी भी मिथ्या विचारोंके साथ समझौता नहीं किया।

हेय वस्तुको गुरुके रूपमें वरण करना उचित नहीं

अतएव हमारा सत्यनिष्ठ, निर्भीक, शक्तिशाली गुरुपादपद्मके लिये अपेक्षा करना प्रयोजन है। मायिक हेय वस्तुको कभी भी गुरुके रूपमें वरण करना उचित नहीं है। निर्गुण वस्तुके संस्पर्शसे हेयत्व विनष्ट होता है। महापुरुषका चरणाश्रय करनेपर जीवके अनर्थसमूह विदूरित होती है। भगवान् और भगवद्भक्तका आविर्भाव और आविर्भाव–स्थान निर्गुण या अप्राकृत होते हैं। महाजनोंकी चित्तवृत्तिके साथ हमें मेल रखना होगा, उनके उपदेश–निर्देशका अविचारपूर्वक सर्वतोभावसे पालन करना होगा; तभी हमारा मङ्गल है। अन्यथा, 'जे तिमिरे, सेई तिमिरेई' अर्थात जिस अन्धकारमें हम थे, उसीमें ही रहना होगा।

[श्रीगौड़ीय–पत्रिका (वर्ष–१३, संख्या–२) से अनुवादित]

श्रील प्रभुपादकी आविर्भाव तिथिमें विरह–स्मृति

आचार्य–केशरी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी प्रबन्धावली

श्रीव्यासपूजा में कृपा–प्रार्थना

"ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे, पाय कृष्णेर चरण॥"

(श्रीचैतन्य–चरितामृत मध्य २२/२५)

इस वाक्यकी प्रतिध्वनिस्वरूप यह देखा जाता है कि "श्री व्यासपूजा एक साथ गुरु एवं कृष्ण दोनोंकी ही सेवा है" (गौड़ीय वर्ष–४, पृ–५९०)। इसलिए परम पूज्य जगद्गुरु श्रील प्रभुपादजीकी आविर्भाव–तिथिपर ही व्यासपूजाके अनुष्ठानकी विधि गौड़ीय आचार्यवर्गके उपदेश–सम्मत है, (ऐसा सिद्ध होता है)। इस व्यासपूजाके उपलक्ष्यमें श्रीगुरुदेवकी अङ्गस्वरूप पारमार्थिक पत्रिकाकी सेवाके लिए मुझे आदेश प्रदान किया गया है, परन्तु अपनी नितान्त अयोग्यताका सम्पूर्णतः अनुभव करनेके कारण मुझे यह आदेश एक विपत्ति जैसा प्रतीत हो रहा है। माननीय गुरुसेवकगण ही एसी स्थितिमें विपद–उद्धारक

बान्धव होते हैं। गुरुसेवकोंका आनुगत्य करना ही गुरुसेवाकी पराकाष्ठा है। समस्त गुरुसेवकोंके श्रीचरणकमलोंमें मैं निष्कपट साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम ज्ञापन करता हूँ। उनके प्रति सतीर्थ–भ्रातृबुद्धिसे 'सख्य' भावसे आचरणकर मैंने जो परस्पर भ्रातृविरोधका आह्वान किया है, श्रील प्रभुपादके अप्रकट होते ही हृदयमें उसका अनुभवकर अपने जीवनको धिक्कार रहा हूँ। व्यासपूजाके पुजारी गुरुदासगण! आप मेरे प्रति कृपा–दृष्टि करें। मेरी अयोग्यता देखकर मेरी उपेक्षा न करें तथा मुझे श्रीगुरु एवं गौराङ्गके गुणगानरूपी दास्यमें नियुक्त करें, यही आपके श्रीचरणकमलोंमें सविनय प्रार्थना है।

श्रीगुरुदेवका स्वरूप

व्यास एवं वैयासकि (श्री शुकदेव गोस्वामी) के आनुगत्यमें गुरुदासगणोंने शास्त्रोल्लिखित वाक्यों, जैसे **'गौरजन–सङ्ग कर गौराङ्ग बलिया', 'आचार्यं मां विजानीयात्',** के द्वारा मुझे यही समझाया है कि **'साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रैः'** अर्थात् सभी शास्त्रोंमें श्रीगुरुदेवको साक्षात् हरि कहा गया है; तथा यही जाननेके लिए उपदेश दिया है कि **'किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य'** अर्थात् वे भगवान्‌के अत्यन्त प्रिय पात्र हैं। श्रील कविराज गोस्वामीने भी यही शिक्षा दी है कि **'गुरु कृष्णरूप हन शास्त्रेर प्रमाणे'** और भी बताया है कि **'गुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे'**। महाजन व्यक्तियों एवं शास्त्रोंके इन दृष्टान्तोंके अनुसार यही प्रमाणित होता है कि श्रीगुरुदेव भगवद्–स्वरूप हैं। इस प्रकार गुरुदासगणोंको उनसे अभिन्न जानकर शिक्षागुरुके रूपमें ही जाना जा सकता है। श्रीचैतन्य–चरितामृतमें श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने कहा है, **'शिक्षागुरुके त' जानि कृष्णेर स्वरूप'**। हे गुरुदेवके नित्यसेवकगण! इस भौमजगत्‌में आपका अवतरण केवलमात्र मुझ जैसे पापिष्ठ, कीचड़में पतित अधम जीवके उद्धार हेतु ही है। आपकी चिन्मयवाणी द्वारा श्रीगुरुदेवके चिन्मयत्वके विषयमें श्रवण करने पर भी उनमें मेरी सामान्य नरबुद्धि अल्पमात्र भी क्षय नहीं हुई। माया अथवा ईर्ष्या ही इसका मूल कारण है।

वाणी–कीर्त्तन ही श्रील प्रभुपादका मनोऽभीष्ट

'वाणी' केवलमात्र एक 'कर्ण' नामक इन्द्रिय द्वारा ही ग्रहण योग्य है, ऐसा कहने से इस क्षेत्रमें बाकी चार इन्द्रियाँ हीनप्राय ही सिद्ध होती हैं। इन्द्रियातीत वस्तुका इन्द्रियोंके द्वारा स्पर्श सम्भव नहीं है। इन्द्रिय–संस्पर्श जितना क्षय होगा, हमारे लिए उतना ही मङ्गलकारी है। इसीलिए श्रवण एवं कीर्त्तनकी श्रेष्ठता है। आपके श्रीमुखनिःसृत अप्राकृतवाणी –रूपी कीर्त्तनको श्रवण करनेके पश्चात् भी जब श्रीगुरुदेवके प्रति मेरी मर्त्यबुद्धि नष्ट नहीं हुई, तब अन्य इन्द्रियों द्वारा क्रियाशीला भक्तिके अन्य अनुष्ठानसमूह भी मेरे लिए निष्क्रिय ही सिद्ध होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। वर्तमान युगमें जो कोई भी भक्तिका अङ्ग अनुष्ठित क्यों न हों, वे सब कीर्त्तनाख्या–भक्तिके सहयोगसे ही करना प्रयोजनीय है तथा श्रवण एवं कीर्त्तनके अतिरिक्त अन्य कोई भी भक्त्यङ्ग रहने पर भी वह कीर्त्तनके बिना सुफलदायक नहीं है। इसीलिए आपकी असीम कृपा–द्वारा केवलमात्र कीर्त्तनको ही निरपेक्ष श्रेष्ठ साधनके रूपमें समझ पाया हूँ। श्रवण–कीर्त्तनादि प्रचाराख्या भक्ति ही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मनोऽभीष्ट 'भागवत–मत' है तथा मठ–मन्दिर निर्माण, श्रीविग्रह–सेवादि–परिचालनरूपी अर्चनाख्या भक्ति ही 'पाञ्चरात्रिक–मत' है। आपने मुझे बतलाया है कि भागवत–प्रचार ही श्रील प्रभुपादके आविर्भावका आन्तरिक उद्देश्य (ontological aspect) है। कीर्त्तनका फल कीर्त्तन ही है। कीर्त्तन ही सेवा है एवं कीर्त्तन ही प्रेम है। श्रील जीव गोस्वामीजी क्रम–सन्दर्भमें लिखते हैं–**"यद्यप्यन्या भक्तिः कलौ कर्त्तव्या तदा कीर्त्तनाख्या भक्ति–संयोगेनैव इत्युक्तम्"**। श्रील प्रभुपादने स्वयं कहा है, "यदि पाञ्चरात्रिक प्रणालीके अनुसार representative (प्रतिनिधि) रहते हैं तो रहें, मन्दिर भी किए जाएँ, ठाकुरजी भी रहें (उनका अर्चन–पूजन हो); किन्तु जो better class - high class के व्यक्ति हैं, वे प्रचार कार्य ही करेंगे। वैकुण्ठके नामका सर्वत्र प्रचार ही महाप्रभुजीका मनोऽभीष्ट है। 'हमारी प्रचार–प्रणाली इस प्रकारकी होनी चाहिए–प्रचुर मात्रामें pamphlet (प्रचारपत्र) आदि किये (छपवाए) जाएँ,

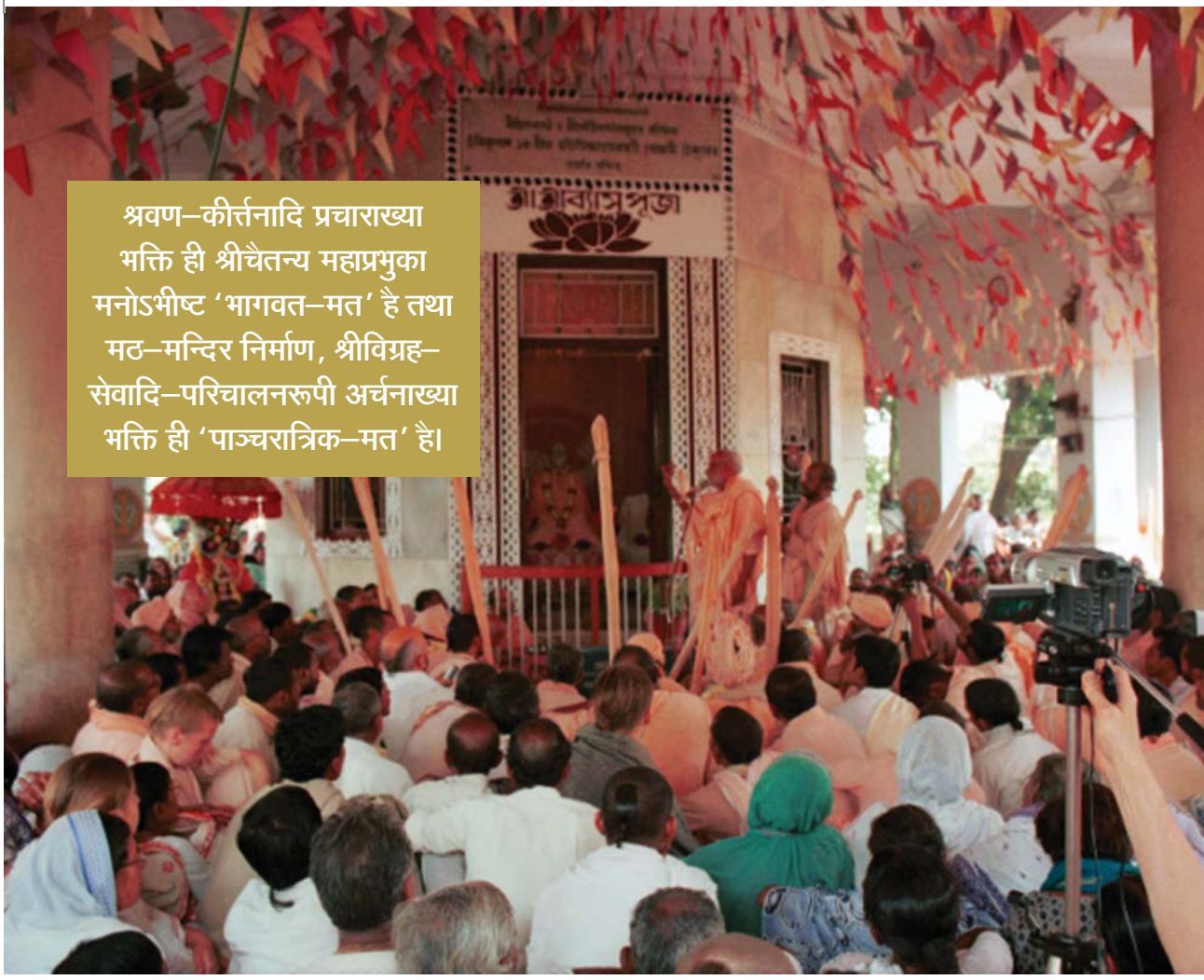

श्रवण–कीर्त्तनादि प्रचाराख्या भक्ति ही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मनोऽभीष्ट 'भागवत–मत' है तथा मठ–मन्दिर निर्माण, श्रीविग्रह–सेवादि–परिचालनरूपी अर्चनाख्या भक्ति ही 'पाञ्चरात्रिक–मत' है।

मठ–मन्दिर न भी हों तो कोई बात नहीं।" उन्होंने अपने आखिरी (प्रकटलीला समाप्त करनेके) समयकी वक्तृतामें भी हमें विशेष रूपसे सावधान करते हुए बताया है कि—"हम इस संसारमें लकड़ी एवं पत्थरके कारीगर होनेके लिए नहीं आए हैं, हम श्रीचैतन्यदेवकी वाणीके वाहकमात्र हैं।" यदि कोई इस संसारमें स्वतन्त्र रूपसे एक अङ्ग अथवा बहु अङ्ग साधन करता है तो करे; परन्तु हम प्रभुपाद ही की आज्ञानुसार एकमात्र कीर्त्तनाख्या भक्तिका ही पालन करेंगे।

वाणी श्रवण करनेके लिए कानोंको प्रस्तुत करना आवश्यक है

श्रील प्रभुपादके प्रति मनुष्य बुद्धि होनेके कारण उनकी कोई भी बात मेरे कानोंमें प्रवेश नहीं कर पाई। इसीलिए वे प्रायः बोलते थे, "पहले कानोंको तैयार करो, फिर भागवत–श्रवणकी योग्यता आएगी।" इस बातको मैं अब अपने हृदयमें अनुभव कर रहा हूँ। १९३७ ई. तक लगभग अठारह वर्ष तक उनके समीप रहने पर भी उनके "श्रेयः और प्रेयः", "अनुसरण और अनुकरण", "असली और नकली","Ontology and Morphology," "पारमार्थिक और व्यावहारिक" तथा गौड़ीयमें "वपु और वाणी" (नामक प्रबन्धों) रूपी वचन मेरे कानोंमें प्रवेश नहीं कर पाये अथवा उनमें पार्थक्यकी उपलब्धि नहीं हुई। इसीलिए गुरुदासगणोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे सर्वप्रथम मेरे कानोंको प्रस्तुत (जागृत) करा दें। कान प्रस्तुत नहीं होने पर "**उपदेशो हि मूर्खानां प्रकोपाय न शान्तये।**"–इस वाक्यका विषय हो पड़ूँगा।

श्रील प्रभुपादके प्रति मनुष्य बुद्धि होनेके कारण उनकी कोई भी बात मेरे कानोंमें प्रवेश नहीं कर पाई।

"पहले कानोंको तैयार करो, फिर भागवत–श्रवणकी योग्यता आएगी।"

इसीलिए गुरुदासगणोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे सर्वप्रथम मेरे कानोंको प्रस्तुत (जागृत) करा दें।

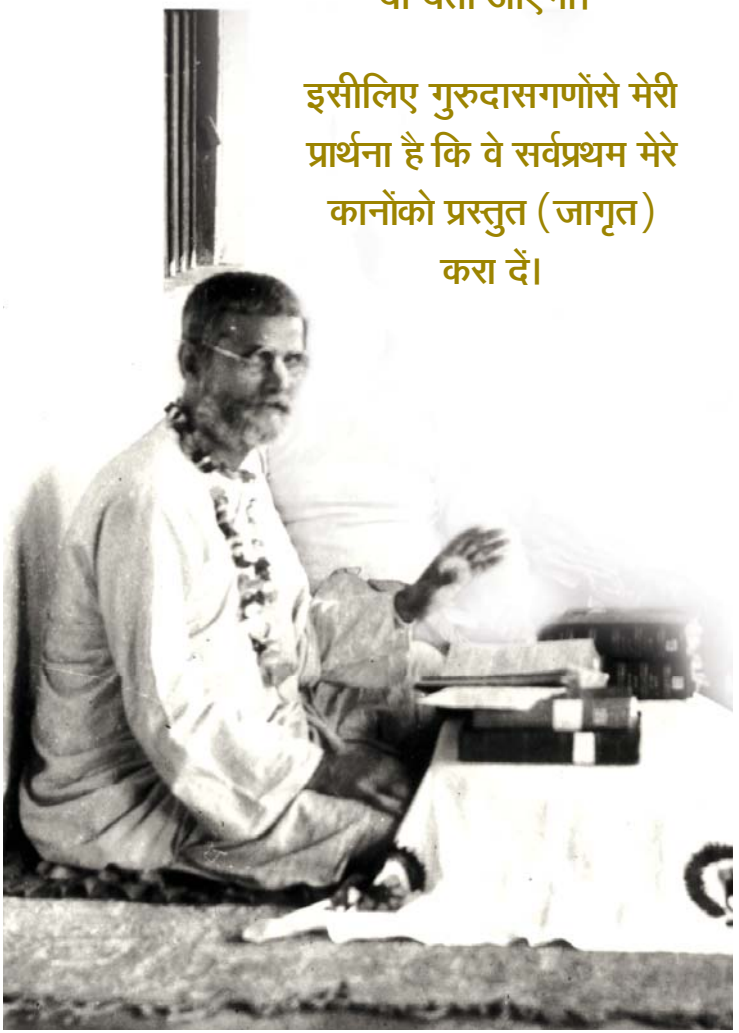

चेतनमयी वाणीमें कर्णपात न करनेका फल

मेरे दुर्भाग्यके कारण श्रीलप्रभुपादके शरीरको अप्राकृत चिदानन्दमय नित्यविग्रहके रूपमें दर्शन करनेकी योग्यता मुझमें कभी भी नहीं हुई; यद्यपि आपलोगोंने उस विषयमें मुझे बार–बार निर्देश दिया था। श्रील प्रभुपाद अपने प्रति मेरी ऐसी प्राकृत–बुद्धिको देखकर हँसते हुए बीच–बीचमें अस्वस्थ होनेका अभिनय करते थे। मैं जब दुर्बुद्धिसे युक्त होकर अपने प्राकृत हस्त–पदादिको लेकर उनके श्रीअङ्गकी सेवाके लिए उनको स्पर्श करनेके लिए जाता था, तो वे स्वतन्त्र भावसे रहकर अपने मायिक देहको आगेकर मेरी आसुरिक प्रवृत्तिको मुग्ध करते थे। **वास्तवमें उनके चिन्मय देहमें किसी प्रकारकी व्याधि अथवा कोई विकार नहीं था। मैं उस समय यह बिल्कुल भी समझ नहीं पाया।** मुझ जैसे यथासर्वस्व कामी एवं योगी रावणमें मायिक सीताको स्पर्श करनेके अतिरिक्त चिद्शक्ति स्वरूपिणी रामाङ्क–लक्ष्मी सीतादेवीको स्पर्श करनेकी योग्यता कहाँ है? मैंने शङ्कर (शङ्कराचार्य) के जीवनके सम्बन्धमें भी इसी प्रकारकी लीलाकी बात सुनी है। शङ्कर जब मण्डनमिश्रकी पत्नी 'उभयभारती' से विचारमें परास्त हुए, तो वे अपने शरीरको पद्मपाद (शङ्कराचार्यके शिष्य) के पास एक पहाड़ी–गुफामें रखकर एक राजाके मृत शरीरमें प्रविष्ट हुए थे। इसी प्रकार श्रीलप्रभुपादके अतिमर्त्यत्व (चिन्मयत्व) के सम्बन्धमें कुछ भी उपलब्धि न कर सकनेके कारण, उनसे कपट–कृपा प्राप्तकर चिर–दिन (सर्वदा) वञ्चित हुआ हूँ। यह उनकी चेतनमयी वाणीमें कर्णपात (सम्यक् रूपसे श्रवण) न करनेका फल है। यही मेरा चरम दुर्भाग्य है।

आचार्यदेवकी निर्याण–लीला

श्रीलप्रभुपादने जब देखा—उनका सेवकाभिमानी ऐसा दुर्जन–दम्भसे परिपूर्ण होने लगा है, प्रति पद और प्रति मुहूर्तमें मेरा चित्त क्रमशः अपनेको उनके ही समान समझता हुआ उनका ही आसन ग्रहण करनेके लिए व्यस्त हो उठा है, तभी उन्होंने मुझ जैसे नित्यबद्ध,

पत्थरके समान कठोर, अभ्रकके समान अदाह्य एवं अग्निके समान शुष्क चित्तवृत्ति–विशिष्ट पापिष्ठको शिक्षा देनेके लिए वज्रसे भी अधिक कठोर तथा अग्निसे भी अधिक दहनशक्ति–विशिष्ट, अकस्मात् एक अत्यन्त निष्ठुर लीलाको प्रकाश किया। श्रीलप्रभुपाद अपनी लीला सङ्गोपन करने (अप्रकट होने) से कुछ ही समय पहले, १९३६ ई. में जब अपने आविर्भाव क्षेत्र, श्रीपुरी धाममें चटकपर्वतपर (स्थित) पुरुषोत्तम मठमें निवास कर रहे थे, तब उन्होंने मेरी विमुखताको देखकर मुझसे कहा था, "मेरी बात अब काई नहीं समझता, कोई ग्रहण नहीं करता। इसलिए **इस जगत्में रहनेका और प्रयोजन नहीं है, चले जाना ही अच्छा है।"** उस समय उनकी कृपाकी बात न समझकर मैंने उनका प्रतिवाद किया था। मेरा दुर्भाग्य कि इसीलिए उन्होंने १३४३ साल (बंगाब्द), १६ पौष, बृहस्पतिवारको (पौष कृष्ण ४, १९३६ ई.) प्रातःकालमें एक आकस्मिक वज्राघात किया। उन्होंने मुझे अहं–ग्रहोपासक (दाम्भिक) एवं भोगी देखकर 'वैराग्ययुग् भक्तिरस' की शिक्षा देनेके लिए मुझे अनेक बार संन्यास वेश ग्रहण करनेकी इच्छा व्यक्त की थी। मेरे दुर्भाग्यवश उस समय यह सम्भव नहीं हो सका। तभी उन्होंने मेरी दैहिक एवं देहमें आत्मबुद्धिकी विनाशकारी वैराग्यकी शिक्षा देनेके लिए अपनी निर्याण–लीला प्रदर्शित की। श्रीगौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुने अपने स्वयं रचित सिद्धान्तरत्न नामक भाष्यपीठकके प्रथम पदके अन्तमें श्रीमद्भागवतके ऋषभदेवके निर्याण–प्रसङ्गका विचार करते समय **"साम्पराय–विधिरपि प्रातीतिक्येव तावतैव तदावेश–परिक्षयात्"** वाक्यकी टिप्पणीमें लिखा है–**"साम्परायविधिर्देहत्यागप्रकारः। तावतैवेति प्रतीतिक्येन तादृशानां देहत्यागेन शुश्रुषूणां (शिष्याणां) नृणां देहावेश–त्यागादित्यर्थः।"** अर्थात् साक्षात् भगवान् होनेपर भी ऋषभदेवने परमहंस–धर्मका अनुकरण किया तथा इस प्रकार उनकी देहत्याग आदि लीला उनके शिष्य एवं सेवकगणकी देहासक्तिको त्याग करानेके लिए ही समझना होगा।

दीनतापूर्ण उक्ति

मुझे प्रबोध (सान्त्वना) देनेके लिए श्रीगुरुदेवके प्रियपात्रोंने श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके इकत्तीसवें अध्यायमें श्रीहरिकी निर्याणलीलाके उपलक्षमें व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी द्वारा कहे गये वचनसमूह स्मरण कराये हैं–

"राजन् परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा,
मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य।"

(श्रीमद्भा. ११/३१/११)

आचार्यदेवका चिदानन्दमय नित्यशरीर रङ्गमञ्चके एक नायककी भाँति स्वरूपतः अविकृत होनेपर भी उन्होंने जागतिक रङ्गमञ्चपर हमारी ज्ञानेन्द्रियों–द्वारा ग्रहणयोग्य जन्म–मृत्यु आदिका अभिनय किया है। साधारण जीवका जन्म एवं मृत्यु दुःखमय होते हैं, परन्तु अतिमर्त्य (मर्त्यलोकसे अतीत, परे) आचार्यके चिन्मय विग्रहका आविर्भाव एवं तिरोभाव सुखमय होता है। जिस प्रकार जादूगरके द्वारा दर्शकोंके समक्ष ही एक व्यक्तिकी अस्त्र द्वारा हत्या की जाती हुई देखने पर भी उसे सरासर झूठ मानकर विज्ञ व्यक्ति उसके लिए दुःखित नहीं होते हैं। किन्तु अज्ञ बालकगण यह देखकर क्रन्दन करते हैं। आचार्यकी यह निदारुण अप्रकट–लीला वैसी ही होते हुए भी मेरे जैसा अज्ञ (मूर्ख) उसमें अविश्वासकर सान्त्वना लाभ नहीं कर सका। इस प्रकार उनकी यह लीला सुखमयी होनेपर भी मेरे लिए अत्यन्त दुःखमयी एवं हृदयविदारक प्रतीत हो रही है। गुरुदासगण इसमें विरहानुतप्त हैं, परन्तु मैं तो एक शूद्रकी भाँति शोकग्रस्त हो गया हूँ। मैंने आपलोगोंसे यह श्रवण किया है कि विच्छेद या विरह सेवा–सौष्ठवको (सेवा–परिपाटीको) वर्धित करता है एवं उद्दीपनकी वस्तुएँ नयन–पथमें आनेपर ही उत्तरोत्तर सेव्यके प्रति आसक्ति दृढ़तर होती है। उसमें सेव्यके आनन्दकी प्रचुर पराकाष्ठा ही लक्षित होती है। दूसरी ओर शोकग्रस्त होने पर बद्धजीव निस्तेज हो जाता है, शक्ति–सामर्थ्य लुप्त हो जाता है, कातर (अधीर) हो जाता है और सेवाके अभावके कारण उसके आनन्दवर्द्धनरूप कोई क्रिया ही देखी नहीं जाती। मैं उसी

प्रकार एक मूर्ख एवं शूद्रकी भाँति शोकाकुल हो गया हूँ तथा किसी भी प्रकारका उत्साह अनुभव नहीं कर रहा हूँ। **"हृषीकेण हृषीकेश–सेवनं"** मेरे लिए अत्यन्त दुष्कर प्रतीत हो रहा है।

अप्रकटलीलाके कुछ समय पश्चात् प्रकटलीलाको प्रदर्शित करनेका उद्देश्य

श्रील प्रभुपादकी आविर्भाव–तिथिपर उनके तिरोभावकी बात ही सर्वदा मनमें उदित हो रही है और इसीलिए हर्षके अवसरपर भी दुःख ही अनुभव कर रहा हूँ। मङ्गलकारी श्रील प्रभुपाद मेरी ऐसी दुरवस्था देखकर मुझे उत्साहित करनेके लिए ही प्रतिवर्ष विरह–तिथिके पश्चात् पुनः आविर्भाव–तिथि प्रस्तुत करते हैं। उनके प्रियजनोंके भीतर (हृदयमें) ही उनके पुनर्दर्शनकी आशासे आपके श्रीचरणकमलोंमें उपस्थित हुआ हूँ। मिलन नहीं होनेसे हृदयकी तीव्र वेदना शांत नहीं होती। इसलिए श्रील प्रभुपादने अपने विरहजनित आकुलताग्रस्त भक्तगणोंपर कृपाकर उन्हें सांत्वना प्रदान करनेके लिए ही अप्रकटकालके कुछ समय पश्चात् प्रकट–लीला प्रदर्शित की है। यह उनकी कितनी बड़ी दया एवं भक्तवात्सल्यका परिचायक है, वह मैं भाषा द्वारा व्यक्त करनेमें असमर्थ हूँ।

श्रीआचार्यदेवका श्रीधाममें आगमन

हम लोगोंके द्वारा (उनकी) वाणीके अनादरकी आशङ्कासे स्वाभिमानवश श्रील प्रभुपादने अपने नित्यप्रिय (मायापुर स्थित) राधाकुण्डके तटपर चले आनेकी इच्छासे एक गम्भीर मौन–भाव धारणकर लिया। विष्णुदूत–सदृश वैष्णवोंने उनके आन्तरिक उद्देश्यको समझकर उन्हें मस्तकपर धारणकर एक बहुप्रकोष्ठ–समन्वित (अनेक प्रकोष्ठोंसे युक्त) विशेष सुसज्जित रथ (विशेष रेलगाड़ी) पर आरूढ़ किया। श्रील प्रभुपादने सर्वाधिक उच्च एवं सुन्दर प्रकोष्ठमें प्रवेश किया और उनका अनुगमन करते हुए अन्यान्य सेवकगण भी यथायोग्य कक्षोंमें प्रविष्ट हुए।

पृथ्वीपर आया हुआ गोलोकका यह रथ श्रीकृष्णके प्रियपात्र श्रील प्रभुपादको लेकर अत्यन्त तीव्र गतिसे निरन्तर चलता हुआ श्रीकृष्णधाममें (कृष्णनगरमें) आकर उपस्थित हुआ। मार्गमें केवलमात्र 'विद्या–वेदन (ज्ञान)' के रणक्षेत्र (राणाघाट) में जब सारथिने रथकी गति धीमीकी तो लब्धवेदनाज्ञान श्रील आचार्यपादने अपनी बाल्यलीलाके प्रारम्भिक ज्ञानोदय–लीलाक्षेत्रका स्मरण करानेके लिए मेरा आह्वान किया तथा बाध्व–ऋषिकी भाँति बिना कोई शब्द कहे ही मुझे बहुत कुछ बता दिया। परन्तु उस समय मैं कुछ भी समझ पानेमें असमर्थ था। केवल इसी तथ्यकी सम्पूर्ण उपलब्धि कर रहा था कि "अप्राकृत वाणी–विग्रहकी वाणीको प्राकृत कानों द्वारा श्रवण करनेकी चेष्टा व्यर्थ है।" श्रीवाणी–विग्रह श्रील सरस्वती प्रभुने कृष्णधामसे उससे अभिन्न श्रीगौरधामस्थित श्रीस्वानन्द–सुखद–कुञ्जमें आकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके साथ भेंटकर उन्हें अपने आगमनकी सूचना दी। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीधाममायापुरमें चन्द्रशेखरभवनस्थ श्रीचैतन्यमठमें श्रील आचार्य द्वारा प्रकटित श्रीराधाकुण्डके तटपर श्रील बाबाजी महाराजके साथ साक्षात्कार किया। उन्हींके निकट वे कुण्डके तटपर सेवाकुण्डमें, इस (मुझ) अधम द्वारा संगृहीत (एकत्रित) पुष्प, माला, चन्दन आदि उपहारोंसे सुशोभित तथा मुझ भाग्यहीन–द्वारा लावण्ययुक्त होकर श्रीराधामदनमोहनके प्रियपात्रके रूपमें समाधिस्थ (समाधिमें प्रविष्ट) हुए तथा मुझे (हमें) उनके आनुगत्यमें श्रीयुगल–सेवा करनेका अधिकार प्रदान करनेके लिए नित्यरूपसे वहीं रहने लगे। इस समय श्रीगुरुसेवकोंसे (के चरणोंमें) मेरी यही प्रार्थना है कि वे कृपापूर्वक मुझे श्रीगुरुपादपद्मकी मनोऽभीष्ट सेवा करनेकी किञ्चित्मात्र योग्यता प्रदान करें।

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त–सरस्वतीतिनामिने॥
नमस्ते गौरवाणी श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
रूपानुग–विरुद्धापसिद्धान्त–ध्वान्तहारिणे॥

[श्रीगौड़ीय–पत्रिका (वर्ष–३, संख्या–१) से अनुवादित]

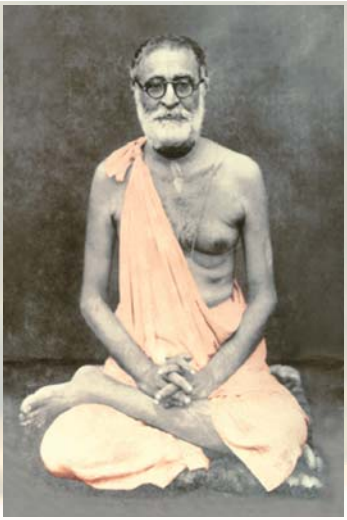

हमारे चिर पथ–प्रदर्शक

श्रील प्रभुपादकी व्यासपूजाके अवसरपर ॐ विष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीकी अमृतमय वक्तृतावली

१२ फरवरी १९३६, श्रीगौड़ीय मठ, मुम्बई

गुरु केवल एक हैं

साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै–
रुक्तस्था भाव्यत एव सद्भि:।
किन्तु प्रभोर्य: प्रिय एव तस्य
वन्दे गुरो: श्रीचरणारविन्दम्॥

(श्रीगुरुदेवाष्टकम् ७)

अर्थात् धर्म–शास्त्रोंमें घोषित किया गया है कि श्रीगुरुका पूजन साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्के समान ही किया जाना चाहिए तथा भगवान्के सभी विशुद्ध भक्त इसका पालन करते हैं। आध्यात्मिक गुरु भगवान्के सर्वाधिक अन्तरंग दास हैं, अत: हम अपने श्रीगुरु महाराजके चरणकमलोंकी सादर वन्दना करते हैं।

सज्जनो! गौड़ीय–मठकी बंबइ शाखाके सदस्योंकी ओर–से मैं आप सबका स्वागत करता

Photo © The Bhaktivedanta Book Trust International Inc. www.krishna.com
Used with permission. All rights reserved.

हूँ, क्योंकि आपने जगद्गुरु श्रील आचार्यदेव, जो इस गौड़ीय मिशनके संस्थापक एवं विश्ववैष्णव–राजसभाके सभापति–आचार्य हैं–मेरा अभिप्राय मेरे शाश्वत दिव्य स्वामी, परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराजसे है–उनके चरणकमलोंमें श्रद्धा सुमन अर्पण करनेके लिए आज रात्रि सम्पन्न होनेवाली सभामें आने की कृपा की है।

६२ वर्ष पूर्व इस मंगल दिवसपर आचार्यदेव,श्रील ठाकुर भक्तिविनोदके आह्वानपर श्रीक्षेत्र मण्डल जगन्नाथ पुरी धाममें प्रकट हुए थे।

सज्जनो! श्रील आचार्यदेवके सम्मानमें आयोजित यह सन्ध्या–सभा कोई साम्प्रदायिक आयोजन नहीं है, क्योंकि जब हम गुरुदेव अथवा आचार्यदेवके आधारभूत सिद्धान्तोंकी चर्चा करते हैं, तो हम उस सिद्धान्त की चर्चा करते हैं, जिसका विश्वव्यापी प्रयोग है। मेरे गुरु और आपके या किसी अन्य गुरुके मध्य भेदभाव रखने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। गुरु केवल एक हैं, जो आपको, मुझे और दूसारों को शिक्षा देनेके लिए अनन्त–रूपोंमें प्रकट होते हैं।

जैसा कि हमें प्रामाणिक शास्त्रोंसे ज्ञात होता है कि श्रीगुरु अथवा आचार्यदेव उस परम–जगत्के सन्देशको प्रस्तुत करते हैं, जो परम–भगवान्का दिव्य धाम है, जहाँ प्रत्येक वस्तु अभिन्न रूपमें परम–सत्यकी सेवा करती हैं। हमने यह प्रायः सुना है कि **"महाजनो येन गताः स पन्थाः।"** (महाभारत वन–पर्व) अर्थात् पूर्व आचार्योंके पथका अनुसरण करो, परन्तु इस श्लोकका वास्तविक तात्पर्य समझनेके लिए हमने कोई प्रयास ही नहीं किया है। यदि हम इस मतका सूक्ष्म और गहन अध्ययन करें, तो हम समझ सकते हैं कि महाजन एक हैं और अप्राकृत जगत्को जानेवाला राजमार्ग भी एक है। मुण्डक उपनिषद् (१/२/१२) में कहा गया है–

"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।"

अर्थात् अप्राकृत विज्ञानकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए हमें गुरु–शिष्य परम्परामें आनेवाले प्रामाणिक गुरुका अवश्य ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए जो परम सत्यमें स्थित रहते हैं।

आचार्य–भगवान्का ही साक्षात्–स्वरूप

इस प्रकार यहाँ आदेश दिया गया है कि उस अप्राकृत ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए हमें अवश्य ही गुरुका आश्रय स्वीकार करना चाहिए। अतः यदि परम सत्य एक है, जिसके विषयमें हम सोचते हैं कि कोई मतभेद नहीं है, तो गुरु भी दो नहीं हो सकते। श्रील आचार्यदेव, जिनको हम अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करनेके लिए आज रात्रि यहाँ एकत्रित हुए हैं, किसी एक साम्प्रदायिक संस्थाके गुरु नहीं है अथवा सत्य को विविध मत–मतान्तरोंके रूपमें प्रस्तुत करनेवाले अनेकानेक व्यक्तियोंमें–से एक नहीं हैं। इसके विपरीत, वे जगद्गुरु हैं, अर्थात हम सबके गुरु हैं। अन्तर केवल यही है कि कुछ उनकी आज्ञाका सब प्रकारसे पालन करते हैं, जबकि कुछ उनकी आज्ञा प्रत्यक्ष रूप से नहीं मानते। भगवान्ने (श्रीमद्भा॰ ११/१७/२७ में) कहा है–

"आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥"

अर्थात् आध्यात्मिक गुरुको मेरे ही समान समझना चाहिए–ऐसा आनन्दघन भगवान्ने कहा है। किसीको भी आध्यात्मिक गुरुसे न तो ईर्ष्या रखनी चाहिए और न ही उनको सामान्य मनुष्यों जैसा मानना चाहिए, क्योंकि गुरु सभी देवताओंके वासस्थान हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि आचार्यको भगवान्का ही साक्षात्–स्वरूप माना गया है। उनका इस भौतिक जगत्के कार्य–कलापोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। वे जीवनकी अस्थायी आवश्यकताओंके विषयमें हस्तेक्षप करनेके लिए यहाँ अवतरित नहीं होते। उनका केवल एक ही लक्ष्य रहता है–पतित बद्धजीवोंका अर्थात् ऐसे जीव जो इस संसारमें मन और पाँच इन्द्रियोंके द्वारा भोग करनेके उद्देश्यसे आए हैं, उनका उद्धार करना। वे वैदिक प्रकाशको प्रकट करनेके लिए और पूर्ण स्वाधीन जीवनका वरदान देनेके लिए ही हमारे समक्ष प्रकट होते हैं जिसके लिए हमें जीवनके पग–पगपर आकांक्षा रखनी चाहिए।

श्रीगुरुदेवका केवल एक ही लक्ष्य रहता है—पतित बद्धजीवोंका अर्थात् ऐसे जीव जो इस संसारमें मन और पाँच इन्द्रियोंके द्वारा भोग करनेके उद्देश्यसे आए हैं, उनका उद्धार करना।

श्रीगुरु—व्यासदेवके जीवन्त प्रतिनिधि

वेदोंके दिव्य—ज्ञानको भगवान्ने सर्वप्रथम इस ब्रह्माण्ड—विशेषके रचयिता ब्रह्माजीको सुनाया। बह्माजीसे यह ज्ञान नारदको प्राप्त हुआ; नारद से व्यासदेवको; व्यासदेवसे मध्वको और इस प्रकार गुरु—शिष्य परम्पराकी इस विधिमें एक शिष्यके द्वारा दूसरे शिष्यको यह इन्द्रियातीत ज्ञान प्रसारित किया गया और अन्तमें यह ज्ञान भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यको प्राप्त हुआ, जिन्होंने श्रीईश्वरपुरीके शिष्य और उत्तराधिकारी होनेका अभिनय किया था।

वर्तमान आचार्यदेव श्रील रूपगोस्वामीके पश्चात् दसवें शिष्य प्रतिनिध हैं। श्रील रूपगोस्वामी भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुके मौलिक प्रतिनिधि थे, जिन्होंने इस इन्द्रियातीत ज्ञानकी पद्धतिका पूर्णतः प्रचार किया था। अपने गुरूदेवसे हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह स्वयं भगवान्के द्वारा तथा ब्रह्माजीकी गुरु शृंखलामें आचार्योंकी परम्परामें दिए गए ज्ञानसे भिन्न नहीं है। हम इस मांगलिक दिनको श्रीव्यासपूजा तिथिके रूपमें मानते हैं, क्योंकि आचार्यदेव पुराण, भगवद्गीता, महाभारत एवं भागवतम् इत्यादिके दिव्य रचयिता व्यासदेवके जीवन्त प्रतिनिधि हैं।

जो व्यक्ति अपनी अपूर्ण इन्द्रिय प्रतीतिके द्वारा दिव्य शब्द—ब्रह्मकी व्याख्या करता है, वह वास्तविक आध्यात्मिक गुरु नहीं हो सकता। कारण यह है कि प्रामाणिक आचार्यके अधीन उचित प्रशिक्षणके अभावमें असद् व्याख्याकार निश्चय ही श्रीव्यासदेवसे मतभेद रखता है (जैसाकि मायावादी लोग करते हैं)। श्रील व्यासदेव वैदिक—प्रकाशके प्रधान अधिकारी (महाजन) हैं, इसलिए **असद्—व्याख्याकारको गुरु या आचार्यके रूपमें स्वीकार नहीं किया जा सकता, भले ही उस व्यक्तिमें भौतिक ज्ञान प्राप्त करनेकी पूरी योग्यताएँ विद्यमान हों।** जैसा कि पद्म—पुराणमें कहा गया है—

"सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः।"

अर्थात् जबतक आप गुरु—शिष्य परम्पराके किसी

प्रामाणिक गुरुसे मन्त्र–दीक्षा प्राप्त नहीं करते, तब तक प्राप्त किया गया मन्त्र निष्फल रहता है।

दूसरी ओर, इस गुरु–शिष्य परम्परामें आनेवाले प्रामाणिक गुरुसे जिस व्यक्तिने श्रवण–विधिके द्वारा दिव्य ज्ञान प्राप्त किया है और जिसके हृदयमें वास्तविक आचार्यके प्रति सच्चे सम्मान की भावना है, उसको अवश्य ही वैदिक ज्ञानका प्रकाश प्राप्त होना चाहिए। परन्तु यह प्रकाश, ज्ञानियोंके शुष्क ज्ञानमार्ग की पहुँचसे स्थायी रूपसे बाहर है। जैसाकि श्वेताश्वतर उपनिषद् (६/२३) में कहा गया है–

"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता हि अर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥"

अर्थात् केवल उन महात्माओंके लिए ही जिनको भगवान् और आध्यात्मिक गुरु दोंनोपर एक साथ अचल विश्वास है, उनके समक्ष वैदिक ज्ञानके समस्त अर्थ स्वतः ही प्रकाशित हो जाते हैं।

श्रीव्यासके प्रामाणिक प्रतिनिधिके चरणकमलोंमें शरणागत हुए बिना परम धामके विषयमें लेश मात्र भी ज्ञान असम्भव

सज्जनो! हमारा ज्ञान इतना अल्प है, हमारी इन्द्रियाँ इतनी अपूर्ण हैं और हमारे स्त्रोत इतने सीमित हैं कि श्रीव्यासदेव या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधके चरणकमलोंमें शरणागत हुए बिना यह सम्भव नहीं है कि हमें उस परम धामके विषयमें लेश मात्र भी ज्ञान प्राप्त हो सके। हम प्रतिपल अपनी इन्द्रिय–अनुभूतिके ज्ञानसे ठगे जाते हैं। यह सब केवल उस मनकी सृष्टि है, जो सदा ही कपटी, परिवर्तनशील और चंचल रहता है। हम अपने सीमित, विकृत अवलोकन तथा प्रयोग की विधि से दिव्य धामके विषयमें कुछ भी नहीं जान सकते। परन्तु गुरुदेव अथवा व्यासदेवके विशुद्ध माध्यमके द्वारा उस धामसे प्रसारित दिव्य–शब्द–ध्वनिको श्रवण करनेके लिए हममें–से सभी अपनी उत्सुक कर्णेन्द्रियाँ प्रस्तुत कर सकते हैं। अतएव, सज्जनो! अपनी विनम्रतासे शून्य मनोवृत्तिसे उत्पन्न समस्त भेद–भावोंके उन्मूलनके लिए श्रीव्यासदेवके प्रतिनिधिके चरणकमलोंमें आज हम सभी स्वयंको समर्पित करें। अतः गीता (४/३४) में कहा गया है–

"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥"

अर्थात् बुद्धिमान् एवं प्रामाणिक गुरुदेवके पास जाओ। सर्वप्रथम उनके शरणागत बनो और फिर जिज्ञासा तथा सेवाके द्वारा उनको समझनेका प्रयत्न करो। ऐसे बुद्धिमान् गुरु महाराज तुम्हें इन्द्रियातीत (दिव्य) ज्ञानका प्रकाश देगें, क्योंकि वे परम सत्य भगवान्को जान चुके हैं।

दिव्य ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए हमें प्रबल जिज्ञासा और सेवाकी भावनाके साथ वास्तविक आचार्यके प्रति अवश्य ही पूर्ण रूपसे शरणागत होना चाहिए। केवल आचार्यके निर्देशमें भगवान्की वास्तविक सेवा वह वाहन है, जिसके द्वारा हम दिव्य ज्ञान हृदयंगम कर सकते हैं। आचार्यदेवके चरणकमलोंमें अपनी विनम्र सेवाएँ एवं श्रद्धांजलि अर्पण करनेके उद्देश्यसे आयोजित आजकी इस सभाके द्वारा हम उस दिव्य ज्ञानको हृदयंगम करनेकी क्षमता प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकेंगे, जिस ज्ञानको श्रील आचार्यदेव बिना किसी भेदभावके सभी व्यक्तियोंको करुणावश प्रसारित कर रहे हैं।

सभी यथार्थ आचार्योंका एक ही सन्देश

सज्जनो! हम सभीको थोड़ा–बहुत अपनी प्राचीन भारतीय सभ्यतापर गर्व है, परन्तु हम वास्तवमें उस सभ्यताका यथार्थ स्वरूप जानते ही नहीं। हम अपनी प्राचीन भौतिक सभ्यतापर गर्व नहीं कर सकते, जो कि वर्तमानमें पहलेकी तुलनामें हजारों गुणा उन्नत है। ऐसा कहा जाता है कि हम अन्धकारके युग कलियुगमें–से गुजर रहे हैं। यह अन्धकार क्या है? यह अन्धकार भौतिक ज्ञानमें पिछड़नेके कारण नहीं हो सकता, क्योंकि भूतकालकी तुलनामें अब हमारे पास यह कहीं अधिक है। यदि हमारे पास यह न हो, तो हमारे पड़ोसियोंके पास तो किसी–न–किसी प्रकारसे वह प्रचुर मात्रामें उपलब्ध है ही। अतएव हमें यह

निष्कर्ष अवश्य निकालना चाहिए कि वर्तमान युगका यह अन्धकार भौतिक विकासके अभावके कारण नहीं, बल्कि हमारे आध्यात्मिक विकासका मार्गचिह्न अवरुद्ध हो गया है। आध्यात्मिक विकास करना ही मानव जीवनकी प्राथमिक आवश्यकता है और सर्वोच्च प्रकारकी मानव सभ्यताका मापदण्ड है। वायुयानोंसे बम फेंकना, पर्वत–शिखरोंसे शत्रुओंके सिरों पर बड़े–बड़े पत्थर फैंकनेकी आदिम कालीन असभ्य प्रथाकी तुलनामें सभ्यताकी प्रगतिको सिद्ध नहीं करता। मशीन–गन और विषैली गैसोंके द्वारा अपने पड़ोसियोंकी हत्या करनेकी कलामें प्रगति, निश्चय ही प्राचीनकालमें होनेवाली बर्बरताकी तुलनामें कोई उन्नति नहीं है–वह सभ्यता जिसे धनुष और बाणोंके द्वारा हत्या करनेकी अपनी कलापर गर्व रहा करता था। न ही स्नेहसे परिपुष्ट स्वार्थकी भावनाका विकास किसी प्रकारसे बौद्धिक पशुतासे श्रेष्ठ सिद्ध होता है। सच्ची मानव सभ्यता इन सब अवस्थाओंसे अत्यन्त भिन्न है, अतएव कठोपनिषद् (१/३/१४) में एक सुस्पष्ट आह्वान है–

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति॥"

अर्थात् जाग्रत हो जाओ और उस वरदानको समझनेका प्रयत्न करो जो तुम्हें अब इस मनुष्य योनिमें प्राप्त हुआ है। आध्यात्मिक–साक्षात्कारका मार्ग अत्यधिक कठिन है–यह उस्तरेकी धारके समान है–ऐसा विद्वान्‌ोंका मत है।

इस प्रकार जब अन्य लोग ऐतिहासिक विस्मृतिके गर्भमें थे, उस समय भारतके ऋषियोंने एक विभिन्न प्रकारकी सभ्यताका विकास कर लिया था, जो उन्हें आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करनेमें समर्थ बनाती थी। उनको यह पता चल गया था कि वे भौतिक जीव नहीं हैं, बल्कि भगवान्‌के चिन्मय, शाश्वत और अविनाशी दास हैं। क्योंकि हमने अपने असली तथा श्रेष्ठतर निर्णयके विपरीत, इस वर्तमान भौतिक अस्तित्वको ही पूर्णरूपसे अपना स्वरूप माननेकी भूल की है, अतः हमारे कष्ट भी, जो जन्म और मृत्युके निर्दय नियम तथा उस नियमके फलस्वरूप व्याधि व्यग्रताओंके अनुसार ही हैं, कई गुणा बढ़ गए हैं। ये कष्ट किसी भी प्रकारकी भौतिक सुख–सुविधाओंके द्वारा वास्तवमें कम नहीं किए जा सकते हैं, क्योंकि जड़ पदार्थ और आत्मा–पूर्ण रूपसे भिन्न तत्त्व हैं। यह ठीक उसी प्रकार है, जैसे यदि आप एक जलचर प्राणीको जल से बाहर निकालकर भूमिपर रख दें और पृथ्वीपर प्रायः सब प्रकारकी सुख–सुविधाएँ भी उसको दे दें। उस जलचर प्राणीको घातक कष्टोंसे तबतक किंचिन्मात्र भी मुक्ति प्राप्त न हो सकेगी, जबतक कि उसे विजातीय (विदेशी) वातावरणसे बाहर न निकाल लिया जाये। आत्मा और पदार्थ पूर्णरूपसे परस्पर विरोधी वस्तुएँ हैं। हम सभी चिन्मय प्राणी हैं। सांसारिक वस्तुओंके कार्य–कलापोंमे अति संलग्न होनेपर भी हमें पूर्ण–सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती–वह सुख जो कि हमारा जन्म–सिद्ध अधिकार है। पूर्ण–सुख हमें केवल तभी प्राप्त हो सकता है जब हम आध्यात्मिक अस्तित्व रूपी अपनी स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त कर लें। यह हमारी प्राचीन भारतीय सभ्यताका विशिष्ट सन्देश है, यह गीताका सन्देश है, वेदों और पुराणोंका सन्देश है और भगवान् श्रीचैतन्यकी परम्परामें आनेवाले हमारे वर्तमान आचार्यदेव सहित सभी यथार्थ आचार्योंका भी यही सन्देश है।

पूर्ण–सुख हमें केवल तभी प्राप्त हो सकता है जब हम आध्यात्मिक अस्तित्व रूपी अपनी स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त कर लें। यह हमारी प्राचीन भारतीय सभ्यताका विशिष्ट सन्देश है,....सभी यथार्थ आचार्योंका भी यही सन्देश है।

श्रीगुरुके पावन मुखारविन्दसे निकला दिव्य–सन्देश पीड़ित मानवताके लिए एकमात्र शान्तिदायक वस्तु

सज्जनो! हम अपने आचार्यदेवकी ही कृपाके द्वारा, अपूर्ण रूपमें ही सही, उनके दिव्य सन्देशको समझनेमें

कुछ समर्थ हुए हैं। हमें यह अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि हमने यह निश्चय ही अनुभव कर लिया है कि हमारे आचार्यदेव ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराजके पावन मुखारविन्दसे निकला दिव्य–सन्देश पीड़ित मानवताके लिए एक शान्तिदायक वस्तु है। हम सबको धैर्यपूर्वक उनसे श्रवण करना चाहिए। यदि हम बिना किसी अनावश्यक विरोधके उस अप्राकृत शब्द–ध्वनिका श्रवण करें, तो श्रील आचार्यदेव निश्चय ही हम सबपर कृपा करेंगे। आचार्यका सन्देश हमें अपने मूल निवास, भगवान्‌के धाममें ले जानेके लिए है। अतएव, मैं पुनः कहता हूँ कि हम धैर्यपूर्वक उनसे श्रवण करें, श्रद्धा और विश्वासके साथ उनकी आज्ञाका पालन करें और उनके चरणारविन्दमें प्रणाम करें। ऐसा करनेसे हम भगवान् तथा सभी प्राणियोंकी सेवा करनेकी अपनी वर्तमान अकारण अनिच्छासे मुक्त हो जाएँगे।

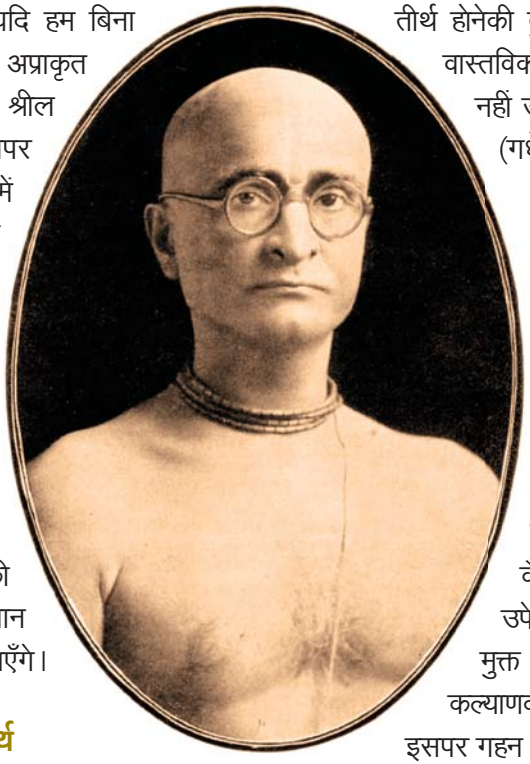

आत्महत्याका वास्तविक अर्थ

श्रीमद्भगवद्गीतासे हमें शिक्षा प्राप्त होती है कि देहका नाश हो जाने पर भी आत्मा नष्ट नहीं होती। वह अपरिवर्तनशील, नवीन और स्फूर्तिमय बनी रहती है। आत्माको न अग्नि जला सकती है, न जल भिगो सकता है, न वायु सुखा सकती है और न ही तलवार उसका वध कर सकती है। वह अजन्मा और नित्य है। इसको श्रीमद्भागवत (१०/८४/१३)में भी सिद्ध किया गया है—

"यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौमौ ईज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि–
ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥"

"जो मनुष्य तीन तत्वों (कफ, पित्त और वायु) से बने इस शरीरको आत्मा मानता है, जिसकी स्त्री तथा पुत्रसे घनिष्ठ शारीरिक सम्बन्ध रखनेमें प्रीति रहती है, जो अपनी जन्मभूमिको पूजनीय समझता है और जो जलमें तीर्थ होनेकी बुद्धिसे स्नान करता है, परन्तु वास्तविक ज्ञान रखनेवाले मनुष्योंसे लाभ नहीं उठाता, वह एक गौ अथवा खर (गधे) से श्रेष्ठ नहीं है।"

दुर्भाग्यवश अपनी वास्तविक सुविधाकी उपेक्षा करने और इस भौतिक पिंजड़ेको अपना स्वरूप माननेके कारण इन दिनों हम सभी लोग मूर्ख बना दिए गए हैं। हमने अपनी सम्पूर्ण–शक्तियाँ अपने भौतिक पिंजड़ेकी निरर्थक देखभालमें केन्द्रित कर रखी है और पिंजड़ेके भीतर कैद रहनेवाली आत्माकी पूर्णरूपसे उपेक्षा कर दी है। पिंजड़ा पक्षीको मुक्त करनेके लिए है—पक्षी पिंजड़ेके कल्याणके लिए नहीं है। अतएव हम सब इसपर गहन चिन्तन करें। अभी हमारे समस्त कार्य–कलाप इस पिंजड़ेकी देखभाल करनेमें संलग्न हैं और अधिक–से–अधिक हम यही करते हैं कि कला एवं साहित्यके द्वारा मनको कुछ भोजन देनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु हमें यह ज्ञात नहीं है कि यह मन भी सूक्ष्म रूपसे भौतिक ही है। इसे गीता (७/४) में कहा गया है

"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥"

अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, अकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—ये आठ प्रकारसे विभाजित तत्त्व मेरी भिन्ना (भौतिक) प्रकृति है।

हमने कदाचित् ही उस आत्माको कभी किसी प्रकारका भोजन देनेका प्रयत्न किया है, जो आत्मा शरीर और मनसे भिन्न है। अतः हम सब यथार्थ रूपमें आत्महत्या कर रहे हैं। आचार्यदेवका सन्देश हमको सचेत करता है कि हम इन गलत कार्य–कलापोंका अन्त करें। हमपर उन्होंने जो विशुद्ध करुणा एवं कृपा की वर्षा की है, उसके लिए हम उनके चरणकमलोंकी वन्दना करें।

मनुष्य जीवनके सर्वोत्तम उपयोगकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए

सज्जनो! एक पलके लिए भी यह विचार मत कीजिए कि मेरे गुरुदेव आधुनिक सभ्यतापर पूर्ण अंकुश लगा देना चाहते हैं। यह असम्भव चमत्कार है। परन्तु घटिया सौदेका सर्वोच्च उपयोग करनेकी कलाकी शिक्षा हम श्रील आचार्यदेवसे प्राप्त करें। साथ ही हम मानव जीवनके महत्वको भी समझें, जो यथार्थ–चेतनाके चरम विकासके योग्य है। इस विरले मनुष्य जीवनके सर्वोत्तम उपयोगकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। जैसाकि श्रीमद्भागवत (११/९/२९) में कहा गया है–

"लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव–
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥"

अर्थात् यह मनुष्य शरीर अनेकानेक जन्मोंके पश्चात् प्राप्त होता है और यद्यपि यह अनित्य ही है, तथापि यह परम लाभ की प्राप्ति करा सकता है। अतएव एक गम्भीर एवं बुद्धिमान पुरुषको तत्काल ही जीवनका लक्ष्य पूरा करनेका प्रयत्न करना चाहिए और अगली मृत्यु आनेके पूर्व जीवनके परम लाभ की प्राप्ति कर लेनी चाहिए। उसे इन्द्रियतृप्ति (विषय–भोग) से बचना चाहिए, क्योंकि वह तो सभी अवस्थाओं (योनियों) में प्राप्त हो जाती है।

हम सांसारिक विषय भोगोंकी व्यर्थ खोजमें ही इस मनुष्य जीवनका दुरुपयोग न करें। दूसरे शब्दोंमें आहार, निद्रा, भय (आत्म–रक्षा) और मैथुन जैसे कार्योंके लिए ही जीवित न रहें। आचार्यदेवका सन्देश श्रील रूपगास्वामीके शब्दों (श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु १/२/२५५–२५६) द्वारा व्यक्त हुआ है–

"अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥
प्रापञ्चिकतया बुद्धया हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥"

अर्थात् उस मनुष्यको पूर्ण रूपसे वैराग्यमय जीवनमें स्थित कहा जाता है, जो कृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण–भक्तिके अनुसार जीवन निर्वाह करता है। उसे इन्द्रियतृप्तिके विषयोंसे अनासक्त रहना चाहिए और शरीरके निर्वाहके लिए जो आवश्यक है, उसको ही स्वीकार करना चाहिए। दूसरी ओर, जो श्रीकृष्णकी सेवामें उपयोग हो सकनेवाली वस्तुओंको भौतिक मानकर त्याग देता है, उसका वैराग्य पूर्ण नहीं है।

हमें यह अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि हमने यह निश्चय ही अनुभव कर लिया है कि हमारे आचार्यदेव ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराजके पावन मुखारविन्दसे निकला दिव्य–सन्देश पीड़ित मानवताके लिए एक शान्तिदायक वस्तु है।

इन श्लोकोंके तात्पर्यको केवल तभी आत्मसात किया जा सकता है जब हम अपने जीवनके पशु–अंशका नहीं, बल्कि विवेकी अंशका पूर्णरूपसे विकास करें। आचार्यदेवके चरणकमलोंमें बैठकर ज्ञानके इस अप्राकृत स्रोतसे हम यह समझनेका प्रयास करें कि हम क्या हैं, यह जगत् क्या है, भगवान् क्या हैं और भगवान्के साथ हमारा क्या सम्बन्ध है। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुका सन्देश जीवोंके लिए है और वह जीवन्त (वैकुण्ठ) जगत्का सन्देश है।

श्रीगुरुकृपासे असद्-विचार और असत्संगसे रक्षा

भगवान् श्रीचैतन्यदेवने स्वयं इस मर्त्य–जगत्के उत्थानकी चिन्ता नहीं की, जिसे मृत्यु लोक कहा जाता है, जिसका अर्थ है—वह जगत् जहाँ प्रत्येक वस्तुकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व श्रीचैतन्य महाप्रभु उस अप्राकृत जगत्के विषयमें कुछ जानकारी देने हमारे समक्ष प्रकट हुए, जहाँ प्रत्येक वस्तु स्थायी है और प्रत्येक वस्तु भगवान्की सेवाके लिए है। परन्तु कुछ ही समय पूर्व भगवान् श्रीचैतन्यका कुछ विवेक–शून्य व्यक्तियोंके द्वारा असंगत रूपमें प्रतिनिधित्व किया गया और भगवान्के द्वारा प्रतिपादित उच्चतम दर्शनकी निम्नतम प्रकारके समाजकी संस्कृतिके रूपमें असद्–व्याख्या की गई। आज रात्रि हमें यह घोषणा करते हुए हर्ष होता है कि हमारे आचार्यदेवने अपनी स्वाभाविक दयावश हम सबकी इस प्रकारके भयंकर पतनसे रक्षाकी है। अतएव हम सम्पूर्ण विनम्रताके साथ उनके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं।

सज्जनो! आजकलके सभ्य (अर्थात असभ्य) समाजमें यह सिद्ध करनेका उन्माद छाया हुआ है कि भगवान् केवल निराकार हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्की इन्द्रियाँ नहीं हैं, स्वरूप नहीं है, कर्म नहीं हैं, मस्तक नहीं है, चरण नहीं हैं, उनका कोई आनन्दास्वादन नहीं है—लोग भगवान्को ऐसा निरर्थक बनानेके लिए व्याकुल हो रहे हैं। आधुनिक विद्वानोंके लिए भी ऐसा करना तो एक हर्षका विषय रहा है, क्योंकि उनके पास उचित निदर्शन और वैकुण्ठ धामके यथार्थ दृष्टिकोणका पूर्ण अभाव है। इन सभी ज्ञानियोंकी विचारधारा एक ही है; समस्त भोग्य वस्तुओं पर मानव समाज अथवा एक विशिष्ट वर्गका ही एकमात्र अधिकार होना चाहिए और निराकार भगवान्को उनके निराले चमत्कारोंको पूर्ण करनेवाला एक आज्ञाकारी सेवक होना चाहिए। हमें प्रसन्नता है कि कृष्णकृपामूर्ति परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराजकी करुणाके द्वारा हम इस भयंकर प्रकारकी व्याधिसे मुक्त हो गए हैं। वे हमारे नेत्र–उन्मीलक, हमारे शाश्वत पिताश्री, हमारे शाश्वत गुरु एवं हमारे शाश्वत निर्देशक हैं। अतएव इस मंगलमय दिवसपर हम उनके चरणारविन्दकी वन्दना करें।

सज्जनो! यद्यपि हम परतत्वके ज्ञानके सम्बन्धमें अज्ञानी शिशुके सदृश हैं, तथापि कृष्णकृपामूर्ति मेरे गुरुदेवने शुष्क–ज्ञानके अजेय अन्धकारको नष्ट करनेके लिए हमारे भीतर एक लघु अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी है। हम अब इतने सुरक्षित स्थानपर हैं कि ज्ञान मार्गके दार्शनिक तर्कोंका कितना भी अपार भण्डार, कृष्णकृपामूर्तिके चरणकमलोंमें हमारी शाश्वत निर्भरताकी स्थितिसे हमको तनिक भी विचलित नहीं कर सकता। इतना ही नहीं, हम मायावादके सर्वाधिक प्रकाण्ड विद्वानोंको भी चुनौती देनेके लिए और यह सिद्ध करनेके लिए तैयार हैं कि पूर्ण–पुरुषोत्तम भगवान् और गोलोकमें उनकी अप्राकृत लीलाएँ ही वेदोंकी परमोत्कृष्ट जानकारी है। इस तत्त्वका छान्दोग्य उपनिषद् (८/१३/१) में सुस्पष्ट संकेत है–**"श्यामाच्छबलं प्रपद्ये, शबलाच्छ्यामं प्रपद्ये।"** अर्थात् श्रीकृष्णकी कृपा प्राप्त करनेके लिए, मैं उनकी शक्ति (राधा) के शरणागत होता हूँ और उनकी शक्तिकी कृपा प्राप्त करनेके लिए श्रीकृष्णके शरणागत होता हूँ।

इसी प्रकार ऋग्वेद (१/२/२२/२०) में कहा गया है—

"तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततं विष्णोर्यत्परमं पदम्॥"

अर्थात् भगवान् श्रीविष्णुके चरणाविन्द समस्त देवताओंके परम लक्ष्य हैं। भगवान्के ये चरणारविन्द आकाशमें स्थित सूर्यके सदृश प्रकाशवान् हैं।

श्रीव्यास–पूजा का रहस्य

श्रीमद्भगवद्गीतामें इतने सुस्पष्ट ढंगसे वर्णन किए गए परम सत्यको, जो वेदोंकी भी प्रधान शिक्षा है, ज्ञान–मार्गके सर्वाधिक शक्तिशाली विद्वानोंके द्वारा समझनेकी बात तो बहुत दूर है, उसका उन्हें आभास तक भी नहीं पाता है—यही श्रीव्यास–पूजा का रहस्य है। जब हम परम–सत्य भगवान्की अप्राकृत–लीलाओंका ध्यान करते हैं, तो हम गर्वका अनुभव करते हैं कि हम भगवान्के नित्य दास हैं और

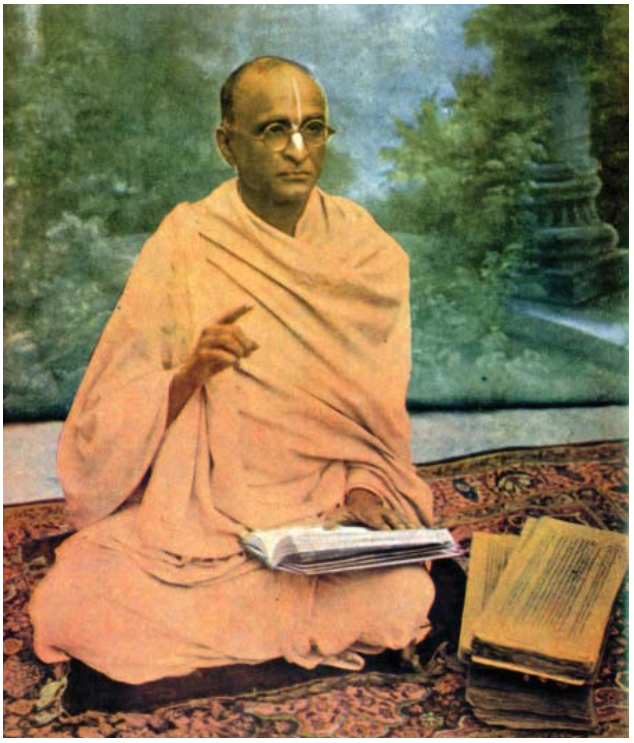

हमें प्रसन्नता है कि कृष्णकृपामूर्ति परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री–श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराजकी करुणाके द्वारा हम इस भयंकर प्रकारकी व्याधिसे मुक्त हो गए हैं। वे हमारे नेत्र–उन्मीलक, हमारे शाश्वत पिताश्री, हमारे शाश्वत गुरु एवं हमारे शाश्वत निर्देशक हैं।

हम आनन्द–विभोर हो उठते हैं तथा हर्षके कारण नृत्य करने लग जाते हैं। मेरे दिव्य प्रभु श्रील गुरुदेवकी जय हो, क्योंकि उन्होंने अपनी अनवरत दयाके कारण ही हमारे भीतर शाश्वत अस्तित्वके ऐसे तीव्र अभियानको उद्वेलित कर दिया है। हम उनके चरणारविन्दकी वन्दना करते हैं।

यदि आचार्य हमारे समक्ष प्रकट न होते, तो ...!

सज्जनो! यदि हमें इस घोर सांसारिक मायाकी दासतासे मुक्त कराने हेतु श्रील आचार्यदेव हमारे समक्ष प्रकट न होते, तो निश्चय ही हमें असहाय दासताकी स्थितके इस अन्धकारमें जन्म–जन्मान्तर तक रहना पड़ता। यदि वे हमारे समक्ष प्रकट न होते, तो हम भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुके परमोत्कृष्ट शिक्षामृतके शाश्वत सत्यको समझनेमें समर्थ न हो पाते। यदि वे हमारे समक्ष प्रकट न होते, तो हम ब्रह्मसंहिताके इस प्रथम श्लोककी सार्थकताको समझनेके योग्य नहीं हो सकते थे–

"ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥"

अर्थात् श्रीकृष्ण, जिनको श्रीगोविन्द कहा जाता है, परम ईश्वर हैं। उनका श्रीविग्रह (शरीर) सच्चिदानन्द अर्थात् शाश्वत, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबके आदि हैं। श्रीकृष्णका कोई आदि नहीं है। वे अनादि हैं और वे समस्त कारणोंके प्रधान कारण हैं।

आचार्यके चरणोंमें विनती

व्यक्तिगत रूपसे मुझे कोई आशा नहीं है कि करोड़ों जन्मोंमें भी मैं अपने गुरुदेवकी कोई प्रत्यक्ष सेवा कर सकूँगा, परन्तु इतना मुझे सुदृढ़ विश्वास अवश्य है कि किसी–न–किसी दिन मायाके दलदलसे मेरी मुक्ति हो जाएगी, जिसमें मैं वर्तमानमें इतनी गहराईसे फँसा हुआ हूँ। अतएव मैं अपनी सम्पूर्ण गम्भीरताके साथ अपने दिव्य प्रभु श्रील गुरुदेवके चरणकमलोंमें विनती करता हूँ कि मुझे मेरे पूर्व कृत दुष्कर्मोंके कारण निर्धारित कष्टोंको भोगने दिया जाए। परन्तु मुझमें यह अनुस्मरण करनेकी शक्ति बनी रहे कि सर्वशक्तिमान् परम–सत्य श्रीभगवान्‌के एक क्षुद्र दासके अतिरिक्त मेरा अस्तित्व कुछ भी नहीं है और मुझे इस वास्तविकताका अनुभव मेरे दिव्य प्रभु श्रील आचार्यदेवकी अपार एवं अहैतुकी दयाके माध्यमसे हुआ है। अतएव पूर्ण विनम्रताके साथ मैं उनके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ।

['भागवत धर्म' से अनुवादित]

व्यासपूजाके अवसरपर ॐ

श्रीव्यासपूजाके श्रीहरि–

श्रीव्यासदेवका आनुगत्य छोड़कर गुरुपूजाका कोई वास्तविक फल नहीं

आज एक विशेष दिन है। किसीके जन्मदिनके उपलक्ष्यमें गुरु–वैष्णव–भगवान्‌की विशेष पूजाका आयोजन हो रहा है। श्रीव्यासदेवके अनुगत सम्प्रदायके तुर्याश्रमिगण प्रतिवर्ष अपने–अपने जन्मदिनपर पूर्व गुरुकी पूजाका विधान करते हैं। गुरुकी आविर्भाव–तिथिके विचारसे जो व्यासपूजाका आवाहन होता है, उसमें भगवान् श्रीव्यासदेव एवं समग्र वैयासकि–सम्प्रदायकी ही पूजा विहित होती है। विचार यही है कि व्यासदेवका आनुगत्य छोड़कर गुरुपूजाका कोई वास्तविक फल नहीं है। श्रीव्यासदेव—भगवान्‌की ही अभिन्न मूर्त्ति, प्रकाश विग्रह हैं। भगवान् स्वयं ही स्वयंको प्रकाशित करनेके लिये अक्षरात्मक वेदशास्त्रके रूपमें प्रकटित हुए हैं। पुनः साधारण–भावसे बुद्धिके अगम्य होनेके कारण जब वेदको भी विस्तारित करनेकी आवश्यकता पड़ती है, तब भगवान् ही व्यासरूपमें वह विस्तार कार्य किया करते हैं। कारण वे ही स्वयं तत्त्ववस्तु हैं, यदि वे स्वयं ही स्वयंको प्रकाशित न करें तो कोई भी उनको यथार्थभावसे जान नहीं सकते। **"वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृत् वेदविदेव चाहम्।"** (श्रीगीता १५/१५) श्रीकृष्ण कहते हैं—मैं ही वेदोंकी प्रतिपाद्य वस्तु हूँ, मैं ही वेदोंका तात्पर्यवेत्ता

विष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी हरिकथा

अवसरपर दीन-अकिञ्चनकी गुरु-वैष्णवोंके निकट प्रार्थना

७ फरवरी, २००२,
श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ, सिलिगुड़ि

हूँ, मैं ही वेदान्त प्रकाशक हूँ। अतः व्यासदेवका आनुगत्य छोड़कर भगवान्‌को जाननेका और कोई सुन्दर उपाय नहीं है। **श्रीगुरुदेव उन्हीं व्यासदेवका प्रतिनिधित्व करते हुए भगवत्-तत्त्व प्रकाशित करते हैं।** इसीलिये श्रीगुरुपूजाके अर्थसे व्यासपूजाको ही लक्ष्य किया जाता है—यही व्यासानुगत सम्प्रदायका वैशिष्ट्य है। **श्रीगुरुतत्त्व और श्रीव्यासतत्त्व—एक ही तत्त्व हैं।** इसीलिये श्रीव्यासपूजाका ही नामान्तर—श्रीगुरुपादपद्ममें पाद्यार्पण है; इसके द्वारा श्रीगुरुदेवका मनोऽभीष्ट जो पूर्ण भगवत्सेवा है, वही लक्षित होता है।

श्रीगुरुके निकट अभिगमन करनेकी आवश्यकता

शास्त्र (मुण्डक उपनिषद् १/२/१२) कहते हैं—**"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।"** 'तद्विज्ञानार्थं'—केवल तत्त्वज्ञान नहीं, विज्ञान-समन्वित तत्त्वज्ञान अर्थात् प्रेमभक्तिका तत्त्वज्ञान लाभ करना होगा। केवल तत्त्वज्ञान होनेसे अनेक स्थानपर निर्विशेष-ब्रह्मकी धारणा हो जाती है, इससे जीवको अविद्यासे परित्राण लाभ नहीं होता। कारण, निर्विशेष कहनेसे शास्त्रोंमें वास्तवमें जिस वस्तुको लक्ष्य किया जाता है, उसे प्राकृत-विचार-सम्पन्न मनुष्य ग्रहण नहीं कर सकते। उनकी कल्पनामें जो निर्विशेष-धारणा है, 'ब्रह्म' वह वस्तु नहीं हैं। सर्वकारणकारण ब्रह्म यदि निर्विशेष हों, तब जगतमें इतना सब वैशिष्ट्य, वैचित्र्य कहाँसे आया है? अतः तत्त्व जिज्ञासाके प्रारम्भमें ही यदि हमारी त्रुटि हो जाय, तो उसके फलस्वरूप हमें कभी भी आत्मप्रसाद लाभ नहीं हो सकता। श्रीव्यासदेवने ब्रह्म-सूत्र (१/१/१)के प्रारम्भमें ही यह कहा है—**"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।"** मैं ब्रह्मको नहीं जानता—वे कौन हैं, उनका परिचय क्या है, उनके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है?—यह सब जानना चाहता हूँ, समझना चाहता हूँ। यदि मुझे यह ज्ञान होता, तो मेरे भीतर यह जिज्ञासा नहीं होती। अतः मुझे उन्हीं ज्ञानप्रद शिक्षककी आवश्यकता है। अतएव यहीं यथार्थ ब्रह्मज्ञ गुरुकी बात अनुस्यूत हुई है। तभी श्रुतियाँ कहती हैं—**"गुरुमेवाभिगच्छेत्"। 'गुरुमेव'**—निश्चयकर कहा गया है कि गुरुके अतिरिक्त और किसी source से उस ब्रह्मको जाना नहीं जा सकता। अतः उनके निकट ही **'अभिगच्छेत्'**—अभिगमन करना होगा। अभिगमन अर्थात् Approaching with service temperament and honest enquiry।

"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥"

गीता (४/३४) में इस स्थानपर अभिगमनकी व्याख्या है। **'प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा'**—यह विचार लेकर गमन करनेका नाम है **'अभिगमन'**। **'प्रणिपात'** अर्थात् आत्मनिवेदन—सर्वप्रथम इसकी ही आवश्यकता है। उसके बाद **'परिप्रश्न'**—honest enquiry—सत्यको जाननेके लिये, समझनेके लिये प्रश्न, केवल तर्कके उद्देश्यसे नहीं। एवं **'सेवा'**—serving temperament, यह न होनेपर reciprocation ठीक नहीं होगा।

"ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीति–लक्षणम्॥"

(उपदेशामृत ४)

अर्थात् विशुद्ध भक्तोंको उनकी आवश्यकतानुसार वस्तु देना, विशुद्ध भक्तोंके द्वारा दी हुई प्रसादस्वरूप वस्तुको लेना, भजन सम्बन्धी अपनी गुप्त बातें भक्तोंके निकट कहना, वैसे ही रहस्यमयी गुप्त बातोंको उनसे पूछना, भक्तोंके द्वारा दिए गये प्रसादको प्रीतिपूर्वक भोजन करना और उन्हें प्रीतिपूर्वक भोजन कराना—ये छह प्रकारके सत्सङ्गरूप प्रीतिके लक्षण हैं।

ब्रह्म क्या वस्तु है?—यह एकमात्र श्रौतपन्थासे ही जाना जाता है—किसी प्रकारकी Mental speculation या तर्कपथकी विषय–वस्तु वह ब्रह्म नहीं है। अत: अभिगमन न होनेपर तत्त्वज्ञान लाभ नहीं होगा, केवल समय नष्ट होगा।

सम्प्रीति स्थापित न होनेपर मैं उनके हृदयके आशयको समझ नहीं पाऊँगा। अत: अभिगमन न होनेपर तत्त्वज्ञान लाभ नहीं होगा, केवल समय नष्ट होगा।

ब्रह्म क्या वस्तु है?—यह एकमात्र श्रौतपन्थासे ही जाना जा सकता है

किन्तु जिनके निकट इस प्रकार अभिगमनका विचार है—वे कैसे होंगे? उनका वैशिष्ट्य क्या होगा? शास्त्र कहते हैं—**"श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्"**—वे श्रौतपन्थी ब्रह्मनिष्ठ–गुरु होंगे। ब्रह्म क्या वस्तु है?—यह एकमात्र श्रौतपन्थासे ही जाना जाता है—किसी प्रकारकी Mental speculation या तर्कपथकी विषय–वस्तु वह ब्रह्म नहीं है।

"अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
प्रकृतिभ्य: परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥"

(महाभारत भीष्मपर्व ५/२२)

प्रकृतिसे जो अतीत हैं, उन्हें प्रकृतिके अन्तर्गत जो युक्ति है, उससे मापनेसे चलेगा नहीं—वैसी चेष्टासे किसी प्रकारकी बुद्धिमता प्रमाणित नहीं होती। इसीलिये श्रौतपन्था छोड़कर उसे जानने–समझनेका और कोई उपाय नहीं है। श्रौतपन्था अर्थात् अपने मनसे किसीने कहा और उसके बाद वही बात अज्ञ–परम्परामें चलने लगी, ऐसा नहीं है। श्रौतपन्थाके मूल वक्ता—स्वयं भगवान् हैं एवं श्रोता हैं—उनके कोई विशेष कृपापात्र। हमारी आलोचनामें पहले ही यह विचार आया है—ब्रह्म क्या वस्तु है?—यह स्वयं ब्रह्मके न बतलानेपर कोई भी उन्हें ठीक–रूपमें जान नहीं सकता। तभी जगतस्रष्टा पितामह ब्रह्मा कह रहे हैं—

"अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय–
प्रसाद–लेशानुगृहीत एव हि।
जानामि तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥"

(श्रीमद्भा० १०/१४/२९)

हे प्रभो, हे भगवन्, आपकी कृपालेशको छोड़कर चिरकाल अनुसन्धान करके भी आपको जाना नहीं जा सकता। **"ईश्वरेर कृपालेश हय त जाहारे। सेई से ईश्वर तत्त्व जानिवारे पारे॥"** (श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ६/८४) [अर्थात् ईश्वरकी लेशमात्र भी कृपा जिनपर होती है, वही ईश्वर–तत्त्वको जान सकते हैं, अन्य नहीं] उपनिषद् (मुण्डक० ३/२/३) कहते हैं—**"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥"** बहुत पाण्डित्य है, तीक्ष्ण बुद्धि है—इनके द्वारा भगवान्‌को जान लूँगा, समझ लूँगा, अपने मनके अनुसार उनकी रूप–रेखा बना लूँगा—ऐसा होना संभव नहीं है। वे जिसको ग्रहण करेंगे **'तेन लभ्य:'**—वही उनको प्राप्त कर सकेगा। तभी भगवान्‌ने

स्वयं ही ब्रह्माके साथ Communicate किया था। क्यों किया? ब्रह्माकी भगवान्‌को जाननेके लिये विशेष चेष्टा थी। आरोहपन्थाका त्यागकर उन्होंने भगवान्‌के शरणागत हुए। तब भगवान्‌ने उनके निकट वेद प्रकाश किया—

"कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेद–संज्ञिता।
मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः॥"

(श्रीमद्भा॰ ११/१४/३)

श्रीकृष्ण कह रहे हैं—सृष्टिके आरम्भमें मैंने शरणागत ब्रह्माको शब्दब्रह्म—वेद प्रदान किया था। उनमें क्या है? **"धर्मो यस्यां मदात्मकः"**—जिससे मेरे प्रति प्रेमभक्ति लाभ होती है, उस भागवत्–धर्मकी कथा है।

"यावानहं यथाभावो यद्रूपगुण–कर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥"

(श्रीमद्भा॰ २/९/३२)

हे ब्रह्मा! मैं जो तत्त्व हूँ, मेरा जो भाव, जो रूप, जो कर्म है, वह तत्त्वज्ञान मेरे अनुग्रहसे तुम्हें प्राप्त हो। अतः स्वयं उस तत्त्व वस्तुसे ही श्रौतपन्थाका उदय है। इसी भावसे ही चार वैष्णव–सम्प्रदाय प्रकाशित हुए हैं।

"सम्प्रदाय विहिना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।
श्री–ब्रह्म–रुद्र–सनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः॥"

(पद्मपुराण)

श्री–सम्प्रदाय, ब्रह्म–सम्प्रदाय, रुद्र–सम्प्रदाय और सनक–सम्प्रदाय—ये चार वैष्णव सम्प्रदाय हैं—यही चार श्रौतपन्था हैं। और बाकी सब अश्रौत विचार—स्वकपोलकल्पना हैं। 'ब्रह्म निर्विशेष, निराकार हैं'—इसे छोड़कर जो ब्रह्मके और किसी विचारको नहीं मानते, वे अश्रौतपन्थी हैं।

ब्रह्मनिष्ठ कौन हैं?

जिन श्रुतियोंमें भगवान्‌के निर्विशेषत्वकी बात कही गयी है, उन्हीं श्रुतियोंमें उनके सविशेषत्वके विषयमें भी कहा गया है,—

"या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं
सा साभिधत्ते सविशेषमेव।
विचारयोगे सति हन्त तासां
प्रायो वलीयः सविशेषमेव॥"

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ६/१४२)

अतः दोनों विचार ही युगपत् हैं। किन्तु, उनमें भी सविशेषत्व ही अधिक बलवान् है। कारण, सविशेषत्व ही ब्रह्मका स्वरूप लक्षण है, निर्विशेषत्व तो केवल तटस्थ, व्यतिरेक विचार है। 'निर्विशेष' अर्थात् जिनमें कोई जड़ विशेषता, प्राकृत विशेषता नहीं है। और 'सविशेष' अर्थात् जो अप्राकृत विशेषतासे युक्त, अप्राकृत रूप, अप्राकृत गुण, अप्राकृत विलास समन्वित हैं। दोनों विचार ही एक तात्पर्यपर हैं, इनमें विरोधिता कहाँ है? जो इनमें विरोध दर्शन करते हैं, जो केवल निर्विशेषत्वको ही पारमार्थिक कहते हैं और सविशेषत्वको व्यवहारिक, मिथ्या, बच्चोंको बहलानेवाली, तात्कालिक—इस प्रकार कहकर वेद–वाक्योंमें अर्थवाद करते हैं, वे ब्रह्मनिष्ठ नहीं हैं, वे अपराधी हैं। ब्रह्मको—एक तो मानव है और दूसरा मेरा सुविधानुयायी न होनेके कारण उसका परित्याग करूँगा, उसे व्यवहारिक कहूँगा—इससे ब्रह्मनिष्ठा प्रमाणित नहीं होती। किन्तु, गुरुदेव **"श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठम्"**—वे ब्रह्मनिष्ठ हैं, वे दोनों विचारोंमें ही सुसामञ्जस्यकारी हैं।

श्रीगुरुदेव–तत्त्वदर्शी और भगवत्सेवा प्रकाशक

"तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासु श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥"

(श्रीमद्भा॰ ११/३/२१)

जो उत्तम श्रेयः क्या है, आत्यन्तिक मङ्गल क्या है, कैसे वह प्राप्त हो सकता है?—यह जानना चाहते हैं, समझना चाहते हैं, वे शब्दब्रह्म और परब्रह्ममें निष्णात श्रीगुरुके शरणागत होंगे। शब्दब्रह्म अर्थात् नामब्रह्म—वाचकब्रह्म; परब्रह्म अर्थात् नामीब्रह्म—वाच्यब्रह्म। **"शब्दब्रह्म परब्रह्म ममोभे शाश्वती तनुः।"** [अर्थात् शब्दब्रह्म और परब्रह्म—ये मेरे नित्य दो श्रीअङ्ग हैं।] **"वाच्यं वाचकमित्युदेति भवतो नामस्वरूपद्वयम्।"** (श्रीनामाष्टकम् ६) [अर्थात् हे नाम! आपके वाच्य एवं वाचकरूपसे दो स्वरूप संसारमें प्रकट

होते हैं।] भगवान्के इन दोनों स्वरूपोंमें ही वे निष्णात हैं। वे Realised soul हैं, Professional Priest नहीं हैं अथवा Platform speaker नहीं हैं। वे तत्त्वदर्शी होते हैं—तत्त्व वस्तुका दर्शन, अनुभव करते हैं। तत्त्ववस्तु अर्थात् भगवान्, तत्त्ववस्तु अर्थात् भगवन्नाम्, भगवद्गुण, भगवद्रूप, भगवद्परिकर, भगवल्लीला, भगवद्धाम। यह सब कुछ लेकर ही तो तत्त्ववस्तु है। श्रीगुरुदेव वही तत्त्वदर्शी हैं।

श्रीकृष्णने उन्हीं तत्त्वदर्शी गुरुदेवको अपना ही स्वरूप कहा है—

"आचार्यं मां विजानीयात् नावमन्येत् कर्हिचत्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥"

(श्रीमद्भा॰ ११/१७/२७)

अर्थात् भगवान् उद्धवसे बोले—"हे उद्धव! गुरुदेवको मेरा स्वरूप समझना। गुरुको सामान्य व्यक्ति समझकर उनकी अवज्ञा मत करना। गुरु सर्वदेवमय हैं।"

श्रीगुरुदेव स्वयं कृष्ण हैं—यह विचार उचित नहीं है। जो लोग ऐसा विचार करते हैं, उन्हें शास्त्रोंमें पाषण्डी, नारकी कहा गया है। भगवान् एवं भगवत्परिकर अभिन्न वस्तु हैं, किन्तु ऐसा होनेपर भी वे एक वस्तु नहीं है। भगवत्परिकर—भगवत्सेवा–विधानकारी होते हैं और गुरुदेव—भगवत्सेवा प्रकाशक होते हैं। अतः भगवत्परिकरमें ही वह गुरुत्व निहित है।

"यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास।
तथापि जानिये आमि ताहार प्रकाश॥"

(श्रीचैतन्यचरितामृत आदि १/४४)

अर्थात् यद्यपि मेरे गुरु श्रीचैतन्य महाप्रभुके दास हैं, तथापि मैं उनको श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रकाशके रूपमें दर्शन करता हूँ।

भगवत्परिकर—भगवत्सेवा–विधानकारी होते हैं और गुरुदेव—भगवत्सेवा प्रकाशक होते हैं। अतः भगवत्परिकरमें ही वह गुरुत्व निहित है।

श्रीगुरु–श्रीकृष्णके अचिन्त्य–भेदाभेद प्रकाश–विग्रह

जिस प्रकार सूर्यसे उसके आलोकको भिन्न करके प्राप्त नहीं किया जा सकता, इसी कारण सूर्य एवं उसका प्रकाश अभिन्न हैं, उसी प्रकार भगवान् और गुरुदेव हैं। पुनः जिस प्रकार सूर्यके अधीन उसका आलोक रहता है, उसी प्रकार श्रीगुरुदेव भगवदधीन तत्त्व—भगवान्के सेवक तत्त्व हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें गुरुदेवको अभिन्न कृष्ण कहा गया है।

"शुद्धभक्ताः श्रीगुरोः श्रीशिवस्य च भगवता सह अभेददृष्टिं तत्प्रियतमत्वेनैव मन्यन्ते॥"

(भक्ति–सन्दर्भ २१६)

अर्थात् शास्त्रोंमें जिन–जिन स्थलोंपर श्रीगुरुदेव और वैष्णवप्रवर शम्भुको भगवान्से अभिन्न कहा गया है, उन–उन स्थलोंपर शुद्धभक्तगण अभिन्नका तात्पर्य कृष्णका प्रियतम ही मानते हैं।

"साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै–
रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥"

(श्रीगुरुदेवाष्टकम् ७)

अर्थात् निखिल शास्त्रोंने जिनका साक्षात् हरिके अभिन्न विग्रहरूपसे गान किया है एवं साधुजन भी जिनकी उसी प्रकारसे भावना करते हैं, जो भगवान्क एकान्त प्रिय हैं, उन्हीं (भगवान्क अचिन्त्य–भेदाभेदप्रकाश विग्रह) श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ।

"गुरुवरं मुकुन्दप्रेष्ठत्वे, स्मर परमजस्रं ननु मनः॥"

(मनःशिक्षा २)

अतः सर्वत्र ही कहा गया है—गुरुदेव भगवत् प्रियतमजन हैं—इसी कारण उनका भगवदभिन्नत्व है। श्रील प्रभुपाद यही कह रहे हैं—"विषयजातीय कृष्ण आधे–भाग और आश्रयजातीय कृष्ण आधे–भागके हैं। इन दोनोंकी विलास–वैचित्र्य ही पूर्णता है। विषयजातीयकी पूर्ण–प्रतीति श्रीकृष्ण हैं और आश्रयजातीयकी पूर्ण–प्रतीति मेरे गुरुपादपद्म हैं।" इसीलिये कहा गया है कि वे कृष्णस्वरूप हैं, स्वयं कृष्ण नहीं।

श्रीगुरु कृष्ण स्वरूप क्यों हैं?

क्यों कृष्ण स्वरूप हैं? कारण, **"कृष्णभक्ते कृष्णेर गुण सकलि सञ्चारे।"** (श्रीचैतन्य–चरितामृत मध्य २२/७५) [अर्थात् श्रीकृष्णके सभी गुण श्रीकृष्णके भक्तमें भी सञ्चरित होता है] **"बृहत्वाद् बृहत्वाद् ब्रह्म"**—ब्रह्म स्वयं बृहद् तत्त्व हैं। पुनः वे अपने आश्रित तत्त्वको बृहत्व प्रदान करते हैं, इसीलिये वे ब्रह्म हैं। बृहत्के सान्निध्यमें क्षुद्रत्व दूर हो जाता है। जिस प्रकार आलोकके प्रभावसे अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार।

"कृष्ण–सूर्य सम, माया–अन्धकार।
जाहाँ कृष्ण तहाँ नहीं मायार अधिकार॥"

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य २२/३१)

अर्थात् श्रीकृष्ण सूर्य समान हैं और माया अन्धकार समान, इसलिए जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ मायाका कोई अधिकार नहीं है।

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि॥"

(श्रीमद्भा० १/२/२१)

भगवत् सान्निध्यमें जीवकी समस्त अविद्या–रूपी हृदयग्रन्थि दूर हो जाती है, समस्त संशय छिन्न हो जाते हैं, समस्त कर्म क्षय हो जाते हैं। इस प्रकार जीवके जितने क्षुद्रत्व, लघुत्व होते हैं, वे सब दूर हो जाते हैं और कृष्णमें जो स्वतःसिद्ध गुरुत्व है, वह उस जीवमें सञ्चारित हो जाता है। **"परम दुर्मति छिल, तारे गोरा उद्धारिल, तारा हइल पतित पावन॥"** (प्रार्थना ३७) [अर्थात् जिन अत्यन्त दुर्मति लोगोंको श्रीगौरांग महाप्रभुने उद्धार किया था, वे ही पतितोंको भी पावन करनेवाले बन गये] तब 'नग्न मातृका' न्यायके समान उसके पूर्व क्षुद्रत्वपर विचार करनेसे अपराध होता है।

स्वरूप–धर्मके प्रकाशसे ही गुरुत्वका प्रकाश

"किवा विप्र, किवा न्यासी, शूद्र केने नय।
येई कृष्णतत्त्ववेत्ता सेई गुरु हय॥"

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ८/१२८)

अतः कृष्णभक्त ही यथार्थ षड्वेगविजयी हैं, वे ही वास्तविक जगद्गुरु हैं।

अर्थात् ब्राह्मण, शूद्र, गृहस्थ अथवा संन्यासी किसी भी वर्ण या आश्रममें स्थित व्यक्ति कृष्णतत्त्वका ज्ञाता होनेपर गुरु होनेका अधिकारी है। कृष्णतत्त्वविद् होना ही गुरुका प्रधान लक्षण है।

आपात दर्शनसे गुरुत्वका निर्णय नहीं होता। स्वरूप–धर्मके प्रकाशसे ही गुरुत्व प्रकाशित होता है। तभी कहा गया है **'शूद्र केने नय'**। भगवद्भक्त क्या शूद्र हो सकते हैं? कदापि नहीं।

"न शूद्रो भगवद्भक्तः ते तु भागवत मताः।
सर्ववर्णेषु ते शूद्राः ये न भक्त जनार्द्दने॥"

(पद्मपुराण)

अर्थात् भगवद्भक्तिपरायण व्यक्ति कभी भी शूद्र नहीं कहलाते, उनको 'भागवत' ही कहा जाता है। जनार्दनके प्रति भक्ति न होनेपर कोई भी जाति क्योंन हो, उनकी 'शूद्र' कहकर ही गणना होती है।

अत्रि ऋषिने इस विचारको परिष्कृत कर दिया है—भगवद्भक्तोंको कभी भी शूद्र नहीं कहा जा सकता, वे सभी भागवत—पारमार्थिक विप्र हैं। उनमें किसी प्रकारका शोक–धर्म नहीं है, क्योंकि **'शोचनात् इति शूद्रः'** अर्थात् जो शोक करते हैं, वही 'शूद्र' है। तभी सर्वशोक–परिमुक्त भागवतगणोंको शूद्र कहनेपर महा–अपराध होता है। तब किन्हें शूद्र कहा जायेगा? **"सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्त जनार्द्दने"** (पद्मपुराण) जिनकी भगवान्के प्रति भक्ति नहीं हुई, मति नहीं हुई, वे सब समय शोक–मोह–भयग्रस्त रहते हैं, अतः वे शूद्र हैं। भगवद्भक्ति ही एकमात्र **'शोक–मोह–भयापहा'** है, उसका अवलम्बन न करनेपर जीवका शूद्रत्व दूर नहीं होता। कृष्णतत्त्ववेत्ता भागवतगणोंमें इस शूद्रत्वका स्थान नहीं है। कृष्णतत्त्ववेत्ता अर्थात् Theoritical है क्या? समस्त Theory को रट लिया, किन्तु हृदयस्थ कुछ नहीं हुआ या आंशिक हुआ है—कृष्णतत्त्ववेत्ता क्या इस प्रकारका कुछ है? नहीं, जो कृष्णतत्त्वमें सुदृढ़ भावसे Practical हैं, केवल theory मात्र नहीं, सहजभावसे उसमें अभ्यस्त, प्रतिष्ठित हैं, जिनकी

कथाओं और आचरणमें कोई विरोध नहीं है, कृष्णैकशरण जिनका स्वरूप लक्षण है, यहाँ उनके विषयमें ही कहा गया है। उनकी समस्त इन्द्रियाँ कृष्णसेवामें निरन्तर नियुक्त Adjusted, dovetailed हैं। तभी वहाँ षड्वेगोंका कोई disturbance नहीं होता है।

वास्तविक जगद्-गुरु

"वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
जिह्वावेगमुदरोपस्थ–वेगम्।
एतान् वेगान यो विषहेत धीरः
सर्वामपीमां पृथ्वीं स शिष्यात्॥"

(उपदेशामृत १)

अर्थात् जो धीर पुरुष अपनी वाणीके वेगको, मनके वेगको, क्रोधके वेगको, जिह्वाके वेगको, उदरके वेगको एवं जननेन्द्रियके वेगको सहन करनेमें समर्थ हो जाता है, वह समस्त पृथ्वीका शासन कर सकता है अर्थात् ऐसे जितेन्द्रिय व्यक्तिके सभी जन शिष्य हो जाते हैं।

जिन्होंने इन छह वेगोंपर विजय प्राप्त कर ली है, वे ही जगद्गुरु हैं। रेचक, पूरक, कुम्भक, यम, नियम, प्राणायामकर इन्द्रियोंको Totally disengage कर छह वेगोंको दमन करनेकी बात नहीं कही गयी है, अपितु इन्द्रियोंको षड्वेग दमन कराना, यही यथार्थ है।

"यमादिभिः योगपथैः कामलोभहतो मुहुः।
मुकुन्दसेवया यद्वद् तथाद्धात्मा न शाम्यति॥"

(श्रीमद्भा० १/६/३५)

अर्थात् काम और लोभकी चोटसे बार–बार घायल हुआ हृदय श्रीकृष्णकी सेवासे जैसी प्रत्यक्ष शान्तिका अनुभव करता है, यम, नियम आदि अष्टाङ्ग योग मार्गोंसे वैसी शान्ति नहीं होती है।

अतः कृष्णभक्त ही यथार्थ षड्वेगविजयी हैं, वे ही वास्तविक जगद्गुरु हैं।

'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'–श्रीकृष्ण ही मूल जगद्गुरु हैं, उनके गुरुत्वसे सबका गुरुत्व है। वे अन्यको गुरुत्व प्रदान करते हैं–

"यारे देख तारे कह कृष्ण उपदेश।
आमार आज्ञा गुरु हइया तार एई देश॥
कभु न बाधिबे तोमाय विषय तरङ्ग।
पुनरपि एई ठाञि पाबे मोर सङ्ग॥"

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ७/१२८–१२९)

अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा–जिनसे भी मिलोगे, उन्हें श्रीकृष्णके सम्बन्धमें उपदेश प्रदान करो। इस प्रकार मेरी आज्ञासे गुरु बनकर इस देशका उद्धार करो। मेरी आज्ञाका पालन करनेके कारण तुम्हें कभी भी विषयवासनारूपी तरङ्ग बाधित नहीं करेगा और मेरी आज्ञाका पालन करनेके फलस्वरूप इसी स्थानपर पुनः मेरा सङ्ग प्राप्त करोगे।

हिंसा करनेके लिये, विषयोंमें डूबनेके लिये गुरुगिरि मत करो

इस प्रकार भगवान् अपने आश्रितगणोंमेंशक्तिसञ्चरितकरउन्हेंगुरुरूपमेंजीवकल्याणके लिये जगतमें भेजते हैं। भगवद्–शक्ति सञ्चरित न होनेपर जीवको गुरुत्व लाभ नहीं होता। लघु–जीव भगवद्–शक्तिके अभावमें विषय–तरङ्गोंमें निमग्न हो जाता है। भगवद्–शक्ति–प्राप्त गुरुका इस प्रकार पतन नहीं होता। इसीलिये कहा गया है–**'कभु न बाधिबे तोमाय विषय तरङ्ग'**। श्रील प्रभुपादने तभी इस प्रसङ्गमें कहा है–"हिंसाका परित्यागपूर्वक जीवके प्रति दयाविशिष्ट होओ। हिंसा करनेके लिये गुरुगिरि मत करो।स्वयं विषयोंमें डूबनेके लिये गुरुगिरि मत करो। किन्तु यदि तुम मेरे निष्कपट दास बन सकते हो, मेरी शक्ति लाभ कर लो, तब तुम्हें किसी प्रकारका भय नहीं है।" अर्थात् निष्कपट भगवद्भक्तमें ही भगवद्–शक्ति सञ्चरित होती है। वह शक्ति प्राप्त न होनेपर जीवके प्रति दयाके बदले जीवहिंसा हो जाती है। जीवहिंसा अर्थात्? प्रभुपाद कह रहे हैं–''जीवहिंसा शब्दसे शुद्धभक्ति–प्रचारमें कुण्ठता और कृपणता, मायावादी, कर्मी और अन्याभिलाषीको प्रश्रय देना या उनके मनके अनुरूप बात कहनेको समझना चाहिये।" अर्थात् **शास्त्रोंकी निरपेक्ष**

सत्य कथाको गोपनकर मनोधर्मको प्रश्रय देकर जीवकी बुभुक्षुता या मुमुक्षुता रूपी अग्निमें ईन्धन देना ही जीवहिंसा है। कर्मी, ज्ञानी, योगी—ये सब अन्याभिलाषी, अशरणागत, आरोहवादी हैं। ये गुरुके रूपमें सजकर भीषण जीवहिंसा करते हैं। कर्मप्रयास, ज्ञानप्रयास और योगप्रयाससे जीवका आत्मधर्म विकसित होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। वे अवैष्णव हैं। वे अनेक स्थानोंपर भगवान् विष्णुको स्वीकार जो करते हैं, वह केवल सुविधा प्राप्त करनेके लिये है। जो विष्णुको तात्कालिक, सोपाधिक, विचार करते हैं, उनके द्वारा विष्णुको स्वीकार करनेको भी मूल्यहीन ही कहना होगा। पञ्चोपासनामें जो विष्णुकी उपासना देखी जाती है, उसमें कोई नित्यता नहीं है। वे विष्णुके साथ अपने नित्यसम्बन्धको नहीं समझते। नित्यविष्णुदासत्वके परिचयको स्वीकार नहीं करते। अतः उनकी वैष्णवता विद्ध—वैष्णवता है। सभी पञ्चोपासकगण निर्विशेष ब्रह्मवादी हैं। वे ब्रह्मकी सविशेषताको मायिक गुणोंके अधीन मानते हैं। अतः वे अपराधी हैं—**"प्राकृत करिया माने विष्णु—कलेवर। यमदण्ड नाहि आर इहार ऊपर॥"** (श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ७/११५) [अर्थात् मायावादिगण श्रीविष्णुकी अप्राकृत कलेवरको प्राकृत मानते हैं, अतएव यमदण्डके अतिरिक्त इन अपराधियोंको और कुछ नहीं मिलता।] उनका जो स्वरूपतः वैष्णव परिचय है, वह आच्छादित रहता है। इसीलिये उनका अमङ्गलसे बचनेका कोई उपाय नहीं है। फिर वे अन्य किसीका अमङ्गल किस प्रकार दूर कर सकते हैं? इसीलिये शास्त्रोंमें कहा गया है—

"अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण निरयं व्रजेत्।
पुनः विधिना सम्यग् प्रग्राह्येद् वैष्णवाद् गुरोः॥"

(श्रीहरिभक्तिविलास ४/१४४)

अतः भक्तिसे ही सब प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं, यह तो स्वयं भगवान्‌की ही Verdict है, इसमें कोई पक्षपातित्व नहीं है। ऐसी भगवद्भक्ति—प्रकाशक जो वैष्णवगुरु हैं, उनकी महिमा स्वयं विष्णुतुल्य है।

अवैष्णवके द्वारा प्रदत्त मन्त्रकी गतिका सार नरक ही है। इसीलिये पुनः वैष्णव—गुरुके निकट ही मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। और अवैष्णव गुरुकी क्या गति होती है?

"यो वक्ति न्यायरहितमन्यायेन शृणोति यः।
तावुभौ नरकं घोरं व्रजेतः कालमक्षयम्॥"

(श्रीहरिभक्तिविलास १/६२)

जो शास्त्रकी कथाओंकी मनगढ़न्त भावसे, अपनी सुविधाके अनुसार व्याख्या करते हैं, और जो उन कथाओंको सुनते हैं, वे दोनों ही अन्याय करनेके कारण अक्षयकाल तक नरकमें वास करते हैं।

वैष्णवगुरुकी महिमा विष्णुतुल्य

एकमात्र भगवद्भक्तिसे ही जीवके समस्त अमङ्गलोंका नाश होता है। भगवद्भक्तिसे ही कर्म, ज्ञान, योग सुसामञ्जस्य भावसे एकतात्पर्यपर होकर अवस्थान करते हैं, वहाँ उनमें परस्पर कोई द्वन्द, विवाद नहीं होता।

"यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत्।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि।
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा॥"

(श्रीमद्भा॰ ११/२०/३२)

कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, अष्टाङ्गयोगया अन्यान्य व्रतोंके द्वारा जो—जो प्राप्त होता है, वह सब मेरे भक्तगण अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं। अतः भक्तिसे ही सब प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं, यह तो स्वयं भगवान्‌की ही Verdict है, इसमें कोई पक्षपातित्व नहीं है। ऐसी भगवद्भक्ति—प्रकाशक जो वैष्णवगुरु हैं, उनकी महिमा स्वयं विष्णुतुल्य है।

"यस्य देवे परा भक्तियर्था देवे तथा गुरौ।
तस्येते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥"

(श्वेताश्वतर उपनिषद् ६/२३)

जिनकी भगवान्‌में जिस प्रकार पराभक्ति है, वैसी ही वैष्णव—गुरुके प्रति होती है, वे महात्मा, महाभागवत होते हैं।

शास्त्रोंके अर्थ ठीक–ठीक भावसे उनके निकट ही प्रकाशित होते हैं। विषय और आश्रयविग्रहके साथ परस्पर मधुर अङ्गाङ्गी सम्बन्ध है, इसे ही समझना होगा। इसीलिये **'मन्नाथः जगन्नाथो मद्गुरुः जगद्गुरुः'** यह बात कही गयी है।

कृष्णभजन और गरुसेवा

विषय और आश्रय तत्त्वके प्रति निष्ठा न रहनेपर सब गड़बड़ हो जायेगा। विषय–विग्रह–भगवान् सर्वेश्वरेश्वर हैं, आश्रयविग्रह–श्रीगुरुदेव हैं, जो कोई जीव नहीं हैं–वे सर्वदेवमय, ईश्वर हैं। यह विचार न रखनेपर गुरुदेवके प्रति मर्त्यबुद्धि होगी। तब महाविपद हो जायेगी। हमारा प्राकृतत्व कभी भी दूर नहीं होगा। इसीलिये कहा गया है–**'गुरुदेवात्मा'** (श्रीमद्भा० ११/२/३७)। जो गुरुदेवके प्रति देवता ज्ञान करते हैं एवं आत्मा अर्थात् प्रिय जानते हैं, वही गुरुदेवात्मा हैं। गुरुदेवात्मा न होनेपर **'विश्रम्भेन गुरोः सेवा'** नहीं होती। गुरुदेवात्मा न होनेपर कृष्ण भजन नहीं होता।

"ताते कृष्ण भजे करे गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे पाय श्रीकृष्णचरण॥"

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य २२/२५)

अर्थात् श्रीगुरु और श्रीकृष्णकी कृपासे भक्तिलताका बीज प्राप्त जीव गुरुकी सेवा और श्रीकृष्णका भजन करते–करते वह शीघ्र ही मायाके जालसे मुक्त होकर श्रीकृष्णके चरणोंकी सेवाको प्राप्त कर लेता है।

कृष्णभजन और गुरुसेवा–इनमें परस्पर ओतप्रोत सम्पर्क है।

हमारे ऊपर दया करनेके लिये दिव्यज्ञानप्रदाता श्रीगुरुका विभिन्न मूर्त्तियोंमें प्रकाश

शास्त्रोंमें विभिन्न प्रकारके गुरुओंके विषयमें वर्णन है–चैत्य गुरु, वर्त्मप्रदर्शक गुरु, श्रवणगुरु, भजनशिक्षा गुरु, मन्त्र–गुरु आदि। चैत्य–गुरु–यह भजनके अनुकूल विवेक प्रदाता गुरु हैं। जिनकी प्रीतिपूर्वक निष्कपट भजनकी चित्तवृत्ति है, चैत्य–गुरु उन्हें सठीक बुद्धियोग प्रदान करते हैं। **"ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।"** (श्रीगीता १०/१०) [अर्थात् उन निरन्तर भक्तिके परायण, प्रेमसहित मुझे भजनेवाले भक्तोंको मैं शुद्धज्ञान जनित वही विमल प्रेमयोग दान करता हूँ, जिसके द्वारा वे मेरे परम धामको प्राप्त होते हैं।] दूसरी ओर अन्याभिलाषी जीवके निकट वे मौन अवलम्बन करते हैं। मायाके द्वारा उन्हें कर्मचक्र, जन्म–मृत्युके चक्रमें भ्रमण कराते हैं।

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया॥"

(श्रीगीता १८/६१)

अर्थात् हे अर्जुन! सर्वान्तर्यामी परमात्मा सभी जीवोंके हृदयमें अवस्थान करते हैं और अपनी माया द्वारा यन्त्रारूढ़की भाँति जीवको संसार–चक्रमें भ्रमण कराते हैं।

जिस समय जीव द्वितीय अभिनिवेशका त्याग करनेके लिये प्रस्तुत होता है, उस समय चैत्य–गुरु अन्तर्यामीके रूपमें उसके चित्तमें कृष्णभक्तिके प्रति विवेक उदित कराते हैं और बाहरसे महान्तस्वरूपमें प्रकाशित होते हैं। तभी वर्त्मप्रदर्शक गुरु, श्रवणगुरु, दीक्षागुरु, भजनशिक्षागुरु आदिका क्रमानुसार प्रकाश होता रहता है। श्रील प्रभुपाद कहते हैं–"आश्रयजातीय गुरुवर्ग विभिन्न मूर्त्तियोंमें मेरे ऊपर दया करनेके लिये उपस्थित हैं। ये दिव्यज्ञानप्रदाता गुरुपादपद्मके ही प्रकाश–विशेष हैं।" वर्त्मप्रदर्शक गुरु, श्रवणगुरु अनेक समय एक ही व्यक्ति होते हैं। यदि शिक्षागुरुदेव हमें यह उपदेश प्रदान न करें कि–किस प्रकार गुरुपादपद्मका आश्रय करना होगा, किस प्रकार गुरुपादपद्मके साथ व्यवहार करना होगा, तब हमारा मङ्गल नहीं होगा। वे दीक्षागुरुकी मर्यादा, दीक्षागुरुकी पूजाकी शिक्षा प्रदान करते हैं। सम्बन्ध–ज्ञान प्रदाता दीक्षागुरुके निकट मन्त्र–अनुग्रह लाभ करना होगा। भजनशिक्षागुरु भजनप्रणालीकी शिक्षा दान करते हैं। दोनों एक ही व्यक्ति होते हैं, ये कभी भी पृथक् नहीं हो सकते। किन्तु सभी उन्हीं दिव्यज्ञानप्रदाता गुरुपादपद्मके ही प्रकाश हैं। इनमें किसी प्राकृत–विचारसे भेद–बुद्धि, असम–बुद्धि करनेपर

गुरुपादपद्मकी यह असमोर्द्ध गुरुनिष्ठा ही उनका मुख्य परिचय है। उनके अन्यान्य असंख्य गुण, वैशिष्टय, परिचय हैं, वह सब मुख्य परिचयके ही अधीन हैं।

महा–अनर्थ आकर उपस्थित हो जाता है। गुरुदेवके प्रति मर्त्यबुद्धि दूर न होनेपर विभिन्न प्रकारके भेदविचार आकर उत्पात आरम्भ करते हैं। इसलिए विशेष सतर्कताका अवलम्बन न करनेपर दुर्दशा दूर नहीं होती। इसीलिये कहा गया है–**"श्रीगुरु–चरण–पद्म, केवल भक्ति–सद्म, वन्दो मुञि सावधान मते।"** (प्रेमभक्तिचन्द्रिका) [अर्थात् श्रीगुरुदेवके चरणकमल ही भक्तिके एकमात्र आश्रय हैं। उनकी मैं अतिशय प्रेमपूर्वक वन्दना करता हूँ।]

गुरुपादपद्मके अतिमर्त्य चरित्रका स्मरण

इस एक विशेष दिनपर मैं अपने गुरुपादपद्मके अतिमर्त्य चरित्रका ही स्मरण कर रहा हूँ। उनका सर्वप्रधान वैशिष्ट्य था–उनकी असमोर्द्ध गुरुनिष्ठा। वे **'गुरुदेवात्मा'** विचारके ज्वलन्त दृष्टान्त थे। प्रतिक्षण उनकी गुरुसेवाके लिये इतनी उन्मुखता थी कि जिसकी एकमात्र सर्वोत्तम पातिव्रत्य धर्मके साथ ही तुलना की जा सकती है। अपने प्राण, देह सब–कुछ उन्होंने सम्पूर्णरूपसे प्रभुपादके चरणोंमें समर्पित किया था। श्रीरामानुजके शिष्य श्रीकुरेशने जिस प्रकार अपने प्राण–विनिमयसे श्रीगुरुसेवाका अति उज्ज्वल दृष्टान्त रखा था, उसी प्रकार अस्मदीय श्रीगुरुपादपद्म थे। उन्होंने अपने प्राणोंकी जलाञ्जलि देकर आसुर–वृत्तिके गर्वसे प्रभुपादका संरक्षण किया था। और प्रभुपादने भी इस प्रकारकी एक लीला प्रकाशितकर श्रीगुरुपादपद्मके हृदयकी अतुलनीय गुरुनिष्ठाको सर्वसमक्ष प्रकाशित कर दिया। महामहोपदेशक, महोपदेशक शिष्योंकी जो गुरुनिष्ठा इस निभृतमें निगूढ़ सेवनरत एक उपदेशक पण्डितकी गुरुनिष्ठाके सामने सूर्यके निकट खद्योतके समान थी, उसे ही प्रभुपादने प्रकाशितकर उनका गर्वप्रकाशको ध्वंस किया था। तत्त्व–सिद्धान्तके विचारमें भी उनकी इतनी गुरुनिष्ठा थी कि उससे सभी स्तम्भित हो जाते थे। किसी एक समय किसी तत्त्व–सिद्धान्तको लेकर प्रभुपादके विचारको अतिक्रम करनेकी चेष्टा होनेपर उन्होंने गर्जते हुए कहा था–"मैं पूर्व गोस्वामीगणको

नहीं पहचानता, नहीं जानता। मैं जगद्गुरु श्रील प्रभुपादकी विचारधाराको ही अभ्रान्त सत्य मानता हूँ। मैं प्रभुपादके आलोकमें ही पूर्व गोस्वामीगणको जानने, समझनेकी चेष्टा करूँगा। **'आचार्येर येई मत सेई मत सार, आर यत मत सब याउक छारखार॥'** [अर्थात् आचार्यकी जो मत है, वही सार है और अन्य सभी मत बाढ़में जाय।] यही मेरा विचार है।" तब सभीने विस्मयसे उनके इस विचारके समक्ष मस्तक नत किया था। इस घटनामें उनकी एक विशेष शिक्षा निहित है। 'गुरुनिष्ठा', 'गुरुभक्ति' की बात अनेकक्षेत्रोंमें अस्थानमें प्रयोग होती है। गुरुब्रुवके प्रति निष्ठासे अधःपतन अनिवार्य है। 'गुरु' माने ही वास्तववस्तु, कृष्णवस्तु है। विभिन्न अपसम्प्रदायोंमें जो सब तथाकथित गुरु हैं, वे कृष्णस्वरूप नहीं हैं। हमने पहले भी यह आलोचना की है। वहाँ जो निष्ठा, भक्ति होती है, वह जीवकी अविद्याके कारण ही होती है। अतः वह आदौ 'गुरुनिष्ठा', 'गुरुभक्ति' शब्दवाच्य नहीं है। यहाँ प्रभुपादके प्रति गुरुपादपद्मकी जो निष्ठा है, वह प्रभुपादके साथ उनके अन्तरङ्ग–सम्बन्धका परिचय है, वास्तववस्तुके साथ गाढ़ सम्बन्धका परिचय है। पूर्व–पूर्व गोस्वामीगणके विचारोंमें कोई भ्रान्ति नहीं है, यह गुरुपादपद्म विलक्षण रूपसे जानते थे। किन्तु इन सब विचारोंमें दुर्बुद्धिग्रस्त जीवोंकी अनेक स्थानोंपर भूल हो सकती है। किन्तु प्रभुपादके विचार–आदर्शका अवलम्बन करनेपर फिर विचारभ्रान्तिमें लिप्त रहनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

प्रभुपादके साथ सम्बन्धित किसी भी व्यक्तिके उपस्थित होनेपर, चाहे वह कोई मठवासी, त्यागी, गृहस्थ अथवा कोई साधारण व्यक्ति ही क्यों न हो, वे आनन्दसे गद्गद् हो जाते थे। उनकी आन्तरिकता अकपट भावसे प्रकाश पाती थी। **'गुरुसेवक हय मान्य आपनार।'** [अर्थात् श्रीगुरुका सेवक हमारे लिए सम्माननीय है।] प्रभुपादके साथ किसीका भी किसी प्रकारका सेवासम्बन्ध होनेपर, वे उसके प्रति अपनेको कृतज्ञ बोध करते थे, ऋणी बोध करते थे। उसी बोधसे वे उनको बहुत अर्थानुकुल्य प्रदान करते थे। कारण, प्रभुपाद एकमात्र उनके हृदयकी ही वस्तु थे, उनके साथमें सम्बन्धित व्यक्तिके साथ ही गुरुपादपद्मकी समस्त प्रीति थी। दूसरे स्थानपर प्रभुपादकी सेवाके छलसे जिन्होंने उनके प्रति विरोध आचरण किया था, उनके प्रति वे वज्रके समान कठोर थे। स्वाभाविक–सम्बन्धबोधसे ही यह सब आता है। श्रीगुरुदेव श्रीराधा–गोविन्दकी समस्त सेवाके Sole custodian—सर्वसंरक्षक थे। श्रीराधा–गोविन्दकी जो समस्त सेवा अनुष्ठित होती है, वह गुरुपादपद्मकी ही सेवा है। गुरुदेव कृष्णेन्द्रिय–तोषणके साथ स्वाभाविक रूपमें adjusted हैं। कृष्णके सुख–विधानसे ही गुरुदेवका आनन्दविधान होता है। उनके आनन्द लाभका अन्य कोई source नहीं है। इसीलिये श्रीकृष्णके सेवा–विधानसे गुरुदेवकी ही सेवा सम्पादित होती है। तभी सब गुरुदेवके ही सेवक हैं। उसी सेवासूत्रसे जो एकक्षणके लिये भी संयुक्त हुए, गुरुपादपद्म उनके प्रति अपनेको ऋणी बोध करते थे, कारण प्रभुपाद मानो एकमात्र उनके ही हृदयके धन थे।

गुरुपादपद्मकी यह असमोर्द्ध गुरुनिष्ठा ही उनका मुख्य परिचय है। उनके अन्यान्य असंख्य गुण, वैशिष्ट्य, परिचय हैं, वह सब मुख्य परिचयके ही अधीन हैं। समयके अभावमें उन सब अतिमर्त्य–वैशिष्ट्यकी आलोचना सम्भव नहीं हुई। **व्यासपूजा अर्थात्—गुरुचरणाश्रय, गुरुपादपद्ममें पाद्यापर्ण है।** अपनी क्षमताके अनुसार मैंने उसका ही सम्पादन करनेका प्रयास किया है। **श्रीगुरुपादपद्म अहैतुकी करुणावशतः मेरे प्रति प्रसन्न हों, उनसे यही निवेदन है।** आपलोग मुझे आशीर्वाद करें जिससे गुरुपादपद्म मेरे प्रति प्रसन्न रहें। अपनी शारीरिक अस्वस्थताके कारण मैं साक्षाद्भावसे आपके सम्मुख उनकी गुणावलीका कीर्त्तन नहीं कर पाया, इस कारण सभी मुझे क्षमा करें।

"वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥"

[श्रीगौड़ीय–पत्रिका (वर्ष–५४, संख्या–१–३) से अनुवादित]

सद्–गुरु कौन हो

ॐ विष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम
गोस्वामी महाराजजीकी अमृतमय वाणी

८ मार्च १९९८, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीप

अप्राकृत वस्तु प्राकृत इन्द्रियोंके गोचर नहीं

हम अपनी इन्द्रियोंके द्वारा वस्तुको ग्रहण करना चाहते हैं। किन्तु, हमारी वह प्रचेष्टा सर्वत्र सफल नहीं होती है। उसमें हम बहुत बार विफल–मनोरथ हुआ करते हैं, अकृत–कार्य हुआ करते हैं। विशेषतः जो वस्तु प्रकृतिसे अतीत है, उस वस्तुमें प्रवेश करनेके लिए हमारी इन्द्रियाँ सम्पूर्णरूपसे अक्षम हैं। इसीलिए शास्त्रमें कहा गया है–**"अप्राकृत वस्तु नहे प्राकृत–गोचर। वेद–पुराणेते एइ कहे निरन्तर॥"** (श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ९/१९४) अर्थात् अप्राकृत वस्तु प्राकृत इन्द्रियोंके गोचर नहीं हैं–यह बात वेद–पुराण आदिमें निरन्तर कहा गया है।

अधिकारी व्यक्ति तथा अनधिकारी व्यक्तिमें आकाश–पातालका भेद

अधिकारी–भेदके अनुरूप ही वस्तुका लघुत्व या गुरुत्व भी होता है अर्थात् उसके कारण एक ही वस्तुके गुरुत्वमें भी पार्थक्य हुआ करता है। गुरुदेवका महत्व मुझ जैसे बद्ध–जीवके द्वारा प्रकाशित होनेपर और एक वास्तविक तत्त्वज्ञ व्यक्तिके द्वारा प्रकाशित होनेपर उसमें आकाश और पातालका भेद हुआ करता है। वास्तविक शिष्यके लिए गुरुका महत्त्व एवं शिष्य–अभिमानी बद्धजीवके लिए गुरुका महत्त्व–प्रकाश एक ही प्रकारका या एक ही तात्पर्यपरक नहीं हुआ करता है। हमारा हरिनाम और यथार्थ अधिकारी व्यक्तिका हरिनाम एक नहीं है। हमारी या हमारे जैसे अनधिकारी व्यक्तिकी हरिकथा और यथार्थ अधिकारी व्यक्ति अर्थात् योग्य व्यक्तिके मुखसे जो हरिकथा निकलती है, दोनोंमें आकाश–पातालका भेद है। गुरुदेव अपने शिष्योंको हरिनाम देते हैं, किन्तु गुरुदेवके द्वारा उच्चारित वह हरिनाम और गुरुदेवसे प्राप्तकर बद्ध–अवस्थामें शिष्यके मुखसे उच्चारित वही हरिनाम–ये दोनों एक नहीं हो सकते हैं।

अर्थात् *"***हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥***"* गुरुदेव शिष्यके कानमें इस महामन्त्रको प्रदान करते हैं। शिष्य उनके मुखसे इस महामन्त्रका श्रवणकर पीछे इसका उच्चारण करता है। किन्तु, जिस प्रकार गुरुदेव उस मंत्रको उच्चारण करते है, शिष्यमें वैसी योग्यता नहीं है कि वह भी उसी प्रकार उस मन्त्रको उच्चारण कर सके।

"वास्तविकरूपसे श्रीगुरुके गुणोंका अधिकारी कौन है?"

हम सब गुरु–ग्रहण करते तो हैं, क्या गुरु–ग्रहण करनेसे ही वास्तविकरूपसे गुरुके गुणोंका अधिकारी सभी हो जायेंगे? कोटि–कोटि शिष्योंमें–से क्या सभी गुरुके यथार्थ–महत्त्वके अधिकारी हो जायेंगे? यह विचार करनेका विषय है। क्यों नहीं होते हैं? यहाँ तो सबके गुरु एक ही हैं। एक ही गुरुके शिष्य होकर भी सबमें भेद क्यों

सकते हैं?

होता है? गुरु तो एक ही है, फिर ऐसा अधिकार–भेद क्यों हो रहा है? इसलिए गुरुसे मन्त्र–ग्रहण करनेका अभिनय और वास्तविकरूपसे मन्त्र–ग्रहण—ये दोनों एक नहीं है।

गुरुसे मन्त्र–ग्रहण करनेके बाद अधिकार प्राप्तकर वह शिष्य भी गुरु हो सकता है, उसमें कोई दोष नहीं। किन्तु, वैसा अधिकार जबतक प्राप्त नहीं होता, तबतक "मैं भी गुरु क्यों नहीं हो सकता?"—ऐसा मानकर शिष्य बनाने अगर जाते हैं, तो वह अनधिकारका विषय हो जाता है—ये सब शास्त्रोंका विचार है। इसलिए सर्वत्र ही अधिकारका विचार ग्रहण किया जायेगा। शब्द–सामान्य और शब्द–ब्रह्म—इन दोनोंको शास्त्र एक नहीं कहते हैं। गुरुदेवने जो मन्त्र दिया है, मैंने भी वही मन्त्र दिया है, अतएव उस मन्त्रका फल भी एक ही होगा, किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता। अधिकार किस प्रकारसे प्राप्त किया जा सकता है? यह विचारणीय है, क्योंकि केवल मन्त्र–ग्रहण करनेका अभिनय करना ही शिष्य बनना नहीं है।

आचरणशील व्यक्ति ही गुरु

गुरु कौन होगा? **शास्त्रमें गुरुके सम्बन्धमें जो समस्त गुणसमूह कहे गये हैं, शिष्यमें भी वैसे गुण होनेकी आवश्यकता है, तभी वह गुरु हो सकता है।**

"वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
जिह्वावेगं उदरोऽपस्थ वेगम्।

आचरणशील व्यक्तिको ही गुरु कहा गया है, आचरण–रहित होकर मात्र बाहरी अनुष्ठान करनेवाला गुरु है—ऐसा शास्त्रमें कभी नहीं कहा गया है। इसलिए बाहरीरूपसे केवल महामन्त्रका उच्चारण करना ही वास्तविक गुरुत्वका लक्षण नहीं है।

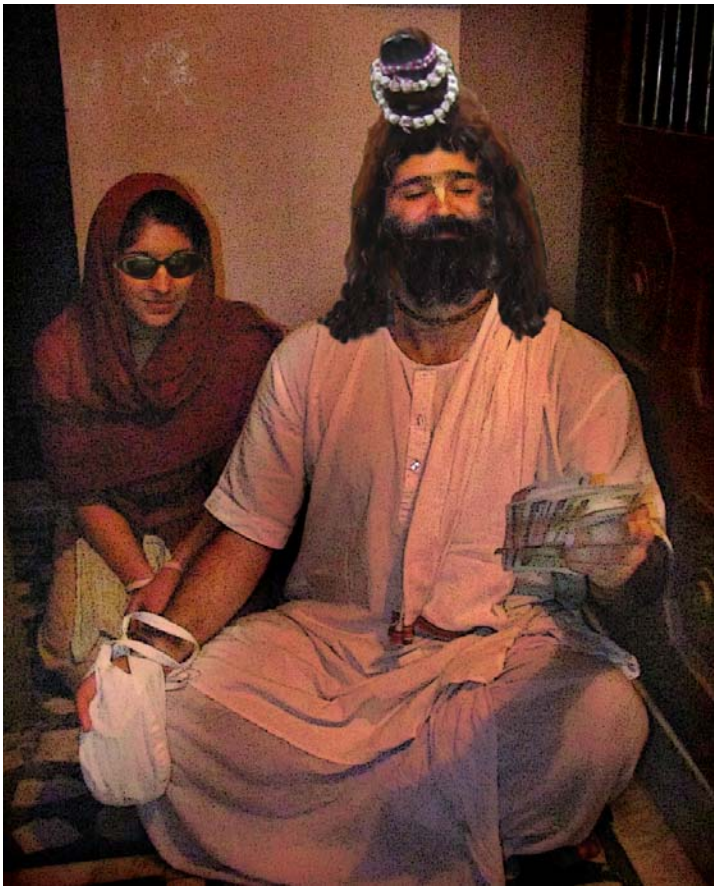

एतान्वेगान्यो विषहेत धीरः
सर्वामपि मां पृथिवीं स शिष्यात्॥"

(उपदेशामृत १)

अर्थात् जो धीर पुरुष अपनी वाणीके वेगको, मनके वेगको, क्रोधके वेगको, जिह्वाके वेगको, उदरके वेगको एवं जननेन्द्रियके वेगको सहन करनेमें समर्थ हो जाता है, वह समस्त पृथ्वीका शासन कर सकता है अर्थात् ऐसे जितेन्द्रिय व्यक्तिके सभी जन शिष्य हो जाते हैं।

जो समस्त पृथ्वीको अपना शिष्य बना सकते हैं, वे ही वास्तविक–गुरु हैं। वाणी, मन, क्रोध, जिह्वा, उदर और उपस्थके वेगोंको जो सहन कर सकते हैं, वही गोस्वामी हैं अर्थात् समस्त इन्द्रियाँ उनके अधीनमें चलती हैं। किन्तु, गोदास इन्द्रियोंके अधीनमें चलता है। गोदास और गोस्वामी एक नहीं हैं। **यदि हम भलीभाँति गुरु बननेकी पूर्वोक्त योग्यतापर विचार करके देखते हैं, तो हमारा गुरु बननेका साहस नष्ट हो जाता है।** गुरु होनेपर अत्यधिक लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा हमारे पास आ जायेगी—ऐसे लोभसे यदि गुरुका कार्य करने जायेंगे, तो वह यथार्थ गुरुका कार्य नहीं होगा।

वैष्णव कौन हैं?

"कनक कामिनी प्रतिष्ठा बाघिनी,
छाड़ियाछे यारे सेइ त' वैष्णव।"

(श्रीलप्रभुपाद 'वैष्णव के')

अर्थात् जिन्हें कनक–कामिनी और प्रतिष्ठा रूपी बाघिनने छोड दिया है, वे ही वैष्णव हैं।

श्रीगुरुदेव इन समस्त अधिकारोंसे युक्त होकर इस जगत्में शिष्योंको ग्रहण करते हैं। **इसलिए बाहरीरूपसे केवल महामन्त्रका उच्चारण करना ही वास्तविक गुरुत्वका लक्षण नहीं है।**

"आपनि आचरि भक्ति शिखामु सबारे।
आपनि ना कैले धर्म सिखानो ना जाय॥"

(श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ३/२०–२१)

अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं कहते हैं—मैं स्वयं कृष्णभक्तिका आचरणकर सबको भक्तिका आचरण

करनेकी शिक्षा दूँगा, क्योंकि स्वयं आचरण किये बिना दूसरोंको धर्मकी शिक्षा नहीं दी जा सकती। आचरण बिना दूसरोंको धर्मकी शिक्षा देनेसे या प्रचार करनेसे वह उपदेश या प्रचार व्यर्थ होता है।

"आचिनोति यः शास्त्रार्थमाचारे स्थापयित्यपि।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन कीर्त्तितः॥"

(वायुपुराण)

अर्थात् गूढ़ सिद्धान्तोंको उपयुक्त रूपमें संग्रह कर स्वयं उसका आचरण करते हैं एवं दूसरोंको भी उसमें प्रतिष्ठित कराते हैं—ऐसे आचारवान् और तत्त्वविद् पुरुष 'आचार्य' कहलाते हैं।

आचरणशील व्यक्तिको ही गुरु कहा गया है, आचरण–रहित होकर मात्र बाहरी अनुष्ठान करनेवाला गुरु है—ऐसा शास्त्रमें कभी नहीं कहा गया है।

और भी अनेक बातें गुरुके सम्बन्धमें कही गयी हैं। शब्द–ब्रह्म और परब्रह्ममें जो निष्णात हैं, अप्राकृत अनुभूति–विशिष्ट हैं, परतत्त्व या इष्टवस्तु या भगवत्तत्त्वमें जिसका अनुभव है अर्थात् जिन्हें हरिका अनुभव होगा, कृष्णका अनुभव होगा, वे ही यथार्थ गुरु हैं। किन्तु अनुभव नहीं होनेतक, वैसे शब्द–सामान्यके द्वारा शिष्यको यथार्थमें दिव्य–ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती है।

'दीक्षा' का अर्थ

'दीक्षा' शब्दमें दिव्य–ज्ञानका उल्लेख किया गया है—

"दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात्कुर्यात्पापस्य संक्षयम्।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्त्व कोविदैः॥"

(श्रीहरिभक्तिविलास २/३–४)

अर्थात् जिस प्रक्रियासे दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति और समस्त पापोंका नाश हो जाता है, उसे ही 'दीक्षा' कहा जाता है।

तत्त्वज्ञगणने किसे दीक्षा कहा है? जिस प्रक्रियाके द्वारा दिव्य–ज्ञान प्राप्त हुआ करता है, दिव्य–ज्ञान प्रदान किया जाता उसे 'दीक्षा' कहते हैं। दिव्य–ज्ञान किसे कहते हैं? ज्ञानको हम अपनी चेष्टासे संग्रह कर सकते हैं। किन्तु, दिव्य–ज्ञानको कैसे प्राप्त करेंगे? वह तो हमारे पास नहीं है, क्योंकि बद्ध–अवस्थामें दिव्य–ज्ञान नहीं रहता है। वह दिव्य–ज्ञान क्या है? अति–संक्षेपमें श्रीमन्महाप्रभुने श्रीलसनातन गोस्वामीको उस दिव्यज्ञानके सम्बन्धमें बतलाया है। दिव्य–ज्ञान से क्या समझा जाता है? क्या अनुभव हुआ करता है?

"मैं कौन हूँ?"

श्रील सनातन गोस्वामीपादने श्रीमन्महाप्रभुसे प्रश्न किया था—

"के आमि केने आमाय जारे ताप–त्रय।
इहा नाहि जानि केमने हित हय॥"

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य २०/१०२)

अर्थात् मैं कौन हूँ और मुझे क्यों ये त्रिताप क्लेश दे रहे हैं। मुझे यह पता नहीं है कि मेरा हित कैसे होगा?

उन्होंने पूछा था—मैं कौन हूँ? गुरुके समीप जाकर स्वयं इसको जानना होगा। मैं क्या वस्तु हूँ? श्रीगुरुदेव हमें समझा देंगे कि मैं क्या तत्त्व हूँ। बद्ध–अवस्थामें यदि कोई मुझसे मेरा परिचय पूछे, तो मैं जो परिचय दूँगा, वह परिचय मिथ्या ही होगा, वह वास्तव परिचय नहीं होगा।

गौढ़–देशके बादशाह हुसैन शाहके प्रधानमन्त्री तथा बुद्धिमान श्रीलसनातन गोस्वामिपादने श्रीमन्महाप्रभुसे क्या एक मूर्ख व्यक्तिकी भाँति प्रश्न किया था? यह कैसा मूर्खकी भाँति प्रश्न है, क्या कभी कोई यह पूछेगा कि 'महोदय जरा बताइये कि मैं कौन हूँ?' क्या हम कभी किसीसे "मैं कौन हूँ" ऐसा प्रश्न किया करेंगे?

मुझे एक हास्य घटना स्मरण आ रही है। हमारे काका–गुरु श्रीपाद भक्तिकुशल नारसिंह महाराज और मैं आसाम प्रदेशमें पहाड़के ऊपर स्थित एक स्थान पर पैदल चल रहे थे जहाँ मेरे गुरु महाराजकी वक्तृताके लिए पहलेसे ही व्यवस्था हो रखी थी। गुरु महाराज उस स्थानके लिए पहले ही पालकीमें बैठकर आगे जा चुके थे और हम पीछे–पीछे चलते हुए जा रहे थे। तब किसी एक निकटवर्ती स्थानमें पहुँचकर श्रील नारसिंह महाराजने वहाँके एक सज्जनसे पूछा—'महोदय, हम कहाँ जायँ?' तो

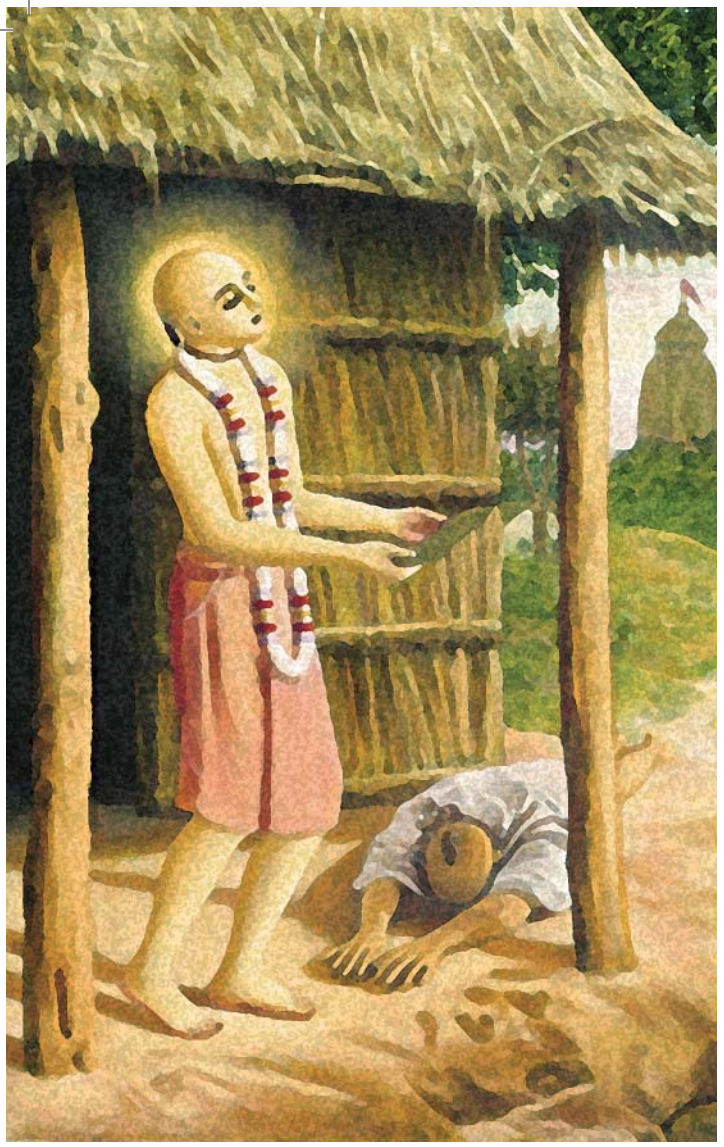

गौड़–देशके बादशाह हुसैन शाहके प्रधानमन्त्री तथा बुद्धिमान श्रीलसनातन गोस्वामिपादने श्रीमन्महाप्रभुसे क्या एक मूर्ख व्यक्तिकी भाँति प्रश्न किया था? ....क्या कभी कोई यह पूछेगा कि 'महोदय जरा बताइये कि मैं कौन हूँ?'

उन्होंने क्रोधित होकर उत्तर दिया—'आप किधर जायेंगे, इसे मैं कैसे जानूँ?'

हमारा भी "मैं कौन हूँ" प्रश्नसे ऐसी ही अवस्था हो गयी है। क्या हम नहीं जानते कि "मैं कौन हूँ"? किन्तु श्रील सनातन गोसवामीने क्यों यह प्रश्न किया? क्योंकि उन्होंने समझ लिया था कि "मैं कौन हूँ" के सम्बन्धमें हमारा जो ज्ञान है, वह मिथ्या है। मेरा वास्तव परिचय मुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। हम जो अभिमान करते हैं और जिस वस्तुको हम "अपना" कहते हैं, वह सब मिथ्या है। इसीलिए सत्यके द्रष्टा अर्थात् सत्यके सम्बन्धमें यथार्थ ज्ञानवान जो हैं, उनसे इसके सम्बन्धमें सुन लेना चाहिए कि वास्तवमें "मैं कौन हूँ?"। "मैं कौन हूँ"—इसे जानना ही दार्शनिक पण्डितोंके वितर्कका विषय है। समस्त शास्त्रोंने यही विचार हमारे समक्ष प्रकट किया है।

इसके उत्तरमें जो समस्त बातें कही गयी हैं, हम उन सबको समझ नहीं पाते। "मैं कौन हूँ?" उसके उत्तरमें श्रीगुरुदेव कहते हैं—**"तत्त्वमसि"** अर्थात् तुम वही तत्त्व हो। **"अहं ब्रह्मास्मि"** अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ। **"सोऽहम्"** अर्थात् मैं वही हूँ—हमारे परिचयके सम्बन्धमें ऐसे वचन वेद–शास्त्रोंमें कहे गये हैं। हम इन उक्तियोंके यथार्थ–तात्पर्यको नहीं समझकर विपरीत अर्थ और अनर्थ सृष्टि कर डालते हैं। इन शब्द–ब्रह्मोंके यथार्थ–तात्पर्यको समझनेमें अक्षम होनेके कारण ही—"मैं स्वयं भगवान् हूँ"—आदि गलत विचारोंकी सृष्टि हुई है।

शास्त्र कहता है—**"तत्त्वमसि"** अर्थात् तुम वही हो। यदि कहें कि 'वही' कहनेसे—"तुम भगवान् हो या तुम ब्रह्म हो"—ऐसी धारणा ही उदय हो रही है। तो ये सब वेदमें कही गयी बातें क्या मिथ्या है, जिन्हें मानना नहीं पड़ेगा? बल्कि वेदमें कथित होनेके कारण इन्हें अवश्य मानना ही पड़ेगा। दूसरी–ओर ऐसा अर्थ अगर मिथ्या है, तो क्या वेदमें मिथ्या बात कही गयी है? इसका उत्तर यही है कि वेद इन वचनोंको किस उद्देश्यसे कह रहा है—उसे पकड़ना होगा। तब हम इसका यथार्थ तात्पर्य समझ पायेंगे। इसलिए इन समस्त वचनोंकी व्याख्याका प्रयोजन हो रहा है। इनका

वास्तविक अर्थ क्या है—हमारे इसे न समझ सकनेके कारण ही इसका वर्णन हमारे निकट किया गया है।

यदि हम वितर्क करें कि यदि मैं ब्रह्म नहीं हूँ, तो मैं कौन हूँ? वेदमें कहा गया है—**"एकमेवाद्वितीयम्"** अर्थात् ब्रह्म छोड़कर और कुछ नहीं है। यदि मैं ब्रह्म नहीं हूँ, तो क्या कोई दूसरी वस्तु हूँ? यदि मैं ब्रह्म नहीं हूँ, तो क्या ब्रह्मसे भिन्न दूसरी वस्तुके रूपमें जाना जाऊँगा?—ऐसा अर्थ उपस्थित होता है। यदि द्वितीय –वस्तुको स्वीकार करेंगे, तो **"एकमेवाद्वितीयम्"** इस शास्त्र–वाणीकी सार्थकता कहाँ रही?

यदि तत्त्वके अनुसार एक ही बह्म वर्त्तमान है, तो मैं ब्रह्मके अतिरिक्त और क्या हो सकता हूँ? **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"**—अपनी बात तो दूर रहे, यह समस्त कुछ भी ब्रह्म ही है—ऐसा स्पष्ट रूपसे बतलाया गया है। "हम जो कुछ देख रहे हैं, हमें जो कुछ भी अनुभव हो रहा है, वह सब कुछ ब्रह्म है।"—ऐसा वेदकी उक्ति है। इसलिए इन विचार–समूह, वेद–वचनोंको हम किस रीतिसे ग्रहण करें?

इसीलिए "मैं कौन हूँ"—इस साधारण प्रश्नमें इतनी जटिलता है। श्रील सनातन गोस्वामीने ऐसी जटिलताको हमारे लिए सरल करानेके लिए ही श्रीमन्महाप्रभुके निकट यह प्रश्न पूछा था। श्रील सनातन गोस्वामीने कहा कि सरलभावसे समझाकर इस जटिलताको दूर करनेका सामर्थ्य आपको छोड़कर अन्य किसीमें नहीं है, क्योंकि आप साक्षात् शास्त्र–स्वरूप हैं। इसलिए आप ही उत्तर प्रदान कीजिए। क्योंकि, आपके श्रीमुखसे यह कथा प्रकाशित होनेपर जगतका सबसे अधिक कल्याण होगा।

हमें जैसा–जैसा जन्म प्राप्त होता है, हम उसीके अनुरूप पुरुष, स्त्री, गाय, गधा आदि अभिमानसे युक्त होकर वैसा–वैसा परिचय देते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने इसके उत्तरमें कहा है—

"नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो,
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्न वानस्थो यतिर्वा।"

(श्रीचैतन्य–चरितामृत मध्य १३/८०)

अर्थात् मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं हूँ। न हि मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी या संन्यासी हूँ।

समस्त प्रश्नोंके मीमांसक—तत्त्वज्ञ श्रीगुरु

अगर मैं यह सब नहीं हूँ, तो मैं कौन हूँ? किन्तु हम तो ये सब होनेका अभिमान किया करते हैं। साधारणतः हम जो इन चार वर्णोंके अधीन होने तथा ब्रह्मचारी, ग्रहस्थी, वानप्रस्थी, संन्यासी—इन चार आश्रमोंके अन्तर्गत होनेका परिचय देते हैं, क्या वह मिथ्या परिचय है? क्या यह हमारा उचित परिचय नहीं है? क्या हमें इन चारों वर्णों और आश्रमोंके अन्तर्गत होनेकी बात नहीं बतलानी चाहिए। महाप्रभुने क्यों कहा कि मैं ये सब नहीं हूँ? महाप्रभुने मिथ्या कहा या सत्य? वेद आदि शास्त्रोंमें ऐसा परिचय जो दिया गया है, क्या वह मिथ्या है या सत्य? कौन इसकी मीमांसा करेगा? श्रीगुरुदेव। जिनके पास इन समस्त प्रश्नोंके उत्तर प्रस्फुटित रूपमें विराजमान हैं, ऐसे तत्त्वज्ञ व्यक्ति ही श्रीगुरुदेव हैं।

"तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासु श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातम् ब्रह्मण्युपसमाश्रयम्॥"

(श्रीमद्भा॰ ११/३/२१)

अर्थात् अतएव जो परम श्रेय प्राप्त करनेके लिए उत्कण्ठित हैं, उन्हें शब्द–ब्रह्म और परब्रह्ममें निष्णात् और समस्त विषयासक्तिसे रहित होकर परब्रह्ममें आसक्तयुक्त गुरुदेवका आश्रय अवश्य ग्रहण करना चाहिए।

आचरण रहित प्रचार कार्यकारी नहीं होता

केवल शब्द–ब्रह्ममें पारङ्गत होनेसे ही नहीं होगा। वेदादि शास्त्रमें कथित श्लोकोंको कण्ठस्थकर अनर्गल बोलते जाने मात्रसे ही गुरु हो जायेगा, ऐसा नहीं है।

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥"

(कठोपनिषद् १/२/२३)

अर्थात् यह आत्मा प्रवचन–द्वारा, बुद्धि–द्वारा या अत्यधिक जान–लेनेसे ही प्राप्त नहीं किया जा सकता है। भगवान्ने जिनको अपनाया है, उन्हींके निकट वे अपना स्वरूप प्रकाश करते हैं। अन्य किसीके निकट नहीं।

केवल वाक्–पटुताके द्वारा गुरुरूपमें प्रतिष्ठित नहीं हुआ जा सकता। अधिक बुद्धि है, किन्तु उसके द्वारा भी नहीं होगा। शास्त्रके श्लोकोंका ज्ञान भी है और वे मुखस्थ भी हैं, किन्तु इसके द्वारा भी नहीं होगा। इसलिए श्रीचैतन्य–चरितामृत (आदि ३/२०–२१) में कहा गया है–

"आपनि आचरि भक्ति शिखामु सबारे।
आपनि ना कैले धर्म सिखानो ना जाय॥"

(श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ३/२०–२१)

अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं कहते हैं–मैं स्वयं कृष्णभक्तिका आचरणकर सबको भक्तिका आचरण करनेकी शिक्षा दूँगा, क्योंकि स्वयं आचरण किये बिना दूसरोंको धर्मकी शिक्षा नहीं दी जा सकती।

आचरण बिना दूसरोंको धर्मकी शिक्षा देनेसे या प्रचार करनेसे वह उपदेश या प्रचार व्यर्थ होता है। जीवोंको सिखानेके लिए, गुरुका कार्य करनेके लिए पहले अपने आचरणकी आवश्यकता है। आचार–विहीन लोगोंकी उक्ति कार्यकारी नहीं हुआ करती। **जो स्वयं नशावान् होकर दूसरोंको अगर उपदेश देता है कि तुम नशावान् मत होओ, तो उसकी बातका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।**

शिष्योंके अधिकार, योग्यता और चेष्टाके अनुसार ही फलका पार्थक्य

इसलिए इन समस्त विचारोंमें हमें कितना दिव्य–ज्ञान लाभ हुआ है, यह विचारणीय विषय है। एक ही गुरुका चरणाश्रय कर कोई दिव्य–ज्ञानसे उद्भासित होता है, तो और कोई अन्धकारसे आच्छन्न है। यहाँ गुरु–तत्त्वपर दोषारोप लगानेसे नहीं चलेगा। शिष्योंका अधिकार, योग्यता और चेष्टाके अनुसार ही ऐसे फलका पार्थक्य हुआ करता है।

अध्यापक महोदय कक्षमें सभी छात्रोंको एक ही शिक्षा देते हैं, किन्तु कोई एक छात्र सबसे अधिक नम्बर प्राप्त करता है, तो दूसरा फेल होता है, तो और कोई छात्र किसी प्रकारसे पास करता है। अध्यापकने तो सभीको समभावसे शिक्षा दी थी, किन्तु फलमें ऐसा पार्थक्य किसलिए? शिष्योंकी दुर्बलता, योग्यता, अयोग्यताके ऊपर फल–प्राप्ति निर्भर करता है। इसलिए गुरुका शिष्य हो जानेसे ही गुरु हुआ जा सकता है, ऐसा नहीं है। **सभी गुरु नहीं हुआ करते। जिनमें होनेकी योग्यता है, वे ही गुरु होंगे।**

"स्वरूपतः जीव श्रीकृष्णका नित्यदास है"

जो भी हो, श्रील सनातन गोस्वामीके प्रश्नके उत्तरमें श्रीमन्महाप्रभुने क्या कहा? "मैं कौन हूँ" इस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने क्या कहा? महाप्रभुने श्रीलसनातन गोस्वामीको मूर्ख कहकर उनका तिरस्कार नहीं किया। उन्होंने यह नहीं कहा कि तुम एक मुर्खकी तरह क्यों प्रश्न कर हो? और यह भी नहीं कहा कि तुम इतने बड़े मन्त्री होकर भी यह पूछ रहे हो कि मैं कौन हूँ? बल्कि उन्होंने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि तुमने योग्य प्रश्न ही पूछा है। यह प्रश्न सभीका मङ्गल करनेवाला है। उत्तरमें वे क्या बोले?

"जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास।
कृष्णेर तटस्था शक्ति भेदाभेद प्रकाश।"

(श्रीचैतन्य–चरितामृत मध्य २०/१०८)

अर्थात् स्वरूपतः जीव श्रीकृष्णका नित्यदास है। वह श्रीकृष्णकी तटस्था शक्तिसे प्रकाशित और उनका भेदाभेद प्रकाश है।

उन्होंने तत्त्व–विचारके अनुसार यह परिचय दिया है। वेद, वेदान्त, उपनिषद् आदि समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य इस पयारके भीतरमें ही वर्णित हुआ है। यही दर्शानिक जगत्का अन्तिम–ज्ञान है। "तत्त्वमसि" आदि वाक्योंका विचार इस श्लोकमें कहा गया है। उनका पूर्ण तात्पर्य इसी पयार द्वारा होगा। "जीवेर स्वरूप होय कृष्णेर नित्यदास"–यहाँ माप–मापकर बात कही गयी है।

"मैं और मेरा" शब्दका वास्तविक तात्पर्य

"मैं कृष्णदास हूँ" यहाँ 'मैं' किसको कहता हूँ? हम सब तो "मैं–मैं" कहते हैं, किन्तु 'मैं' किस वस्तुको लक्ष्यकर कहते हैं? वास्तविक रूपमें मैं जो वस्तु हूँ क्या उसीको 'मैं' कहता हूँ? उस अभिमानसे क्या मेरा सम्पूर्ण कार्य हो रहा है। यहाँ 'मैं' किसको लक्ष्यकर कह रहा हूँ?

मैं अपने परिचयको उलटा–पुलटा बोलता रहता हूँ। जब मैं कहता हूँ कि "किसीने मुझे मारा है या उन लोगोंने मुझे मारा है"—यहाँ किसको लक्ष्यकर कह रहा हूँ—'मैं'? "मुझे मारा है"—ऐसा कहकर मैंने क्या समझा? मैंने किसको 'मैं' कहा? यहाँ मैंने 'मैं' इस देहको लक्ष्यकर कहा है। यह रक्त, मांस, चमड़ेसे ढका हुआ जो देह है, उसको। इस शरीरको 'मैं' होनेका जो अभिमान करता है, ये उसके द्वारा बताये गये वाक्य हैं।

जिस प्रकार "मेरा शरीर खराब हुआ है"—यहाँ मैंने किसको लक्ष्यकर 'मेरा' कहा है। मैंने इस शरीरको या इस शरीरसे भिन्न एक अलग वस्तुको लक्ष्यकर 'मेरा' कहा है? यहाँ 'मेरा' कहनेसे मुझसे सम्बन्धित वस्तुके बारेमें कहा गया है अर्थात् मेरे अधीनमें रहनेवाली वस्तुके सम्बन्धमें कहा गया है, किन्तु स्वयं कर्त्ताको नहीं। 'मैं यह शरीर हूँ'—ऐसा नहीं कहा गया है। 'यह मेरा ग्रन्थ है'—यहाँ 'मेरा' कहनेसे ग्रन्थसे मैं एक भिन्न पदार्थ हूँ। वह ग्रन्थ मुझसे भिन्न एक वस्तु है। यहाँ यही बताया जा रहा है। उसी प्रकार 'मैं' इस शरीरसे भिन्न हूँ।

शिष्योंकी दुर्बलता, योग्यता, अयोग्यताके ऊपर फल–प्राप्ति निर्भर करता है। इसलिए गुरुका शिष्य हो जानेसे ही गुरु हुआ जा सकता है, ऐसा नहीं है। सभी गुरु नहीं हुआ करते। जिनमें होनेकी योग्यता है, वे ही गुरु होंगे।

शरीरसे भिन्न वह 'मैं' कौन हूँ?

किन्तु, पहले जब मैंने कहा कि 'मुझे मारा है'—तब शरीरको ही 'मैं' होनेका अभिमान कर 'मुझे' कहा। शरीरसे भिन्न वह 'मैं' कौन हूँ? क्या उसके सम्बन्धमें मेरी कुछ धारणा है? हममें उसकी धारणा नहीं है। उस सत्यवस्तुकी धारणा नहीं है, इसीलिए हम सभी भोलेनाथ होकर बैठे हैं। बड़े–बड़े शिक्षित व्यक्ति एम.ए. पास या यूनिवार्सिटीसे डिग्री पास करनेपर भी अगर उनसे यह पूछा जाय कि वह सत्यतत्त्व क्या है? उसका क्या रूप है? वह किस प्रकार दिखता है? उसके कितने हाथ, कितने पैर, कितने नाक, कितनी आँख आदि हैं? उसका कार्य, प्रेम, गुण क्या हैं? तो वे उत्तर नहीं दे सकते हैं। वर्तमान समयकी यह अवस्था है। सभी मूर्ख बनकर बैठे हैं, 'हम स्वयं कौन हैं'—यह भी नहीं जानते हैं। किन्तु उनसे अगर पूछा जाय कि 'क्या कर रहे हो?' तो उत्तर मिलेगा कि 'मैं अपना धर्म कर रहा हूँ, अपना कर्तव्य कर रहा हूँ।' जब हम स्वयं अपनेको नहीं जानते हैं तो अपना धर्म या अपना कर्तव्य क्या है? गृहस्थी कहता है—"हम गृहस्थ हैं, हमारा कर्तव्य है—अपने स्त्री, पुत्र आदिका पालन करना और हम यही कर रहे हैं।" अपना कर्तव्य जो 'तुम' कर रहे हो, इसमें यह 'तुम' कौन हो? उत्तर क्या मिलेगा—"हम गृहस्थ हैं"। जिसको मैंने देखा ही नहीं, उसके विषयमें बोल कैसे सकता हूँ? यह कैसे आ र्यकी बात है—मैं स्वयं अपनेको नहीं जानता हूँ, फिर भी मैं अपने कर्तव्यके सम्बन्धमें बतला रहा हूँ। मैं अपनेको नहीं पहचानता, अपनेको नहीं समझता और कह रहा हूँ कि मैं कर्तव्य कर रहा हूँ। मैं अपनेको पहचान नहीं सकता, यही मेरी दुर्दशा है।

मायाग्रस्त जीवकी स्थिति

इन समस्त प्रश्नोंका कितने सुन्दररूपसे प्रेम–विवर्तमें मीमांसा हुआ है—

"पिशाची पाइले येन मतिच्छन्न हय।
मायाग्रस्त जीवे हय से भाव उदय॥"

अर्थात् भूतग्रस्त जीवका जैसा भाव उदय होता है, उसी प्रकार मायाग्रत जीवका भी भाव उदय होता है।

जैसे—एक बालक है। उसको भूतने पकड़ लिया। किसीने आकर उससे पूछा, "अरे तु कौन है?" तो वह लड़का उत्तर देता है—"मैं रजनी बाबुकी बेटी हूँ।" "तुम कहाँ रहते हो?" उत्तर—"मैं एक वृक्षके निकट रहता हूँ। वहाँ इसने मल त्यागा था, इसीलिए मैंने उसको पकड़

लिया।" यह आश्चर्यकी बात है! वह यह नहीं कह रहा है कि मैं अमुक बालक हूँ। हमारी स्थित भी ऐसी ही है। हमने अपने वास्तविक परिचयको भूलकर इस देहके परिचयको अपने परिचयके रूपमें ग्रहण किया है, जिसमें हम आविष्ट हो गये हैं। मायाने हमारा ऐसा बुद्धि–भ्रम किया है।

आचार्योंका कार्य– वास्तविक सत्त्यको प्रकाश करना

यह भगवान्‌की माया कहासे आयी है? अगर सब माया है, तो फिर मायाने किसको पकडा? एक पक्षके लोग कहते हैं कि सबकुछ मिथ्या है अर्थात् जगत् नामक कुछ भी नहीं है या जगत्‌में स्थित सब वस्तुएँ मिथ्या हैं। किन्तु मैं तो जगत्‌को देख रहा हूँ तथा जगत्‌में स्थित वस्तु समूह—वृक्ष, फल, मिट्टी, जल, घर, रास्ता, घाट, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग जो कुछ भी है, उसे देख रहा हूँ। इसका उत्तर यह देते हैं कि यह सब स्वप्नमें देखे जानेवाली वस्तुओंके समान है। जैसे कोई सोया हुआ व्यक्ति "मुझे बाघ खा रहा है"—चिल्लाते हुए दौड़ता है। तब आस–पासवाले लोग पूछते हैं कि क्या हुआ? वह उत्तर देता है कि बाघ खानेके लिए आ रहा है। स्वप्नमें बाघ देखकर उसकी जो अवस्था हुई, वह मिथ्या नहीं है। तो ऐसी अवस्था हुई क्यों? अगर बाघ नामक वस्तु नहीं होती, तो क्या ऐसा डर होता? इस प्रकार निर्विशेष–वादमें, ब्रह्मवादमें, आपाततः इस प्रकारकी कितनी युक्तियाँ वर्त्तमान हैं। उन समस्त युक्तियोंका खण्डनकर वास्तविक सत्त्यको प्रकाश करना ही आचार्योंका कार्य है। वास्तविक तत्त्वज्ञ व्यक्तियोंका कार्य है। ये सब जटिलताएँ दार्शनिक जगत्‌में वर्त्तमान हैं। यदि वास्तविक गुरुपादपद्मका आश्रय ग्रहण करते हैं तो यह स्पष्ट हो जायेगा। उनके निकट यह सब जटिलता नहीं रहती।

"पिशाची पाइले येन मतिच्छन्न हय। मायाग्रस्त जीवेर हय सेइ भाव उदय। 'आमि नित्य कृष्णदास'—एइ कथा भूले। मायार नफर हइया चिरदिन बुले।" (प्रेमविवर्त) मैं कौन हूँ? नित्य कृष्णदास। इसे मैं ग्रहण नहीं कर पा रहा हूँ। मेरा स्वरूप नित्यकृष्णदास है—यही दिव्यज्ञान और वास्तविक तत्त्व है।

'ब्रह्म' शब्दके द्वारा कृष्णको भी व्यक्त किया गया है। जैसे 'राजा' कहनेसे एक राजा समझा जाता है। किन्तु, राजामें बहुत विषयोंकी धारणा भी वर्तमान है। राजाका राज्यत्व, राजाका सेनापति, सैन्य–समूह, बहुत अस्त्र–शस्त्र, हाथी, घोड़े, रथ, मन्त्री आदि सभी कुछ उस राजा पदमें वर्तमान है। 'राजा' कहनेसे एकमात्र राजाको ही नहीं समझा जाता है। अगर 'राजा' का राज्यत्व नहीं, सेनासमूह नहीं, मन्त्री नहीं, उसको क्या राजा कहा जायेगा? इसलिए राजा कहनेसे जिस प्रकार सब कुछ मिलकर ही राजा होना समझा जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म कहनेसे ब्रह्मके अनन्त गुण, रूप, क्रिया, शक्ति, उनके वैशिष्ट्य आदि सब कुछ भी उसके अन्तर्गत होना समझा जाता है। इन वैशिष्ट्योंसे युक्त ब्रह्मको उन वैशिष्ट्योंसे रहित कहनेसे क्या उसे वास्तविक ब्रह्म समझा जायेगा? यह वास्तविक ब्रह्मका अनुभव नहीं है, बल्कि मिथ्या अनुभव है। इस निर्विशेषवादको तत्त्वविदोंने स्वीकार नहीं किया है। निर्विशेषवादके द्वारा वास्तविक तत्त्व प्रकाशित नहीं हुआ करता है।

नाम, गुण, क्रिया, शक्ति तथा सच्चिदानन्द आकार विशिष्ट तत्त्व ही 'ब्रह्म'

नाम, रूप, गुण, क्रिया, शक्ति आदि सब कुछ जिनमें है, वैसे तत्त्वको ही 'ब्रह्म' कहते हैं। ब्रह्म निराकार, निःशक्ति, निष्क्रिय, निरञ्जन इत्यादि नहीं हैं। किन्तु वेदोंमें ऐसे वाक्यसमूह क्यों देखे जाते हैं? **जैसे 'अरूपवत्'** (वेदान्तसूत्र) [अर्थात् रूपहीन हैं], **'न तस्य कार्यं करण विद्यते न तत्सम ाभ्यधिक दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते ज्ञान–बल–क्रिया च॥'** (श्वेताश्वतर उपनिषद ६/८) [अर्थात् उन भगवान्‌का न कोई शरीर है, न हि इन्द्रियसमूह हैं इत्यादि], **'अपाणि–पादो जवनो गृहीता'** (श्वेताश्वतर उपनिषद् ३/१९) [अर्थात् उनका कोई हाथ या पैर नहीं है, फिर भी वे शीघ्रतापूर्वक सभी

वस्तुओंको ग्रहण करते हैं] आदि। जहाँ एक ओर यह कहा गया है कि उनका हाथ नहीं है, पैर नहीं है, आकार नहीं है, इत्यादि, वहीं इसका विपरीत अर्थ भी दिया गया है कि पैर नहीं होनेपर भी वे वेगसे चल सकते हैं। पैर न होनेपर वे किस प्रकार चल सकेंगे? क्या वे हाथसे चलेंगे? चलनेका कार्य तो पैरोंसे ही होता है। अतः चलनेका कार्य है, किन्तु पैर नहीं हैं, यह कैसी बात हुई? 'अपाणि' अर्थात् हाथ नहीं हैं, फिर ग्रहण भी कर रहें हैं—ऐसा विपरीत अर्थ कहा गया है। 'शृणोत्यकर्ण' अर्थात् उनके कान नहीं है, फिर भी सुनते हैं। 'पश्यत्यक्षु' अर्थात् उनका आँख नहीं है, फिर भी सब कुछ देखते हैं। 'जानाति सर्वं' अर्थात् वे सब कुछ जानते हैं, लेकिन उनको कोई नहीं जानते या समझते हैं। इस प्रकार उस ब्रह्म वस्तुके सम्बन्धमें ऐसा ज्ञान वेदमें दिया गया है।

इसका सामञ्जस्य क्या है? सार्वभौम भट्टाचार्यजीने इसके विषयमें जो प्रश्न किया था, उसके उत्तरमें श्रीमन्महाप्रभुने उनसे यह कहा—वे अप्राकृत हाथ, आँख आदि अङ्गोंसे विशिष्ट हैं तथा वेदोंमें उनके प्राकृत अङ्गोंको ही निषेध किया गया है। इसका कारण यह है कि हम बद्धजीव 'आकार' कहनेपर अप्राकृत आकारकी धारणा नहीं कर सकते हैं। क्योंकि आकार कहनेसे प्राकृत आकारके सम्बन्ध हमारी जो धारणा या ज्ञान है, उसी प्रकारकी एक धारणाको ग्रहण कर लेते हैं। 'उनका हाथ है' कहनेसे हम यही समझेंगे कि उनका हाथ भी हमारे हाथ जैसा ही है, इसके अतिरिक्त क्या अप्राकृत हाथकी हम धारणा कर सकेंगे? नहीं, क्योंकि हमने उस अप्राकृत वस्तुको कभी देखा ही नहीं है। जिस हाथसे दौड़ना, देखना, सुनना आदि कर सकते हैं, ऐसे हाथके सम्बन्धमें क्या हमारी धारणा है? ब्रह्मका कोई भी अङ्ग, किसी भी अन्य अङ्गका समस्त कार्य कर सकता है। वे केवल आँखसे ही नहीं देखते, बल्कि कानसे, नाकसे, हाथसे, मुखसे तथा अन्य सभी अङ्गोंसे भी देख सकते हैं, जैसे कहा गया है—**"अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति"** (ब्रह्मसंहिता ५/३२) अर्थात् समस्त इन्द्रिय अन्य समस्त

इन्द्रियोंका कार्य कर सकती हैं। हम ऐसे अङ्गोंके सम्बन्धमें किस प्रकारकी धारणा रख सकते हैं? हमें केवल प्राकृत इन्द्रियोंके विषयमें जानकारी होनेके कारण हमारी केवल प्राकृत इन्द्रियोंके विषयमें ही धारणा है। किन्तु, अन्य समस्त इन्द्रियोंका काम करनेवाली इन्द्रियोंके सम्बन्धमें हमारी धारणा नहीं हो सकती, क्योंकि हमने उसे देखा ही नहीं है।

वेदमें हाथ–पैर आदि रहित ब्रह्म कहकर निषेध किया गया है, इसका यह अर्थ है कि उनके हमारे प्राकृत हाथ और पैरके अनुरूप प्राकृत हाथ, पैर आदि नहीं हैं। भगवान्‌के हाथ–पैर आदि हैं कहनेसे उसे हम प्राकृत धारणाके अनुरूप प्राकृत न समझ बैठें, इसलिए वेदमें ब्रह्मको निराकार, निःशक्ति कहा गया है। प्राकृतका निषेध कर, अप्राकृतकी स्थापना करनेके लिए ही **"अपाणि अपादौ"** इत्यादि श्लोककी उक्ति हुई है। इसलिए उनके बिलकुल ही हाथ, पैर आदि अङ्ग समूह नहीं है, यह नहीं बताया गया है। तात्पर्य यह है कि वह ब्रह्म सच्चिदानन्द आकार–विशिष्ट हैं।

मेरी भक्ति हुई है या नहीं, इसके लिए भी माप–तौल है। उस माप–तौलसे हमें कितनी भक्ति हुई है, वह समझा जा सकता है। वह माप–तौल है–सम्पूर्णरूपसे विषयोंको छोड़ दिया है या नहीं, विरक्ति हुई या नहीं...

भक्तिका माप–तोल करनेकी प्रक्रिया

फिर, यह सच्चिदानन्द क्या है? सत्–चित्–आनन्द– इसे हम मुखसे कह तो देते हैं, किन्तु वह सच्चिदानन्द कैसा है? कोई बता सकता है कि वह सच्चिदानन्द तत्त्व क्या है? इसके विषयमें शास्त्र और गुरु–वैष्णवोंके मुखसे सुनकर कह तो डालते हैं कि वे सच्चिदानन्द–तत्त्व हैं। किन्तु वस्तुतः वह सच्चिदानन्द–तत्त्व किस प्रकारका है, उसका क्या हमें अनुभव है? क्या वे नरम हैं या लकड़ीकी भाँति हैं या लोहेके समान हैं? क्या हमें इसका अनुभव हुआ है?

जिन्हें इसका अनुभव नहीं हुआ है, वे यदि गुरुगिरि करने जाते हैं, तो वह मिथ्या गुरुगिरि हो जायेगी और सार्थक नहीं होगी।

"भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिः
अन्यत्र चैष त्रिक एककालः।"

(श्रीमद्भा॰ ११/२/४२)

मेरी भक्ति हुई है या नहीं, इसके लिए भी माप–तौल है। उस माप–तोलसे हमें कितनी भक्ति हुई है, वह समझा जा सकता है। वह माप–तौल है–सम्पूर्णरूपसे विषयोंको छोड़ दिया है या नहीं, विरक्ति हुई या नहीं, इस मायिक जगतके रस, गन्ध, स्पर्श, पैसा, स्त्रीजाती इत्यादिके प्रति आसक्ति है या नहीं, वे सब मन–मनमें अच्छे तो नहीं लग रहे हैं। उनके प्रति किसी प्रकारकी भोग–बुद्धि हमारे अन्दर उदय तो नहीं हो रही है? वास्तविक तत्त्वज्ञ व्यक्तिगण जिस प्रकारसे उसका दर्शन करते हैं, जिस प्रकार उसके साथ व्यवहार करते हैं, मेरा क्या वैसा व्यवहार उदय हुआ है? यह कृष्णदासी हैं–ऐसा केवल मुखसे कहनेसे ही नहीं होगा। ऐसा कहकर मैं स्वयं उसका दासित्व तो नहीं कर रहा हूँ? यथार्थमें कृष्णकी दासी कौन है? इन विचारोंमें लिप्त होकर गुरु–गिरि करनेसे क्या चलेगा?

परेशानुभव

'अप्राकृत–भक्ति' होनेसे परेशानुभव होगा। परेश अर्थात् भगवान् कैसे और किस प्रकारके हैं, उसका अनुभव होगा। मैं श्रीकृष्णकी श्रीअर्चामूर्त्तिको हाथ लगाता हूँ और फिर यह सोचता हूँ कि अरे! यह मूर्ति कितनी ठण्डी है। और यह भी सोच लेते हैं कि ये तो पत्थर हैं। श्रीधाम पुरीमें पण्डा लोग कहते हैं–आओ आओ, जगन्नाथदेवको आलिङ्गन करो,

ऐसा कहकर जोरपूर्वक जगन्नाथदेवको आलिङ्गन करा देते हैं। हम भी मान लेते हैं कि हमने तो भगवान्‌को आलिङ्गन कर डाला है, किन्तु यह कैसा आलिङ्गन है रे भगवान्?

इस प्रकार जब मुझे ही अप्राकृत वस्तुका अनुभव नहीं हुआ है, तो फिर मैं किस प्रकार दूसरोंको वह अनुभव प्रदान कर सकूँगा? मुझमें स्वयं दिव्यज्ञान नहीं है, किन्तु बताऊँगा कि आओ आओ मैं तुमको यह दिव्यज्ञान दे दूँगा। जब स्वयं मुझे ही दिव्य–अनुभव नहीं हुआ है, तो किस प्रकारसे दूसरोंको वह दिव्य–अनुभव प्रदान कर सकूँगा? भक्ति होनेपर, भगवान्‌के साथ सम्बन्धित होनेपर, भगवान्‌के साथ भावयुक्त होकर 'भगवान् मेरे प्रियतम, मेरे प्रेष्ठ हैं'–ऐसा ज्ञान होनेपर उनके प्रति शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुरादि रसोंमेंसे किसी एक रसमें उनसे सम्बन्धयुक्त होनेपर उनके तत्त्वादिके सम्बन्धमें अनुभव होगा।

मुझसे यदि कोई कहे कि भगवान् मर गये हैं, तब मैं रोऊँगा नहीं, यहाँ तक कि मुझमें कुछ भी विकार नहीं होगा। किन्तु, यदि कोई कहे कि अहो! तुम्हारी पत्नीको क्या हुआ जानते हो? तो हम "क्या हुआ, क्या हुआ" कहते हुए कूद पडेंगे। अगर वह कहे कि तुम्हारी पत्नी वहाँ मरी पड़ी हुई है, तब हम रो पड़ेंगे। किन्तु, जब भगवान् मर जाय, तो क्या हम रोयेंगे? हम सब भगवान्‌के जो भक्त बने हैं, क्या हम उनके लिए रोयेंगे? भगवान् मर गये और मुझे भूख लग गयी है। भगवान्‌के सर्वश्रेष्ठ भक्तोंकी क्या हालत हुई? श्रीकृष्णको थोड़ा–सा कष्ट हो रहा है, ऐसा सुनकर गोपियोंने कहा–"श्रीकृष्णको क्या हुआ? नारद तुमने क्या कहा? भगवान्‌को कष्ट हो रहा है। क्या वे छटपटा रहे हैं? हमारे पैरकी धूल देनेसे उनका समस्त कष्ट दूर हो जायेगा? इसी क्षण धूल ले जाओ।" उनको बोलना नहीं पड़ा कि धूलि दे दो। वे स्वयं ही अपने पैरकी चरणधूलि देने लग गयीं। झोलेमें बाँधकर बोलीं कि इसी समय इसे ले जाओ और उन्हें लगा दो। यदि हमें अनन्त काल नरकमें भी रहना पड़ेगा, तो हम अनन्तकाल तक नरक जायेंगी। यदि हमें अनन्त कालतक नरकमें जाना पड़ेगा, क्या हम दे सकेंगे? हमारी क्या भगवान्‌के प्रति ऐसी सम्बन्ध–युक्त होकर सेवा बुद्धि है? कोई अगर कहे कि तुमने भगवान्‌के लिए क्या किया है? तो हमने सेवाके लिए कितना पैसा दिया है, उसका हिसाब–किताब दे देंगे और बखान करेंगे कि देखो मैं कितना बड़ा सेवक हूँ। किन्तु हमने अपनी पत्नीको कितना पैसा दिया, क्या उसका हिसाब है? यथार्थमें क्या मैं सेवक हूँ, गुरुप्रेष्ठ हूँ? गुरुसेवाके लिए मैंने क्या किया है? इस प्रकार हमारी भक्तिका माप–तौल है।

श्रीगुरु कृपासे माया और अज्ञानकी निवृत्ति

भक्ति होनेसे भगवत्–तत्त्वका अनुभव होगा और साथ ही विरक्ति अर्थात् इस मायिक वस्तुमें विरक्ति होगा। मायिक वस्तुमें जो आसक्ति है, वह मिथ्या है। **"असत्येर सत्य बलि मानि"** (श्रील नरोत्तरम दास ठाकुर) असत्य अर्थात् मिथ्याको हम सत्य मानते हैं। मेरा बेटा, मेरी पत्नी, मेरा घर–इस प्रकार हमारा जो विचार है–क्या यह सत्य है अथवा मिथ्या? थोड़ी–सी मिट्टी तैयार नहीं कर सकते और इतने बड़े शरीरको कहते हैं कि मेरा है। इस प्रकार जिन्होंने इसकी सृष्टि की है, उन्हें अस्वीकार कर रहें हैं या नहीं? बद्ध जीवमें सत्यके सम्बन्धमें ऐसी धारणा है। हम परतत्त्वके सम्बन्धमें अज्ञानग्रस्त हैं। मायारूपी पिशाचीने हमको पकड़कर हमारी बुद्धिको विपर्यय कर दिया है। इसीलिए **जबतक हम मायामुक्त नहीं होते, तबतक उस तत्त्ववस्तुका सम्पूर्ण–ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं। उस मायाको तथा हमारे अज्ञानको केवल श्रीगुरुदेव ही कृपाकर दूर कर सकते हैं। इसलिए सम्पूर्ण भावसे उन श्रीगुरुदेवका आश्रय ग्रहण करना ही हमारा कर्त्तव्य है।**

"वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥"

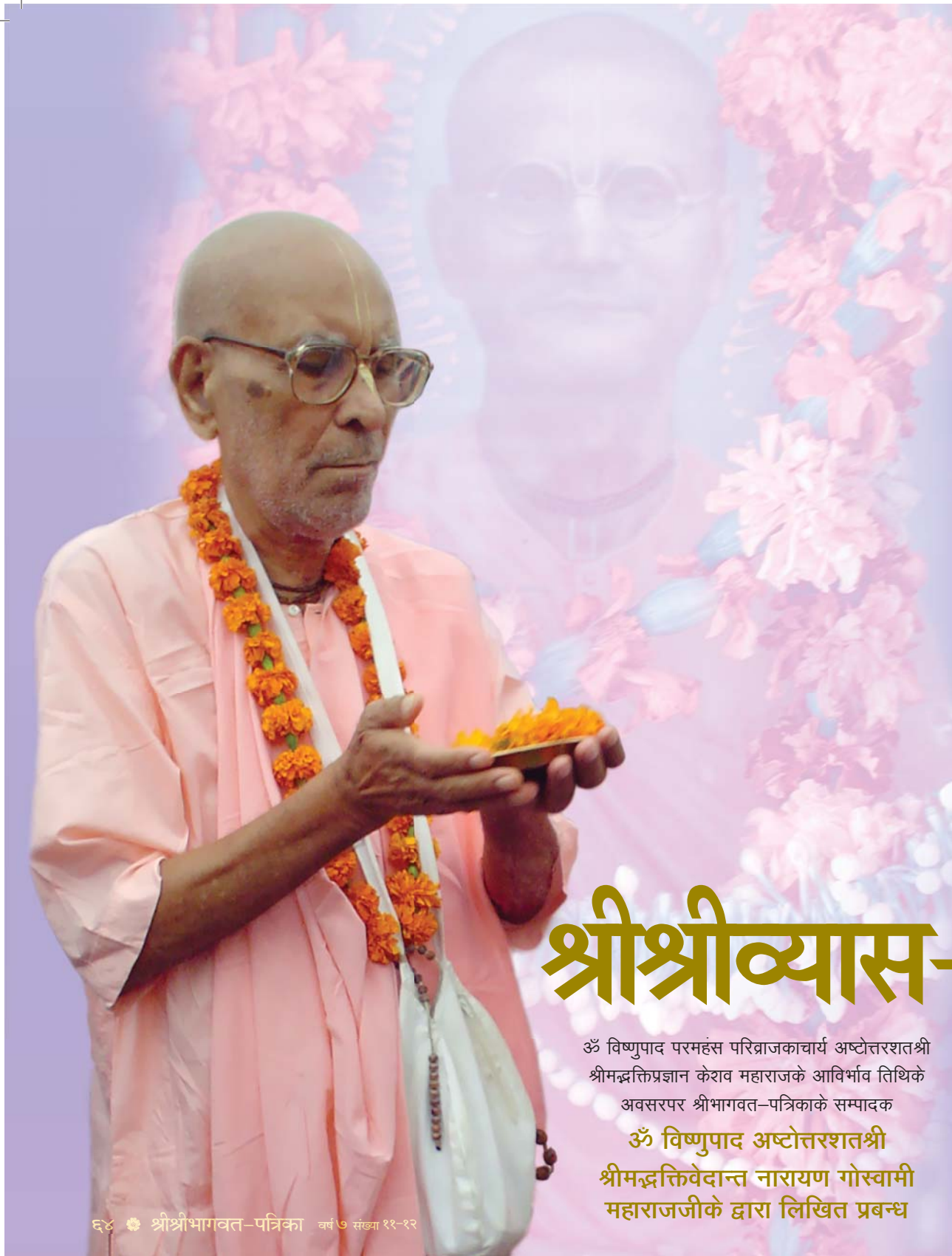

श्रीश्रीव्यास–

ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजके आविर्भाव तिथिके
अवसरपर श्रीभागवत–पत्रिकाके सम्पादक

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी
महाराजजीके द्वारा लिखित प्रबन्ध

व्यासपूजा क्या है?

इस पुण्य भारत–भूमिकी अथवा समग्र विश्वकी, "ब्रह्मसूत्र" की प्रभासे उद्भासित जनमण्डलीमें–भारतकी प्राचीन सभ्यता, आचार–विचार एवं धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले जन–समाजमें ऐसे कम लोग ही पाये जायेंगे जिन्होंने "कृष्णद्वैपायन व्यास" का नाम न सुना हो। किन्तु व्यासदेवके नाम सुननेपर भी अनेक ऐसे हैं, जो व्यासपूजा क्या है? इसकी प्रणाली क्या है? उद्देश्य क्या है? इन विषयोंसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। उन्हें व्यासपूजा शब्द ही अभिनय और अश्रुतपूर्व जान पड़ता है।

श्रीव्यासदेवजी कीर्त्तन–विग्रह आश्रय जातीय भगवदवतार थे। इन्हीं कीर्त्तन–विग्रहके मुखसे विगलित अमृतकी अजस्रधारा कीर्त्तन–विग्रह श्रीमद्भागवतके रूपमें–शब्दावतारके रूपमें–ग्रन्थ भागवतके रूपमें इस अवनितलपर प्रकटित हुई है। श्रीमद्भागवतमें निखिल स्थानोंके निखिल जीवोंके निखिल युगोंकी सम्पूर्ण समस्याओंका आश्चर्यरूपसे समाधान है।

प्रत्येक जीवका धर्म कृष्णकी सेवा करना है। इसे ही सनातनधर्म, वैष्णवधर्म या जैवधर्म कहते हैं। श्रीमद्भागवतमें इसी सनातनधर्मकी विशद् व्याख्या की गई है। श्रीमद्भागवतके उपदेशोंको कालके विभिन्न आधारोंमें पड़कर विकृतरूपमें विभिन्न प्रकारसे लौकिक व्यवहारके जीवनमें नियुक्त हुआ देखकर–श्रीमद्भागवतके निगूढ़ तत्त्व एवं सिद्धान्तोंको श्रोताओं और साधारण जनताकी धारणाके अनुकूल बनानके उद्देश्यसे हमारे पूर्व–पूर्व आचार्योंने युग–युगमें इस व्यास–पूजाका अवलम्बन किया है।

व्यासपूजाकी परम्परा

अनिमेषक्षेत्र नैमिषारण्यमें सूतगोस्वामीने व्यासदेवके मुखसे श्रवण की हुई हरिजन–तोषणी श्रौत–वाणी शौनकादि ऋषियोंके आगे कीर्त्तनकर व्यासपूजा की थी। श्रीमाध्व–गौड़ीय–सम्प्रदायके आचार्य श्रीमध्वपादने बदरिकाश्रममें व्यासदेवकी कीर्त्तन–वाणी "गीताभाष्य" का कीर्त्तनकर व्यासपूजाकी अखण्ड मङ्गल आरती उतारी थी। फिर पतितपावनी गङ्गाजीके तटपर, श्रीधाम मायापुर नवद्वीपमें कीर्त्तनस्थली श्रीवास–अङ्गनमें जगद्गुरु बलदेवाभिन्न श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुने उसी श्रौत–वाणीका कीर्त्तनकर व्यास–पूजा की थी। फिर कुछ ही दिन हुए श्रीधाम–मायापुरके उसी रङ्गमञ्चपर हमारे परम गुरुदेव, परमहंस परिव्राजकाचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराजने पृथ्वीमें सर्वत्र श्रीमद्भागवत–वाणीका प्रचारकर श्रीश्रीव्यासपूजाका आदर्श दिखलाया है। क्या मध्वाचार्य, क्या नित्यानन्दप्रभु और क्या सरस्वती गोस्वामी महाराज, सभीने–

पूजा और श्रीगौड़ीय वेदान्त

अश्रौत–पथका परित्यागकर श्रौत–पथ या गुरु–वाक्यका अनुसरण ही व्यास पूजाका तात्पर्य है और गुरु वैष्णवोंके आनुगत्यमें श्रीहरिसेवाके लिए तैयार होना ही व्यासपूजाका उद्देश्य है।

"कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्त्तनात्॥"

(श्रीमद्भा॰ ११/३/५२)

इस व्यासोक्त विष्णुपूजा–प्रणालीके समर्थन द्वारा–इसी श्रौत–वाणीका कीर्त्तनकर व्यास–पूजा प्रणालीकी शिक्षा दी है।

व्यास पूजाका तात्पर्य–श्रौत-पथ या गुरु-वाक्यका अनुसरण

अश्रौत–पथका परित्यागकर श्रौत–पथ या गुरु–वाक्यका अनुसरण ही व्यास पूजाका तात्पर्य है और गुरु वैष्णवोंके आनुगत्यमें श्रीहरिसेवाके लिए तैयार होना ही व्यासपूजाका उद्देश्य है।

यह श्रौत–मार्ग क्या है? जिस समय महाराज परीक्षित् अपना राजसिंहासन तथा सर्वस्व त्यागपूर्वक, जीवनको क्षणभंगुर और अवश्यम्भावी अनित्यताका विषय जानकर, महाभागवतके मुखसे विगलित हरिकथाके श्रवणमें ही जीवनकी शेष घड़ियाँ बिताना मानव जीवनकी सर्वोत्तम सार्थकता है, ऐसी अनुभूतिकर, परम पावनी श्रीगङ्गाजीके तटपर पहुँचे, वहाँ कितने ही ऋषि, मुनि, धर्मोपदेशक, ब्रह्मज्ञ, पंडित, ज्ञानी, कर्मी, योगी, तपस्वी एवं व्रतधारी उपस्थित थे। किन्तु उस सच्चे जिज्ञासुकी मीमांसाका किसने समाधान किया? किसने उन्हें वास्तव–सत्यका आलोक दर्शाया? एकमात्र कीर्त्तनविग्रह श्रीव्यासदेवके शिष्य महाभागवत वरेण्य श्रीशुकदेवजीने ही। इन्होंने श्रौत–परम्परासे व्यासदेवजीसे भगवद्भक्ति–कथा श्रवण की थी और श्रवण की थी श्रीमद्भागवत, जिसमें अधोक्षज राज्यका संदेश है। इसी श्रौत–धाराके अन्तर्गत श्रीसूतगोस्वामी नैमिषारण्यमें कलि–त्रस्त–ऋषि–मुनियोंके आगे, थोड़े ही शब्दोंमें सहज–सरल भाषामें वेदका तात्पर्य कहनेमें समर्थ हुए थे। इस कलिकालमें भी श्रीगौरसुन्दरने अपनी नित्यलीला प्रकटकर इसी सनातन श्रौतधारा–"कीर्त्तन" का आश्रय लेकर कलिग्रस्त जीवोंका उद्धार किया है। अभी कुछ ही दिन हुए, ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वतीने, श्रीश्रीभक्तिविनोद ठाकुरकी मनोभिलाषाके अनुसार इसी श्रौतवाणी "हरि संकीर्त्तन" से समग्र विश्वका कल्याण किया है। आज इन्हीं ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीके निर्देशानुसार गौड़ीय–वेदान्त समितिके भक्तवृन्द

उसी श्रौत–मार्गसे श्रीश्रीव्यासपूजाका प्रत्येक वर्ष अनुष्ठान करते हैं।

व्यासपूजा करनेका अधिकार

व्यास पूजा कोई व्यक्तिगत पूजा अथवा सम्प्रदाय विशेषकी पूजा नहीं, बल्कि जीवमात्रकी पूजा है। महाभारतमें व्यासदेवने कहा है–**"सर्वे वर्णा ब्रह्मजा ब्राह्मणा"** अर्थात् सभी वर्ण ब्रह्मसे उत्पन्न और ब्राह्मण हैं। अतः सभीको व्यासपूजा करनेका अधिकार है। पर साथ ही साथ योग्यताकी भी आवश्यकता है। जैसे प्रत्येक पुरुषका पिता और प्रत्येक स्त्रीको माता बननेका अधिकार है, परन्तु अनुकूल अवसर–रूपी योग्यताके अभावमें पंचवर्षीय बालक या बालिका पिता या माता बननेसे वंचित रहते हैं। उसी प्रकार व्यास–पूजाकी योग्यता हुए बिना व्यास–पूजा सम्पन्न नहीं होती।

भगवान् पूर्ण चेतन और अप्राकृत रसमय विग्रह हैं। गुरु–तत्त्व भी अप्राकृत तत्त्व हैं। गुरु–पूजाका नामान्तर व्यासपूजा है। इसके अलावा व्यासदेव भगवद् शक्त्यावेशावतार थे। अतः व्यास–पूजा भी अप्राकृत पूजा है। इसलिए यह पूजा करनेके लिए अथवा परमार्थ राज्यमें प्रवेश करनेके पहले हमें सर्वप्रथम आत्मधर्ममें प्रतिष्ठित होना होगा। आचार्य–जगत्के उच्चतम नक्षत्र "गौरसुन्दर" ने सर्वप्रथम आत्मधर्ममें ही प्रतिष्ठित होनेका उपदेश दिया है। श्रीकृष्णने अर्जुनको गीतामें सर्वप्रथम यही उपदेश दिया कि तुम इस जड़ शरीर और मनसे परे उत्कृष्ट आत्मा हो–**"अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्"** (श्रीगीता ७/५)। अतः व्यासपूजाके लिए इस आत्म–धर्ममें प्रतिष्ठित होना ही योग्यता प्राप्त करना है और वही इसका सुन्दर रङ्गमञ्च है। शास्त्र कहते हैं–**"नादेवो देवमर्चयेत्"** अर्थात् अदेव व्यक्ति कभी देवताकी पूजा नहीं कर सकता। प्राकृत–वस्तु अप्राकृत–वस्तुकी पूजा नहीं कर सकती। अचित्के द्वारा चेतनकी पूजा नहीं होती। चेतन अचेतनका ज्ञानगम्य विषय नहीं। पूज्य और पूजक तो समजातीय होने चाहिए। अन्यथा वह पूजा जड़की पूजा हो जाती है। वह पूजा पूजा नहीं, सर्वथा अभिनयमात्र हो जाता है। इसीका नामान्तर भूत–शुद्धि है।

भूत–शुद्धि

लिङ्ग और स्थूल देह आत्माके दो नैमित्तिक आवरण हैं। अतः मनोधर्म अथवा दैहिक धर्म नैमित्तिक एवं प्राकृत धर्म है और आत्मधर्म इसके विपरीत नित्यधर्म है। जिन लोगोंने बाह्य प्रक्रियाको ही भूत–शुद्धि समझ रखा है, वे कर्ममार्गके पथिक हैं। जिस तरह मदिराका बर्त्तन जलमें बार–बार धोनेसे भी गन्ध नहीं छोड़ता, वैसे ही कर्म–चेष्टाके द्वारा–स्थूल देहकी क्रिया–द्वारा चेतन वस्तुकी पूजा करनेकी योग्यता प्राप्त नहीं हो सकती। श्रुति कहती है–

परिक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो,
निर्वेद मायान्नास्त्य कृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्,
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठम्॥

(मुंडक उपनिषद् १/१२)

अर्थात् उन भगवद्वस्तुका विज्ञान (प्रेमभक्तिसहित ज्ञान) प्राप्त करनेके लिए वे यज्ञीय समिध् हाथमें लिए हुए वेदतात्पर्यज्ञ और कृष्णतत्त्वविद् सद्गुरुके पास कायमनोवाक्यके साथ पूर्ण समर्पित भावसे जाएंगे।

इस प्रकार कर्म–मार्गके हेय होनेसे फिर अन्तःशौचके द्वारा भूत–शुद्धि करनेके लिए ज्ञानमार्गके पथिक हो पड़ते हैं। ये लोग माया और मायापति श्रीहरिको एक कर देते हैं। उनका कहना है, "मायाका नामान्तर ही भगवान् है।" ये कर्मोंका बाह्यरूपसे परित्याग करते हैं। फल्गुवैराग्य और निर्विशेष ब्रह्म ही उनका चरम ध्येय है। अज्ञान कर्म–संगित्वसे हमलोगोंका उद्धार करनेके लिए भक्तिके पूर्वपक्षमें जो भोग या त्यागकी बात कही गयी है, उसके बाह्य आचारको ही वे चरम आदर्श मानकर नित्य सत्यसे वंचित होते हैं। इसीलिए श्रीमद्भागवत (१०/१४/४) में कहा गया है:–

श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य त विभो,
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।

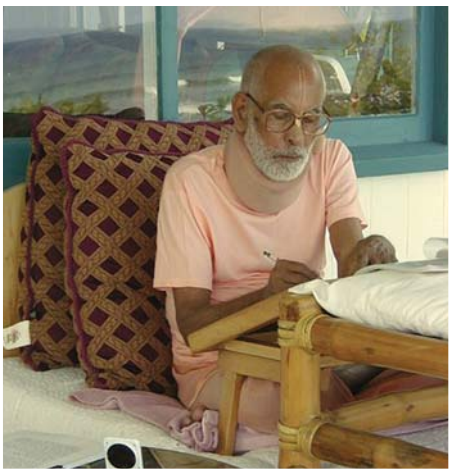

श्रीलोचनदासने 'श्रीचैतन्य–मङ्गल', वृन्दावनदास ठाकुरने 'चैतन्यभागवत' एवं कृष्णदास कविराज गोस्वामीने 'श्रीचैतन्य चरितामृत' इन तीन भक्तिग्रन्थोंकी रचनाएँ कर गौड़ीय सम्प्रदायके लिए तीन अमूल्य निधियाँ छोड़ गये हैं। पर गौड़ीय समाज इन ग्रन्थोंके रहनेपर भी मूल ग्रन्थ और मूल ग्रन्थकार श्रीमद्भागवत और वेदव्यासको नहीं भूला।

तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते,
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

अर्थात् जो लोग श्रेयः मार्गको छोड़कर केवल ज्ञान लाभ करनेके लिए कष्ट स्वीकार करते हैं, उन्हें भूसीमें चावल खोजनेके समान केवल कष्ट ही कष्ट हाथ लगता है। वे वंचित होते हैं। अतः **"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणम् व्रज।"**, **"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।"**, **"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजि मां नमस्कुरु।"** आदि गीता (१८/६६,६५; ७/१४) के श्लोकोंमें भगवान् श्रीमुखसे प्रतिज्ञा करते हैं कि मेरी सेवा अर्थात् भक्तिके अलावा जीवोंकी गति नहीं है। जीवोंका यही परम धर्म है। यही भूत–शुद्धि है और यही व्यास–पूजाकी योग्यता या अधिकार है।

व्यासपूजाकी सफलता एवं पूर्णता कौन लाभ करते हैं?

श्रीव्यास–पूजाका नामान्तर गुरुपादपाद्ममें आत्मसमर्पण है। श्रीगुरुदेवका मनोऽभिष्ट—जो सुचारु–रूपसे भगवत्–सेवा है, उसे पालन करना, उसका अनुसरण करना ही परम धर्म है। अतः जो जितने ही अंशोंमें व्यासदेव और श्रीमद्भागवतको केन्द्रकर श्रीगुरुदेवके मनोवांछित पथका अनुसरण करते हैं, वे उतने ही अंशोंमें व्यासपूजाकी सफलता एवं पूर्णता लाभ करते हैं।

मायावादी भी व्यासपूजा करते हैं। मायावादी **"अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि"**, आदि श्रुति वाक्योंका अनर्थ कर निर्विशेष अवस्थाको ही चरम प्रयोजन मानते हैं, पर वेदान्त शास्त्रके अकृत्रिम भाष्य श्रीमद्भागवतमें इन विचारोंको हेय माना गया है। दूसरी बात यह है कि शङ्कराचार्यके वेदान्त–भाष्यमें जहाँ मूल ग्रन्थसे विरोध उपस्थित हुआ है, वहाँपर श्रीगुरुदेव व्यासको भ्रान्त कहा गया है। अतः इनकी व्यासपूजा कहाँतक पूजा है अथवा लांछना है, पाठक विचार करेंगे।

व्यासपूजा अन्यान्य सम्प्रदायोंमें भी होती है। १५वीं और १६वीं शताब्दीमें अनेक महापुरुष हो गये हैं, जिन्होंने व्यासदेवकी वाणीका प्रचार भारतके भिन्न–भिन्न प्रान्तोंमें, बोल–चालकी भिन्न–भिन्न भाषाओंमें सर्वसाधारणकी धारणाके अनुकूल सरल भाषाओंमें किया है। उत्तर भारतमें श्रीतुलसीदास गोस्वामीने 'रामायण', पंजाबमें गुरुनानक ने 'आदिग्रन्थ', उड़ीसामें श्रीजगन्नाथदासने 'उड़िया भागवत', आसाममें शङ्करदेवने 'कीर्तनघोषा' आदि भक्तिग्रन्थोंकी

रचनाएँ की हैं। वर्तमानकालमें इन सम्प्रदायोंके लोग मूल ग्रन्थ श्रीमद्भागवत और मूल ग्रन्थकार श्रीवेदव्यासको प्रायः भूल ही बैठे हैं। ये लोग इन आधुनिक ग्रन्थोंकी ही श्रीमद्भागवतके स्थानमें और इनके ग्रन्थकारोंकी ही वेदव्यासके स्थानमें पूजा करते हैं। किन्तु गौड़ीय सम्प्रदायमें आज भी ऐसा नहीं होता। इस सम्प्रदायमें भी उन्हीं महापुरुषोंके समसामयिक श्रीलोचनदासने 'श्रीचैतन्य–मङ्गल', वृन्दावनदास ठाकुरने 'चैतन्यभागवत' एवं कृष्णदास कविराज गोस्वामीने 'श्रीचैतन्य चरितामृत' इन तीन भक्तिग्रन्थोंकी रचनाएँ कर गौड़ीय सम्प्रदायके लिए तीन अमूल्य निधियाँ छोड़ गये हैं। पर गौड़ीय समाज इन ग्रन्थोंके रहनेपर भी मूल ग्रन्थ और मूल ग्रन्थकार श्रीमद्भागवत और वेदव्यासको नहीं भूला। आज भी वेदान्त–सूत्र, श्रीमद्भागवत, और गीता आदिकी दैनिक आलोचना करना ही इनका प्रधान कर्त्तव्य है। श्रीमद्भागवतका आचार–विचार ही इन गौड़ीय सम्प्रदायके लोगोंका आचार–विचार है।

दूसरी बात यह है कि आचार्य शङ्करने अद्वैतवादका, श्रीमन्मध्वाचार्यने शुद्धद्वैतवादका, श्रीरामानुजने चित् और अचित् इन दोनोंसे विशिष्ट विशिष्टाद्वैतवादका, श्रीनिम्बादित्यस्वामीने जीव और ईश्वरमें युगपत् भेद और अभेदवादका और विष्णुस्वामीने शुद्ध अद्वैतवादका प्रचार किया है। परन्तु उपरोक्त किसी मतमें वेदका सर्वाङ्गीण विचार नहीं है। उनमें केवल एकदेशी सिद्धान्तका विचार है। इन सबके बाद आचार्यकी भूमिकापर श्रीचैतन्यचन्द्र अपनी नित्यलीला प्रकटकर अवतीर्ण होते हैं। उन्होंने उक्त आचार्योंके मतोंमें जो कुछ परस्पर भेद था, उन सबका एक अपूर्व समन्वय स्थापन कर दिया है। उन आचार्योंके अभावोंको पूर्णकर मध्वाचार्यके सच्चिदानन्द विग्रहका सिद्धान्त, श्रीरामानुजका शक्ति–सिद्धान्त, श्रीविष्णुस्वामीका शुद्ध–अद्वैतसिद्धान्त तथा निम्बादित्यका द्वैताद्वैत सिद्धान्त ग्रहणकर अचिन्त्य भेदाभेदके नामसे एक सर्वदेशी सिद्धान्तका प्रचार किया है। इसमें वेदका सर्वाङ्गीण, दोष–रहित, नित्यधर्मकी प्रतिष्ठा है। गौड़ीय सम्प्रदाय इन्हीं गौरसुन्दरका निजी सम्प्रदाय है। अतः जिस सम्प्रदायमें जितनी ही अपूर्णता है, उस सम्प्रदायमें व्यासपूजाकी भी उतनी ही अपूर्णता है। यही अन्तर है—गौड़ीय व्यासपूजा और अन्य सम्प्रदायोंकी व्यास–पूजाओंमें।

परमहंस श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराजके मनोवांछित विचारधाराका अनुसरण करना ही व्यासपूजा की सफलता

परमहंस चक्रवर्त्ती श्रीशुकदेवजीकी हंसी–संहिता श्रीमद्भागवतकी लुप्तप्राय कीर्त्तन–ध्वनिको पुनः संचरितकर, जगत्को उस संकीर्त्तनकी बाढ़में डूबो देनेके लिए ही परमहंस श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज गौरशक्तिके रूपमें इस जगतमें अवतीर्ण हुए थे। अतः श्रौतधाराके अनुसार इनके मनोवांछित विचारधाराका अनुसरण करना ही व्यासपूजा की सफलता है। इसके अतिरिक्त अन्य आचरण समुह गुरुद्रोहिता और भगवत्द्रोहिता है। आज उपरोक्त विचार धाराके प्रतिकुल गौड़ीय सम्प्रदायमें भी कोई–कोई भजनानन्दी होनेका अभिनय करते हैं, कोई कलियुगका महामन्त्र नाम संकीर्त्तन करना अवैध बतलाते हैं, कोई श्रीहरिको अपने ही भोगमें लगा रहे हैं और कोई कनक–काञ्चन और मान–प्रतिष्ठामें ही डूब उतरा रहे हैं। अतः इनलोगोंके द्वारा व्यासपूजाका स्वांग रचे जाने पर भी वह प्रकृत व्यासपूजा नहीं है।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

गौड़ीय वेदान्त समिति गौड़ीय–सम्प्रदायकी एक शाखा है। यह आज भी इस भीषण जड़वादके युगमें, इस परिवर्त्तनके युगमें जबकि समस्त देशमें नास्तिक्यवादकी भीषण लपटें धूँ–धूँ कर जल रही हैं तथा धर्म निरपेक्षताके नामपर धर्मकी बलि दी जा रही है, गौड़ीय वेदान्त समितिके भक्तवृन्द अदम्य उत्साहसे निर्भीकतापूर्वक समग्र देशोंमें श्रीचैतन्यदेवका स्वर्णिम सन्देश—भक्तिसिद्धान्तके अटल पर सरल वाणियोंको सुना रहे हैं। इसके अतिरिक्त श्रीगौरसुन्दरकी लीलास्थली श्रीनवद्वीप धामकी परिक्रमा, इनका जन्म–महोत्सव, रथयात्राका विराट महोत्सव,

काशीधाम, नैमिषारण्य, बद्रीनारायण, सेतुबाँध रामेश्वर, द्वारकाधाम, क्षेत्रमण्डल (पुरी), अयोध्या, पंढरपुर, उज्जैनी तथा भुवनमोहन नटवर कृष्णकी लीलास्थली व्रजमण्डल आदि भगवद्धामोंमें चातुर्मास्य व्रतका पालन एवं व्यासपूजा आदि विभिन्न भक्ति और भगवद्स्मृति उदीप्तकारी उत्सवादिके उपलक्ष्यमें हरिकथाके प्रचारका विपुल आयोजनकर भागवत–सिद्धान्तके निगूढ़ तत्त्वोंको सर्वसाधारण तक पहुँचाते हैं। इन धाम परिक्रमा और पारमार्थिक सम्मेलन आदि मङ्गलमय अनुष्ठानोंके द्वारा असंख्य जीवोंके स्वार्थ, परार्थ तथा निःस्वार्थ साधनका—जननिष्ठ, समाजनिष्ठ तथा परलोकनिष्ठ कल्याणका स्रोत प्रवाहित कर रहे हैं।

व्यासानुग सम्प्रदायमें जो आचार्यके आसनपर बैठकर भागवतधर्मका आचार एवं प्रचार करते हैं, उन्हीं गुरुदेवकी पूजा ही व्यास–पूजा है। यही व्यास–पूजा चैतन्यदेवका मनोऽभीष्ट है।

गौड़ीय वेदान्त समितिका कथन.....

गौड़ीय वेदान्त समितिका कहना है कि अधोक्षज कृष्ण ही एकमात्र भोक्ता हैं और बाकी सभी उसके भोग्य हैं। अतः अधोक्षज कृष्णकी सेवा ही एकमात्र जीवका धर्म है, विषयोंकी सेवा नहीं। जो साध्य है, वही साधन है। ये परस्पर भिन्न नहीं हैं। उनका कहना है—सर्वप्रथम आत्मधर्ममें प्रतिष्ठित होओ। शरीरधर्म और मनोधर्ममें आसक्त रहनेसे एकता और विश्वप्रेम शब्द केवल शब्दमात्र ही रहेंगे। इनका कहना है—**'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'** (कठ उपनिषद् २/३/१४), **'शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।'** अर्थात् उठो, जागो, चेतो! हम सभी अमृतके पुत्र हैं। जीवमात्र ही उस अमृतके उत्तराधिकारी हैं। ये कहते हैं—जगत्के—विश्व–ब्रह्माण्डके सब मनुष्य हमारे आत्मीय हैं। संसारके पशु–पक्षी, तृण, लता, गुल्म आदि सभी हमारे स्वजन हैं। जहाँ जो कुछ भी चेतनता है, वह हमारे प्रभुकी है। हम उन सबका इस माया–मरीचिकासे उद्धार करेंगे। जीवका एकमात्र धर्म हरिनाम संकीर्त्तन है और श्रीरूप प्रदर्शित पथ ही श्रीकृष्ण कीर्त्तनका एकमात्र पथ है। नामाभास क्यों, नामापराधसे ही जगत्के सैकड़ों दुर्भिक्ष, बाढ़, अभाव, भय, शोक, मोह आदि दूरिभूत हो जाते हैं। हरिकीर्त्तनके अतिरिक्त सारी चेष्टाएँ बंधनका कारण हैं। इनका संकीर्त्तन केवल ताल, लय और स्वर ही नहीं है—ये तो रेडियो, ग्रामोफोन और वेश्याओंके गानोंमें भी पाये जायेंगे, संकीर्तनमें ज्वलन्त जीवन चाहिए और चाहिए आचार–प्रचार युगपत्। हरिभक्ति देह और मनोधर्म नहीं, यह तो शुद्ध आत्माका धर्म है। इसके विपरीत जीवका स्वार्थ, परार्थ या निःस्वार्थ साधन हो ही नहीं सकता। प्राकृत–दर्शन त्याग करनेका नाम ही असत्–संग त्याग और संन्यास ग्रहण करना है। भक्त और भगवान्के प्रति सेवामयी सरलता ही वैष्णवता है —इत्यादि। इन्हीं सिद्धान्तोंके ऊपर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी सुदृढ़ भित्ति है।

गौड़ीय सम्प्रदायमें वेदान्त शास्त्रकी आलोचना

कुछ लोगोंकी धारणा है कि गौड़ीय सम्प्रदायमें वेदान्त शास्त्रकी आलोचना नहीं होती। किन्तु यह उनकी गलत धारणा है। हाँ, आजकल श्रीचैतन्य सम्प्रदायमें आउल, बाउल, कर्त्ताभजा, नेड़ा, दर्वेश, साईं, सहजिया, सखी, भेकी, स्मार्त्त, जाति–गोसाईं आदि अनेक अपसम्प्रदाय घुस आए हैं। इनका मूल उद्देश्य काञ्चन, कामिनी और प्रतिष्ठाका संग्रह करना है। लोगोंको प्रसन्न करना ही उनका पेशा है। शास्त्रीय सिद्धान्तोंसे इनकी चिर–शत्रुता है। किन्तु गौड़ीय सम्प्रदायसे इनकी कोई तुलना नहीं हो सकती।

गौड़ीय सम्प्रदायमें वेदान्त दर्शनका जितना अध्ययन और अनुशीलन होता है, उतना और कहीं भी नहीं होता। वेदव्यास रचित वेदान्त–सूत्र और इसका अकृत्रिम भाष्य श्रीमद्भागवत—ये दोनों गौड़ीय वैष्णवोंकी अपनी सम्पत्ति हैं। इसमें प्राचीनकालके प्रसिद्ध दर्शनोंका—कपिलके सांख्य दर्शनका, कणादके वैशेषिक दर्शनका, पतञ्जलिके

योग दर्शनका, गौतमके न्याय दर्शनका तथा जैमिनीके पूर्व मीमांसाका और उनके बादवाले—चार्वाक दर्शन, अर्हत दर्शन, बौद्ध दर्शन, पाशुपत नकुलीश दर्शन आदिके पूर्व पक्षका खण्डन किया गया है तथा परब्रह्म कृष्णको सम्बन्ध, कृष्ण—भक्तिको अभिधेय (साधन) और कृष्णप्रेमको प्रयोजनके रूपमें प्रतिपादन किया गया है।

इस सम्प्रदायके आचार्योंने अचिन्त्य—भेदाभेद नामक दार्शनिक सिद्धान्तकी प्रतिष्ठाके निमित्त प्रस्थानत्रयी—ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदोंपर भाष्य बनाया है, जो दार्शनिक जगत्के आकाशमें सर्वदा भास्कर—सदृश प्रदीप्त रहेंगे। श्रील जीव—गोस्वामीका षट्सन्दर्भ दार्शनिक जगत्का अमूल्य और बेजोड़ ग्रन्थ है। ये वेदान्तके अध्ययन और अनुशीलनके ही जीवन्त और ज्वलंत प्रमाण हैं। इनके अतिरिक्त (भक्ति) रसशास्त्रमें श्रीलरूप—गोस्वामीके भक्तिरसामृतसिंधु और उज्ज्वलनीलमणि, नाटकमें उन्हींके ललितमाधव तथा विदग्धमाधव, व्याकरणमें श्रीलजीव—गोस्वामीका हरिनामामृत व्याकरण, काव्यमें श्रीलरूप गोस्वामीके पद्यावली, हंसदूत, उद्धवसंदेश और श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामीका चैतन्यचरितामृत, स्मृतिमें श्रील सनातन गोस्वामीका हरिभक्तिविलास तथा गणित, ज्योतिष, इतिहास आदि समस्त विषयोंसे गौड़ीय—साहित्य भरा पड़ा है। इन सभीका मूल प्रतिपाद्य विषय कृष्ण, कृष्णभक्ति और कृष्णप्रेम है। अतः भलीभाँति समीक्षा करनेपर देखा जाता है कि यह सम्प्रदाय ही सर्वाङ्ग पूर्ण वैयासकी सम्प्रदाय है। इन्हीं कारणोंसे इस वर्त्तमान शाखाका नाम श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति रखा गया है, जिससे लोग भ्रमवशात् आचार्य शंकरके मायावाद या निर्विशेषवादको ही वैदान्तिकमत न समझें, प्रत्युत् वेदान्तभाष्य श्रीमद्भागवतके एकान्त अनुयायी श्रीगौड़ीय वैष्णवोंको ही सच्चा वैदान्तिक समझा जाय।

एकमात्र गौड़ीय सम्प्रदाय ही श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासका अनुगत

व्यास अष्टादश हैं। वाल्मीकिजी भी उनमें एक हैं। अतः उनका अनुगत सम्प्रदाय भी व्यासानुगत वैष्णव सम्प्रदाय ही हैं, इसमें संदेह नहीं है। परन्तु वेदका विभाग करनेवाले, वेदान्त—सूत्रके रचयिता श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासके अनुगत वैष्णव कहनेसे एकमात्र इसी गौड़ीय सम्प्रदायके वैष्णवोंका ही बोध होता है।

व्यासानुग सम्प्रदायमें जो आचार्यके आसनपर बैठकर भागवतधर्मका आचार एवं प्रचार करते हैं, उन्हीं गुरुदेवकी पूजा ही व्यास—पूजा है। यही व्यास—पूजा चैतन्यदेवका मनोऽभीष्ट है। यही व्यास—पूजा जगत्की अनन्त अमीमांसित समस्याओंके सुलझावका पथ है। यही व्यास—पूजा श्रौत पूजाका आदर्श है।

वृद्ध सनातन धर्मको पुनः यौवन प्रदान करनेवाले महापुरुष

जिस महापुरुषने नाना हरिभक्ति उदीप्तकारी उत्सवोंका अनुष्ठान कर पारमार्थिक सम्मेलनकर, विविध भाषाओंमें पारमार्थिक पत्रोंका प्रकाशनकर विद्यालय, विद्यापीठ एवं स्कुल स्थापितकर ग्रन्थोंका प्रकाशनकर, विभिन्न स्थानोंमें हरिकथा प्रचारक मठ—स्थापनकर श्रीश्रीचैतन्यदेवकी अमर वाणी—श्रीश्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वतीकी निर्मल और वीर्यवती वाणीका प्रचारकर, कुसिद्धान्तवादियोंके मतोंका खण्डन और दमनकर वृद्ध सनातन धर्मको पुनः यौवन दान दिया है, मृतप्राय गौड़ीय सम्प्रदायमें पुनः जीवन सञ्चार किया है, आज इन्हीं गुरुदेवकी पूजा है। आज इन्हीं परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजजीके श्रीचरण—कमलोंमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके भक्तवृन्द सेवामयी श्रद्धाके तरुण किशलययुक्त सुकोमल पुष्प, कुंकुम एवं धूप—चंदनादिका थाल अर्पण कर रहे हैं। आज इन्हीं गुरुदेवके चरण—कमलोंमें हमारा कोटि—कोटि नमस्कार है और हम इस गौड़ीय वेदान्त समितिके भक्तवृन्दकी इस अधोक्षज गुरुपादपद्म मनोऽभीष्ट सेवा प्रवृतिको कोटि—कोटि कंठोंसे अभिनन्दन करते हैं।

[श्रीभागवत—पत्रिका (वर्ष—१, संख्या—१०) से संग्रहीत]

गुरुवर्गके प्रीतिमूलक आशीर्वचन

श्रीगुरुपादपद्मका आशीर्वाद

['जैवधर्म' ग्रन्थकी प्रस्तावनाके अन्तमें नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके द्वारा लिखित वचन]

"मूल 'जैवधर्म' ग्रन्थ बँगला भाषामें है। फिर भी इसमें शास्त्रीय प्रमाण आदि सम्वलित संस्कृत भाषाका प्रचुर प्रयोग किया गया है। इस ग्रन्थकी व्यापक लोक–प्रियताका इसीसे पता चलता है कि थोड़े ही समयमें बँगला भाषामें इसके दस–बारह बड़े–बड़े संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी भाषामें अनुदित जैवधर्मका प्रस्तुत संकरण—श्रीगौड़ीयवेदान्त समिति द्वारा अभिनव आकारमें प्रकाशित जैवधर्मके अभिनव संस्करणकी पद्धतिका अनुसरण करके मुद्रित हुआ है। हिन्दी पारमार्थिक मासिक—**'श्रीभागवत पत्रिका' के सुयोग्य सम्पादक—त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने बड़े परिश्रमसे इस ग्रन्थको हिन्दीमें अनूदित कर उक्त पत्रिकाके पहले वर्षसे छठे वर्ष तक में प्रकाशित किया है।** अब अनेक श्रद्धालु व्यक्तियोंके बारम्बार अनुरोधपर हिन्दी भाषी धार्मिक जनताके कल्याणार्थ उसीको पुस्तकाकारमें प्रकाशित किया गया है।

प्रसङ्गवश मैं यह कहनेके लिए बाध्य हो रहा हूँ कि अनुवादक महोदय हिन्दी भाषी हैं, बँगला उनकी मातृ–भाषा नहीं है, तथापि उन्होंने इस ग्रन्थका अनुशीलन करनेके लिए बँगला भाषाका अध्ययन किया तथा उसमें विशेष अभिज्ञता प्राप्त करके कठोर परिश्रम और कष्ट स्वीकार कर इस ग्रन्थका अनुवाद किया है। मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि इसमें मूल–ग्रन्थके कठिन दार्शनिक एवं रसविचारके अतिगहन तथा परमोन्नत सूक्ष्म भावोंकी भलीभाँति रक्षा हुई है। **हिन्दी जगत् इस महान कार्यके लिए इनका कृतज्ञ रहेगा। विशेषतः श्रील प्रभुपाद और श्रील भक्तिविनोद ठाकुर इनके इस अक्लान्त सेवा कार्यके लिए निश्चित रूपमें इन पर प्रचुर कृपा करेंगे।"**

"सर्वोपरि मेरा वक्तव्य यह है कि उक्त भक्तजनोंका गौरवपात्र होनेके कारण ही इस ग्रन्थके सम्पादनमें मेरा नाम व्यवहृत हुआ है। **वास्तवमें इस ग्रन्थके अनुवादक और प्रकाशक उक्त त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज ही सम्पादनका सारा कार्य करके मेरे विशेष आशीर्वादके पात्र हुए हैं।"**

"मुझे पूरा विश्वास है कि एतद्देशीय श्रद्धालु जनतासे लेकर विद्वान् मण्डली तक—सभी इस ग्रन्थका पाठ करके श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित सम्बन्धाभिधेयप्रयोजन–तत्त्वके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्तकर श्रीश्रीराधाकृष्ण और श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रेमधर्ममें अधिकार प्राप्त कर सकेंगे।"

"पाठकवर्ग इस ग्रन्थका पाठ कर हमारे प्रति प्रचुर आशीर्वाद करें—यही प्रार्थना है। अलमतिविस्तरेण।"

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ — श्रील प्रभुपाद–किङ्कर
मथुरा — त्रिदण्डि–भिक्षु
सम्वत् २०२३, ई १९६६ — **श्रीभक्ति प्रज्ञान केशव**

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीके स्नेहपूर्णवचन

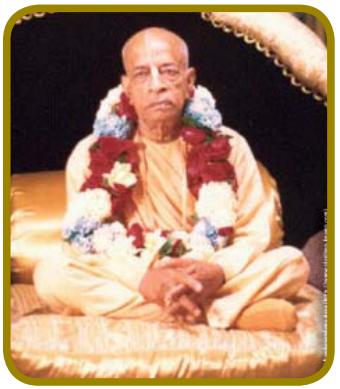

[श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको लिखे गये उस पत्रके कुछ अंश, जो "Letters from America" नामक ग्रन्थमें भी मुद्रित हुआ था।]

॥श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः॥

ISKCON,
Newyork,
२८ सितम्बर १९६६

श्रीपाद नारायण महाराज!

मैंने आपका २०/९/६६ दिनांकित पत्र यथा समय प्राप्त किया। **हमारा सम्बन्ध अवश्य ही स्वाभाविक प्रेमपर आधारित है।** इस कारणसे हमारी एक दूसरेको भूलनेकी कोई सम्भावना नहीं है। गुरु और गौराङ्गकी कृपासे आपके लिए सब मङ्गलमय हो, यही मेरी निरन्तर प्रार्थना है। आपको पहली बार देखनेके समयसे मैं आपका सतत हितैषी हूँ। मुझे पहली बार देखकर श्रील प्रभुपादने भी मुझे ऐसे ही प्रेमसे देखा था। श्रील प्रभुपादके प्रथम दर्शनमें ही मैंने प्रेम करना सीखा। उनकी असीमित कृपा है कि मुझ जैसे अयोग्य व्यक्तिको उन्होंने अपनी कुछ इच्छाएँ पूर्ण करनेमें नियुक्त किया। यह उनकी अहैतुकी कृपा है कि उन्होंने मुझे श्रीरूप और रघुनाथके सन्देशका प्रचार करनेमें प्रवृत्त किया।

मेरा कमरा दिल्लीमें बन्द पड़ा है। यदि आप या आपके विश्वसनीय प्रचारक दिल्लीमें प्रचार करना चाहते हैं, तो मुझे सूचित करें। यदि आप दिल्लीमें कार्य करना चाहते हैं, तो आप उस कमरेको उपयोग कर सकते हैं और प्रचार कर सकते हैं। यदि आप दिल्ली जाना कायम रखेंगे तो मेरे प्रकाशन कार्यकी देख–रेख आपके निरक्षणमें हो सकेगी।

आपने मुझे लिखा—"आप मुझे मेरी योग्यतानुसार भारतमें किसी भी प्रचार–कार्यमें नियुक्त कर सकते हैं। मैं सदैव इसके लिए तैयार रहूँगा।" अतः मैं आपकी शुभकामनाओंके कारण पूर्णरूपसे प्रचार कर सकता हूँ।

निवेदन,
इति—
श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी

[श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीके द्वारा श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके नित्यलीलामें प्रविष्ट करनेके उपलक्ष्यमें श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजजीको बंगला भाषामें लिखे गये उस पत्रका कुछ अंश, जिसे बादमें श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने हिन्दीमें अनुवाद करके श्रीभागवत पत्रिका (वर्ष–१४, संख्या–७, १९६८) में प्रकाशित किया था।]

॥श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः॥

Seattle, Washington
२२ अक्टूबर १९६८

श्रीश्रीवैष्णवचरणे दण्डवन्नति पूर्विकेयम्,

मैं अतिशय गृहमेधी व्यक्ति था। श्रील प्रभुपाद (श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर) बीच–बीचमें स्वप्न दिया करते थे कि गृह त्यागकर उनके निकट चला जाऊँ। ऐसे स्वप्नको देखकर मुझे अत्यन्त भय होता कि मुझे सन्यास ग्रहण करना पड़ेगा। अर्थात् सन्यास ग्रहण करनेकी मेरी तनिक भी इच्छा न थी। **परन्तु श्रीपाद नारायण महाराजकी प्रचेष्टासे** श्रील केशव महाराजने मुझ सदृश अनभिप्सु अन्धको जोरपूर्वक सन्यास देकर मुझपर अतुलनीय कृपा की थी। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि श्रील प्रभुपादकी इच्छा उनके अन्दर प्रेरित होकर मेरा यह संन्यास सिद्ध हुआ था।

इति–श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिकुमुद

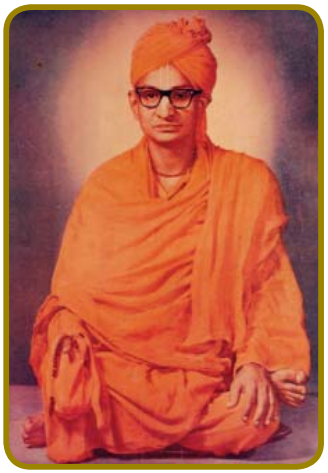

[श्रील भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके संन्यास आश्रमी शिष्योंमेंसे आज तक भी वर्तमान अन्तिम शिष्य हैं। श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराज और श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराजने ही उन्हें ग्यारह वर्षकी बाल्य–अवस्थामें अपने गुरु श्रील प्रभुपादके चरणकमलोंमें लाये थे। दीक्षाके समय श्रील प्रभुपादने उनका नाम श्रीराधारमण दास रखा तथा उस बालककी पढ़ाईके लिए व्यवस्था की।

नित्यलीलामें प्रविष्ट करनेके उपरान्त श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने एक दिन श्रीराधारमण दासको संन्यास ग्रहण करनेके लिए और श्रीमन् महाप्रभुकी वाणीका सर्वत्र प्रचार करनेके लिए स्वप्नादेश दिया। अतएव १९४२ में उन्होंने श्रील भक्तिगौरव वैखानस गोस्वामी महाराजसे रेमुणा, ओड़िसामें संन्यास ग्रहण किया। उन्होंने बादमें श्रीचैतन्य आश्रमकी संस्थापना की जिसकी शाखाएँ पूरे भारतमें हैं।

श्रील भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराजने श्रील प्रभुपाद या उनके प्रिय परिकरोंके किञ्चित् मात्र आदेशका कभी भी उल्लंघन नहीं किया तथा वे अपने गुरुपादपद्मके थोड़ेसे भी संग करनेवाले व्यक्तिके प्रति भी अत्यन्त आदर और सम्मान प्रदर्शित करते थे। हमारे गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज श्रील भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराजको सदैव अपने विश्व प्रचार आदिके सम्बन्धमें लिखा करते थे तथा श्रील भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराजजी भी अत्यन्त हर्षपूर्वक आशीर्वाद प्रदान करते हुए उत्तर देते। ये सभी पत्र श्रीभागवत–पत्रिका (वर्ष–४१, ४४, ४५, ४७) में पहले भी प्रकाशित हुए थे।]

ALL GLORY TO SRI SRI GURU AND GOURANGA

TRIDANDISWAMI
B. K. SANTA MAHARAJ
FOUNDER & PRESIDENT

SRI CHAITANYA ASHRAM,
23, BHUPEN ROY ROAD,
BEHALA, CAL.—34

REF. NO. ..... **DATED:** 21/12/97

स्नेहास्पदेषु,

नारायण महाराज! आपका पत्र पाकर एवं आप पुनः विदेश प्रचारमें जा रहे हैं यह जानकर अत्यन्त सुखी हुआ। आपके श्रीगुरुदेव मेरे ज्येष्ठ गुरु–भ्राता (श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज) मुझे विशेष स्नेह करते थे। **आप उनके प्रतिष्ठान तथा समग्र गौड़ीय जगतका औज्ज्वल्य वृद्धि कर रहे हैं, यह अत्यन्त आनन्दकी बात है।** श्रीश्रीगुरु–गौरांग आपको इस महती प्रचार कार्यके लिए प्रचुर शक्ति प्रदान करें–यही प्रार्थना करता हूँ। आप प्रचारसे लौटकर मेरे निकट आयेंगे जानकर अत्यधिक सुखी हुआ। उस समय साक्षातरूपसे ही सब कहूँगा एवं सुनूँगा।

मैं अगले २३ दिसम्बरको पुरी जा रहा हूँ। २६ जनवरीको खड़गपुर होकर ३० जनवरीको कलकत्ता मठमें लौटूँगा। आप मेरा आशीर्वाद लेंगे एवं सभीको मेरा आशीर्वाद देंगे, अधिक क्या लिखुं।

इति—

आशीर्वादक
श्रीभक्तिकुमुद सन्त

सन्त गोस्वामी महाराजजीके आशीर्वचन

ALL GLORY TO SRI SRI GURU AND GOURANGA

TRIDANDISWAMI
B. K. SANTA MAHARAJ
FOUNDER & PRESIDENT

SRI CHAITANYA ASHRAM,
23, BHUPEN ROY ROAD,
BEHALA, CAL.—34

REF. NO. .....

DATED: 28/01/2000

कल्याणभाजनेषु,

स्नेहपात्र नारायण महाराज! आपका १०/०१/२००० तारीखका पत्र पाकर अत्यन्त आनन्दित हुआ। प्रचार विपुलरूपसे हो रहा है, यह जानकर और भी आनन्दित हुआ। इतनी व्यस्तताके बीचमें भी आपने मुझे स्मरण किया, इसलिए **श्रीगुरु–गौरांगके निकट प्रार्थना करता हूँ कि आपमें हरिकथा प्रचारके लिए अधिक शक्ति संचारित हो**। अच्छा कार्य करनेमें कुछ बाधाएँ आयेंगी, पर उसके लिए चिन्ता न कर आप अपना प्रचार कार्य निर्भीकरूपसे कीजिए।

हम यदि श्रील प्रभुपादकी कथा आचारणपूर्वक सर्वतोभावेन प्रचार कर सकें, तभी हमारे इस जीवनकी सार्थकता है। अधिक क्या लिखूँ, आप मेरा आर्शीवाद ग्रहण करेंगे एवं सभीको मेरा आशीर्वाद देंगे।

इति—

आशीर्वादक
श्रीभक्तिकुमुद सन्त

ALL GLORY TO SRI SRI GURU AND GOURANGA

TRIDANDISWAMI
B. K. SANTA MAHARAJ
FOUNDER & PRESIDENT

SRI CHAITANYA ASHRAM,
23, BHUPEN ROY ROAD,
BEHALA, CAL.—34

REF. NO. .....

DATED: 03/02/2001

कल्याणभाजनेषु,

स्नेहास्पदेषु नारायण महाराज! सुदूर इंग्लैण्डसे प्रेरित आपका पत्र पाकर अत्यन्त सुखी हुआ। आप मुझे श्रद्धा करते हैं इसलिए इतनी दूरसे भी मुझे स्मरण करके पत्र लिखा। **आपके प्रति श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' तथा आपके श्रीगुरुदेव श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी कृपा–शक्ति प्रचुर परिमाणमें सञ्चरित हुई है, इस सन्दर्भमें सन्देहकी कोई गुञ्जाइश नहीं है**, क्योंकि इस प्रकार भारतके बाहर देशोंमें आपकी कथाके द्वारा इतने लोग आकृष्ट हो रहे हैं, जहाँ भी जा रहे हैं सर्वत्र ही इतने लोग एकत्र हो रहे हैं, ये साधारण बात नहीं है।

अब मेरा आयु ८७ वर्ष पूर्ण होकर ८८ आरम्भ हुआ है। वार्द्धक्य अवस्थाके कारण पहले जैसा चल–फिर नहीं सकता। श्रील प्रभुपादकी वाणी इस प्रकार आप प्रचार कर रहे हैं, **आपका साफल्य क्रमशः और वर्द्धित हो**—श्रील प्रभुपादके श्रीचरणकमलोंमें यही कातर प्रार्थना करता हूँ। आप मेरा स्नेहाशीर्वाद ग्रहण करेंगे और सबको कहेंगे। अधिक क्या लिखूँ।

इति—

आशीर्वादक
श्रीभक्तिकुमुद सन्त

ALL GLORY TO SRI SRI GURU AND GOURANGA

TRIDANDISWAMI
B. K. SANTA MAHARAJ
FOUNDER & PRESIDENT

SRI CHAITANYA ASHRAM,
23, BHUPEN ROY ROAD,
BEHALA, CAL.—34

REF. NO. .....

DATED: 27/01/2004

कल्याणभाजनेषु,

स्नेहास्पद नारायण महाराज ! सुदूर हावाई द्वीपसमूहसे लिखित आपके पत्रको पाकर अत्यन्त सुखी हुआ। गिर जानेसे कमरकी हड्डी टूटनेके कारण मैं दीर्घ दिनोंसे शय्याशायी हूँ। कुछ दिनके बाद फिर सन्तुलन खो बैठनेके कारण और दो स्थानोंमें हड्डी टूट गयी। कुछ दिन अस्पतालमें भर्ती होनेके बाद अभी मठमें हूँ। चलना–फिरना एकदम बन्द है। इस अवस्थामें आपने मुझे इस प्रकार लिखा है, इससे मेरा कहनेका कुछ भी नहीं है। आप मुझपर श्रद्धा करते हैं, इसे मैं अपने श्रीगुरुदेवकी अपार करुणाका प्रकाश ही मानता हूँ। मुझे स्मरणपथमें रखकर आपके प्रचारकार्योंमें सफलताकी बात बताकर आप शान्ति लाभ करते हैं, इससे अवगत होकर अत्यन्त सुखी हुआ। **श्रीश्रीगुरु–गौराङ्ग तथा आपके श्रीगुरुदेवकी असीम करुणा आपके ऊपर है। इस विषयमें सन्देह नहीं है।** परम करुणामय श्रील प्रभुपाद आपको और भी अधिक शक्ति प्रदान करें जिससे क्रमशः पृथ्वीपर सर्वत्र श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी प्रचारमें आप साफल्य– मण्डित हों। **अनेक बाधाएँ आयेंगी, उनकी उपेक्षा कर आप अपना कार्य करते जाइए।**

मेरी उम्रके ९० साल पूर्ण हुए। वार्द्धक्यजनित शक्तिरहित अवस्था आ पहुँची है। फिर भी आपके प्रचारकार्यमें सफलताकी वार्ता ज्ञात होकर अत्यन्त आनन्दका अनुभव करता हूँ। आप मेरे आशीर्वादको स्वीकार कीजिएगा तथा आपके साथ जो प्रचारमें हैं, उन सभीको भी मेरा आशीर्वाद दीजिएगा। अधिक क्या लिखूँ?

इति—

आशीर्वादक
श्रीभक्तिकुमुद सन्त

सतीर्थ गुरुभ्राताओंके शुभाकांक्षामय और स्नेहपूर्ण वचन

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीके द्वारा दी गयी शुभकामनाएँ

[श्रील गुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी श्रीगौरवाणी प्रचार हेतु प्रथम विश्व यात्राके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति आचार्य और सतीर्थ गुरुभ्राताके द्वारा लिखित पत्र और श्रीभागवत-पत्रिका के वर्ष-४० में पूर्व प्रकाशित]

॥श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः॥

श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठ,
मिलनपल्ली, सिलिगुड़ि (प०ब०)
ता०-२५/४/१९९६

श्रीवैष्णवचरणे दण्डवन्नति पूर्विकेयम्-

पूज्यपाद महाराज! आपकी १२/४/९६ तारीखकी कृपालिपि बहुत विलम्बसे कल ही मेरे हस्तगत हुई है। आशा करता हूँ कि परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्मकी अहैतुकी करुणासे आप सर्वाङ्गीन कुशल होंगे।

विदेशी भक्तोंके पुनः पुनः आग्रहसे आप हालेण्ड, इंग्लैण्ड, अमेरिका और कनडा आदि पाश्चात्य देशोंमें श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमधर्मकी वाणीके प्रचारके उद्देश्यसे शुभयात्रा कर रहे हैं, यह जानकर विशेष आनन्दित और उत्साहित हुआ। वहाँके भक्तोंने आप तीन व्यक्तियोंका यातायात वहन किया है एवं टिकट और वीसा भी हो गया है, ऐसा मुझे ज्ञात हुआ। सिंगापुर और हाँगकाँग श्रीगौरसुन्दरकी प्रेमवाणीसे वञ्चित क्यों होगा?

आप शुद्धभक्ति कथा प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही विदेश जा रहें है। आपको लाभालाभकी चिन्ता नहीं, किन्तु वहाँके वासियोंके पक्षमें यह स्वर्ण अवसर और सौभाग्य समझता हूँ। **श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-राधा-विनोदविहारी- नृसिंहदेव, सर्वोपरि सर्वाभिष्टप्रदाता श्रीगिरिराज महाराजकी अहैतुकी कृपा और शुभाशिष आपके ऊपर वर्षित होवे। आप उनकी वाणीके प्रचारके द्वारा अवश्य ही उनके मनोऽभीष्टके संरक्षणमें सक्षम होंगे, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।** आपकी इस वृद्धावस्थामें पाश्चात्य देशोंमें श्रीगौरवाणीके प्रचारका धैर्य और उत्साह निःसन्देह सत्साहस ही है। यदि इसे दुःसाहस कहा जाय, तो यह सत्यका अपलाप करनेके समान होगा।

आप अपने स्वगणोंके सहित जययुक्त होवें। आपकी शुभयात्राकी तिथि ५/५/९६ तारीख निर्धारित हुई है। मेरी दण्डवन्नति कृपापूर्वक ग्रहण करेंगे।

इति-

श्रीवैष्णवदासाभास प्रणत
श्रीभक्तिवेदान्त वामन

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति सहसभापति परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके प्राच्य देशोंमें श्रीगौरवाणीके प्रचारके बाद स्वदेश प्रत्यावर्त्तनके उपलक्ष्यमें

आन्तरिक अभिनन्दन

॥श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः॥

श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठ,
कलकत्ता—४ (प०ब०)
ता०—१३/३/१९९७

हे दीनवत्सल! मलेशिया, आस्ट्रेलिया, इन्डोनेशिया और सिंगापुर आदि प्राच्य देशसमूहमें श्रीगौरवाणीका प्रचारकर स्वदेश प्रत्यावर्त्तनके शुभ अवसरपर मैं आन्तरिक अभिनन्दन ज्ञापन करता हूँ। आपका यह प्रचार–भ्रमण साधारण प्रमोद–भ्रमणसे सम्पूर्ण पृथक् है। "महान्तेर स्वभाव तारिते पामर। निज कार्य नाई तबु जान परघर॥"—यही साधुओंका प्रचार करनेका एकामात्र कारण है। 'साधवो दीनवत्सलाः'—भगवद्विस्मृतिके कारण जीवोंकी अशेष दुर्गति हो रही है—यह देखकर दीनवत्सल, परदुःखदुःखी साधुगण उनके प्रति स्वाभाविक रूपमें दयार्द्र होते हैं। उनके प्रति साधारण परार्थिता नहीं प्रकाशितकर परम करुण साधुगण उन्हें आत्मधर्ममें उद्बुद्ध करते हैं।

हे केशवानुगजन! आपने परमाध्यतम जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी प्रभुके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेके लिए अपने सुख–दुःखके प्रति दृष्टिपात नहीं कर श्रीगौड़ीय वेदान्त वार्त्ता प्रचारके लिए व्रती हुए हैं। अतएव आप अशेष धन्यवादयोग्य हैं। "जगत् व्यापिया मोर खूब पुण्य ख्याति। सुखी हइया लोक मोर गाइबेक कीर्ति॥" श्रीगौरसुन्दर अपने वाणीको सार्थक करनेके लिए अपने अनुगत भक्तगणके हृदयमें प्रेरणा और सामर्थ्यका संचार करते हैं। अन्यथा वार्धक्यकी बाधा अतिक्रमण कर अनिश्चित शारिरिक अवस्थामें इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमधर्मकी वाणीका प्रचार सम्भव नहीं होता।

हे वैकुण्ठवार्त्तावाहक! विश्वव्यापी गौड़ीय मठ–मिशनके मूल प्रतिष्ठाता जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

गोस्वामी प्रभुपादने स्वयंको चैतन्यवाणीका Peon घोषित किया अर्थात् चैतन्यवाणीका धारण, वहन और परिवेशन ही गौड़ीय प्रचारकोंका विशेष वैशिष्ट्य है। वे कोई सुविधा ग्रहण करनेके लिए अथवा अपनी दुर्बलता प्रकाशित हो जानेके भयसे अथवा प्रतिष्ठा वृद्धि करनेके लिए श्रौतवाणीके परिवर्त्तन, परिवर्द्धन या किसी कष्ट–कल्पनामें नियुक्त नहीं होते हैं। अकैतव गौर–सारस्वत–वाणीका अविकृतरूपसे प्रचार करनेमें आपकी अनमनयीतासे समस्त केशरीगण अत्यन्त आनन्दित हैं।

हे प्राच्य–प्रतीच्य–विजयिन्! विश्वम्भर श्रीगौरचन्द्र समग्र विश्वमें प्रेमवन्या करनेका जो सूत्र रख गए थे, उसका अनुसरणकर ही आपकी यह प्राच्य–प्रतीच्य विजय है। इसके पहले अनेक भारतीय कर्म–ज्ञानका संदेश लेकर महासागरका अतिक्रम किए हैं। कर्मवीर नायकगणका कर्मका आह्वान नित्यशान्तिकी छलना मात्र है। निर्विशेष ज्ञानकी आलोचनामें, किन्तु एकमात्र नित्यसेव्य श्रीभगवान्के प्रति नित्यसेवक जीवकी अहैतुकी सेवाकी भूमिकामें ही पञ्चम पुरुषार्थ–कृष्णप्रेम अन्तर्निहित है। आप उसी प्रेम–प्रयोजन वाणी द्वारा ही उन–उन देशवासियोंको नूतन आलोक प्रदान करते हुए उन्हें जीत लिया है। समस्त गौरभक्तवृन्द इससे आनन्दसे आप्लुत हैं।

हे परोपकारिन्! ''भारत–भूमिते हइल मनुष्य जन्म जार। जन्म सार्थक करि कर पर उपकार।।'' भारत–भूमि ही परोपकारियोंका प्रसूतिगमन। यहाँ श्रीमन्महाप्रभुने भारतवासियोंको ही परोपकारका अधिकार प्रदान किया है। 'पर' अर्थात् श्रेष्ठ, अतः श्रीगौरसुन्दरके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेवाले श्रीरूप गोस्वामीके आनुगत्यमें ही श्रेष्ठ उपकारका निर्देश उसमें व्यक्त है। श्रीरूप प्रभु और उनके अनुगत लोगोंसे श्रीगौर–राधा– विनोदविहारीके गुह्यतम तत्त्व और सेवाका प्रकाशकर जो परोपकारित्वका श्रेष्ठ निदर्शन प्रदर्शन किया है, आप उसके ही यथार्थ उद्घोषक हैं।

हे आम्नायवाणी प्रचारकवर! पाश्चात्यवासियोंको दान करनेके लिए परोपकारी भारतवासियोंको बहुत कुछ है, किन्तु उनके निकटसे ग्रहण करनेके लिए कुछ भी नहीं। सर्वेश्वरके भक्तगणोंको जागतिक कोई भी अभाव नहीं है, जिसे पूर्ण करेनके लिए पाश्चात्य देशवासियोंकी ओर मुखरित होना होगा। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'–इस वाक्यके अनुसार समग्र जगत् ही भगवत्–सेवक और सेवोपकरण है–इसमें प्रतिष्ठित नहीं होकर पाश्चात्य भक्त सम्प्रदाय अपनी लाभ–पूजा–प्रतिष्ठा खोनेकी आशंकासे आपके गौरवाणी प्रचारमें विघ्न प्रदान कर रहे हैं। आपकी आम्नाय वाणीके प्रचारके मर्म और उद्देश्यसे उद्दीपित होनेके कारण उनका चीत्कार निष्फल हो रहा है। आप दीर्घायु और सुस्वास्थ लाभकर श्रीब्रह्म–मध्व–गौड़ीय–सारस्वत सम्प्रदायकी सात्त्वत वाणी यथायथरूपमें समग्र विश्वमें प्रचार करें–यही श्रीगौर–राधा–विनोदविहारी, श्रीगिरिराजजी, श्रीनृसिंहदेवके चरणोंमें प्रार्थना करता हूँ।

इति–
श्रीवैष्णवदासानुदास
श्रीभक्तिवेदान्त वामन

[श्रीभागवत–पत्रिका (वर्ष–४१, संख्या–१) में पूर्व प्रकाशित]

प्रपूज्यचरण परिव्रजकाचार्य त्रिदण्डी–स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीका

हार्दिक स्वागत

श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठ,
२८ हलदर बगान लेन,
कलकत्ता–४
ता॰–९ मार्च १९९७

पूजनीय स्वामीजी!

मलेशिया, आस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया और सिंगापुरमें सफल प्रचार यात्रा करके प्रसन्नतापूर्वक भारतमें आपकी वापसीपर आपको मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ। कुछ मास पूर्व भक्तोंके पुनः पुनः अनुरोध करनेपर आपको होलैंड, इंग्लैंड, अमरीका और कनाडा आदि पश्चिम देशोंमें जाना पड़ा।

आपकी प्रचार यात्रा आत्मसुखके उद्देश्यसे लोगोंके द्वारा किये जानेवाले परिभ्रमण या मूल्यहीन आवारा लोगोंकी आवारगीसे बहुत भिन्न है। क्योंकि वैष्णव सभी बद्ध जीवोंके प्रति अहैतुकी करुणा भावना रखते हैं, जीवोंका जो दुःख परमार्थिक सत्यके प्रति विमुखताके कारण उत्पन्न होता है–केवल वैष्णव ही उनके उस दुःखसे दुखी हुआ करते हैं। अपनी किसी स्वार्थके नहीं रहनेपर भी वे जगत्वासियोंको जन्म और मृत्युके भयंकर कष्टसे राहत पहुँचानेके लिए ही भ्रमण करते हैं।

श्रील वृन्दावन दास ठाकुरने हमलोगोंके लिए स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा की गयी एक अमूल्य भविष्यवाणी छोड़ी है की उनके नामका प्रवर्त्तन पृथ्वीके

समस्त शहरों और गाँवोंमें होगा। पुनः वर्तमान कालमें शुद्ध भक्तिके सर्वश्रेष्ठ अग्रगामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने भी भविष्यवाणी की है कि शीघ्र ही किसी एक विशेष प्रभावशाली व्यक्ति द्वारा शुद्धभक्तिका सम्पूर्ण जगत्में प्रसार किया जायेगा। यह भविष्यवाणी श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके अप्राकृत व्यक्तित्वमें पूर्ण होती हुई देखी जाती है, जिन्होंने उस समय विपुल रूपमें शुद्ध आस्तिकताको स्थापित करनेके लिए स्वर्ग और पृथ्वीको हिलाकर रख दिया था। उन्होंने अनेक बार पूर्व और पश्चिम गोलार्ध स्थित देशोंमें उपस्थित सम्पूर्ण अंधकारको दूर करनेके लिए अपने असाधारण गुणवान गौड़ीय प्रचारकोंको नियुक्त किया था। श्रील सरस्वती प्रभुपादके सबसे प्रिय शिष्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रीचैतन्य महाप्रभुके अटल भक्तिके सन्देशके संरक्षणके लिए विश्व–प्रसिद्ध श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना की थी। उनकी आन्तरिक इच्छाको जानते हुए आपने अपनी वृद्ध अवस्थाको अनदेखा कर दिया तथा गौड़ीय वेदान्त सिद्धान्तोंको समुद्रके उस पार प्रचार करनेके दायित्वको धारण करनेके लिए आपने अपने कदम आगे बढ़ाये। **यह आपकी महावदान्यता है।**

भारत सदैव पारमार्थिक आन्दोलनका गड़ रहा है। वर्तमान समयमें जब मनुष्योंका मन बहुत प्रकारके भौतिक विचारोंसे विचलित है, पारमार्थिक जागृति मनुष्यके लिए परम अनिवार्य हो गयी है। जिन्होंने श्रील स्वरूप दामोदर और श्रीलरूप गोस्वामीको मूल प्रचारकोंके रूपमें नियुक्त किया था, उन श्रीचैतन्यदेवके द्वारा प्रस्तुत प्रेमके दिव्य सन्देशके अतिरिक्त अन्य कोई भी मत पीड़ाग्रस्त जीवोंको वास्तवमें नित्य आनन्द प्रदान नहीं कर सकता। आप उनके योग्य सन्देशवाहक बनकर अवश्य ही उनकी शिक्षाओंके वास्तविक भावोंको श्रीगुरु–गौर–राधा–विनोदविहारी और श्रीलक्ष्मी–वराह–नृसिंहदेवकी कृपासे पतित जीवोंको प्रदान करनेमें सफल होंगे। मैं अपने आन्तरिक हृदयसे उनसे प्रार्थना करता हूँ कि श्रीचैतन्य महाप्रभुके उन उत्कृष्ट सन्देशोंको सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार करनेके लिए आपका स्वस्थ्य ठीक रहें तथा आपकी लम्बी आयु हो।

तथास्तु!

वैष्णव दासानुदास
त्रिडण्डी भिक्षु
श्रीभक्तिवेदान्त वामन

[श्रीभागवत–पत्रिका (वर्ष–४१, संख्या–१) में पूर्व प्रकाशित]

श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीके द्वारा लिखित पत्रके कुछ अंश

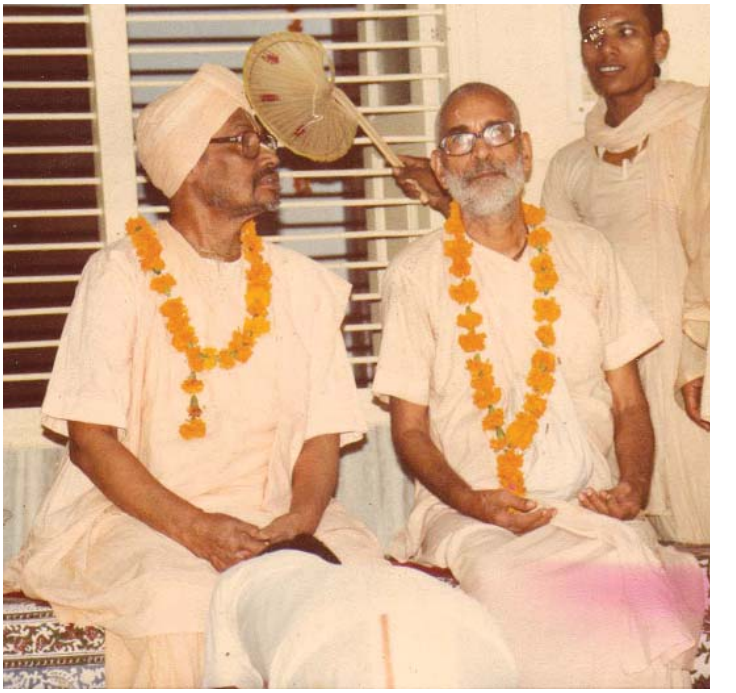

॥श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः॥

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ,
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति
श्रीधाम नवद्वीप, नदीया (प०ब०)
ता०—४/११/१९९४

श्रीवैष्णवचरणे दण्डवन्नति पूर्विकेयम्—

पूज्यपाद नारायण महाराज! आशा करता हूँ कि श्रील गुरुपादपद्मकी अहैतुकी करुणासे आपका शरीर और भजन कुशल है।

***

मैं April १९९३ में मथुरा—वृन्दावन गया था, उसके बाद १९९४ वर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ है। इस बीचमें इतनी व्यस्तताका कारण मुझे समझ नहीं आ रहा है। आप मेरे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य—अस्वास्थ्यके विषयमें विवेचना करेंगे। विशेष आवश्यकताके कारण बाहर जाने पर भी मैं कहीं प्रमोद—भ्रमणमें (घूमने—फिरने) नहीं जाता या किसी स्थानपर पाठ—वक्तृतादि नहीं करता।

मेरे द्वारा प्रतिवर्ष मथुरा—वृन्दावन नहीं जा पानेके कारण ही मैंने आपसे वहाँके सेवकोंको श्रीनाम—दीक्षादि देनेका अनुरोध किया था। मेरा अनुरोध मान लेनेसे मठ—परिचालनामें किसी प्रकारकी असुविधा नहीं होती और मुझे भी छुटकारा मिलता। मेरे द्वारा आपके पत्रका उत्तर न देनेके कारण आप सर्वत्र आलोचनाके विषय हुए हैं—ऐसा जानकर विशेष दुःखित हुआ। इसलिए आप मुझे निज गुणोंसे क्षमा करेंगे। **अनेक ब्रह्मचारी जो कहते हुए घूम रहे हैं—"गुरुदेवके साथ नारायण महाराजकी नहीं बनती, इसलिए उस मठमें रहना उचित नहीं है।" ऐसी अवस्थामें क्या किया जाए, यह चिन्ताका विषय हुआ है।**

***

आपके निकट मेरा विनीत निवेदन है कि जो सेवकगण आपके और मेरे बीच व्यवधान (मतभेद) बनानेकी चेष्टा करते हैं, उनको चिह्नित कर पत्र पढ़ते ही Math Management committee and sub-committee **मिशन और मठसे बाहर कीजिए तथा उनका समितिमें किसी जगह पर भी स्थान न हो।**

शासन—परिचालना करते समय भूल—दोष—त्रुटि हो सकती है, इस कारण सेवकगण यदि कर्त्तृ—पक्षका दायित्त्व अपने हाथोंमें ले लें, तो वह कभी भी समर्थन योग्य नहीं है। मैंने अपने किसी भी सेवकको गुरु—वैष्णवोंकी अवज्ञा और उनकी मर्यादा उल्लंघन करनेकी शिक्षा नहीं दी है। वे सभी प्रकारसे मठ—मिशनके नियम—कानून मानेंगे—इस प्रकारका निर्देश प्रदान किया गया है। श्रीगौड़ीय

वेदान्त समितिके अपने नियम–कानूनके अनुसार ही उसके अधीन मठ–मन्दिर आदि परिचालित होंगे। बाहरके किसी भी मठ–मिशन या प्रतिष्ठानके सुविधावाद, स्वार्थपरतासे युक्त नियम–कानून हमारी समितिमें नहीं चलेंगे। वेदान्त समिति अपने वैशिष्ट्य और गौरवको लेकर ही बाधारहित होकर अग्रसर होगी। हम सभी प्रकारसे गौड़ीय गुरुवर्ग, षड़गोस्वामी और आचार्यवर्गके आनुगत्यमें श्रीस्वरूप–रूपानुग श्रीरूप–रघुनाथकी वाणीके प्रचारका व्रत लेंगे, यही उनके उच्छिष्टभोजी भृत्यवर्ग—हमारा एकमात्र जीवन हो।

***

यहाँ सब कुछ एक प्रकारसे कुशल है। अधिक क्या?

इति—

वैष्णवदासाधम,
श्रीभक्तिवेदान्त वामन

[श्रीश्रीभागवत–पत्रिका (वर्ष–२, संख्या–४) में पूर्व प्रकाशित]

"हिन्दी भाषामें श्रीमद्भागवतम्, श्रीभगवद्गीता और श्रीचैतन्यचरितामृत नामक ग्रन्थोंका प्रकाश अत्यन्त आवयक है।"

[२९ जनवरी १९९४ में श्रीमान् सत्यराज ब्रह्मचारी (श्रीपाद भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज) को श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके विषयमें लिखे गये पत्रसे उद्धृत]

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज और ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजमें हुए पत्रका आदान–प्रदान

[यद्यपि महाभागवत वैष्णवजन समस्त तत्त्व–सिद्धान्तोंमें पारंगत होते हैं, तब भी साधकोंको किस प्रकारसे तथा किन भावनाओंके साथ परिप्रश्न करना चाहिए, इसीकी शिक्षा प्रदान करनेके लिए वे स्वयं अनजान व्यक्तिकी भाँति परस्पर प्रश्न किया करते हैं। उनके इस प्रकारके आदान प्रदानमें उनकी आपसी प्रीति तथा आन्तरिकता, उनके व्यवहारमें दिखलायी देनेवाली दीनता तथा परस्परके प्रति शिक्षा–गुरुकी भाँति सम्मान इत्यादि प्रदर्शित होता है। अपने आदर्शपूर्ण व्यवहारसे वे स्पष्टरूपसे प्रदर्शित करते हैं कि साधकके लिए जीवनके अन्तिम समय तक भी किसी श्रेष्ठ वैष्णवसे दिशा–निर्देश प्राप्त करते हुए आनुगत्यमय जीवन व्यतीत करना अत्यन्त आवश्यक है।

अपने गुरुभ्राता श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके हृदयरूपी खानमें छिपे हुए अत्यन्त निगूढ़ गोड़ीय–वैष्णव–सिद्धान्त रूपी रत्नोंको निकालकर जगत्के चिर मङ्गल हेतु प्रकाशित करनेके उद्देश्यसे श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजजीने इस निम्नलिखित पत्रको नित्यलीलामें प्रविष्ट होनेसे एक वर्ष पूर्व लिखा था। इन पत्रोंके आदान–प्रदान दोनों गुरुभ्राताओंके बीचमें विद्यमान अप्राकृत प्रीति और अन्तरङ्गताको प्रकाशित करता है।]

[श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजजीके द्वारा प्रेरित पत्र]

॥श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः॥

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ,
श्रीधाम नवद्वीप, नदीया (प॰ब॰)
ता॰—८/९/२००१

श्रीश्रीवैष्णव–चरणे दण्डवन्नति–पूर्विकेयम्,

पूज्यपाद श्रील महाराज! आपके श्रीचरणोंमें असंख्य दण्डवत् प्रणाम ज्ञापन करता हूँ एवं आपसे कृपापूर्वक इसे ग्रहण करनेकी प्रार्थना करता हूँ। आशा करता हूँ कि श्रीश्रीगुरुपादपद्मकी अहैतुकी कृपासे आप भजन–कुशलपूर्वक होंगे। आप सम्भवतः जयपुरमें प्रचारकर लौट आए होंगे, ऐसा सोचकर ही यह पत्र मथुराके पते पर लिख रहा हूँ। जयपुरमें आपका भागवत् सप्ताह एवं प्रचार सुन्दर रूपसे अनुष्ठित हुआ होगा, ऐसी आशा करता हूँ।

साधन भजनमें अयोग्य एवं अक्षम होनेके कारण मैं कुछ एक सिद्धान्त यथार्थ रूपमें समझनेमें इस समय सक्षम नहीं हूँ। इसलिए उन सिद्धान्तोंको आपके द्वारा जाननेकी इच्छासे यह पत्र लिख रहा हूँ। आपके द्वारा इसके सम्बन्धमें यथार्थ धारणा प्रकाश करनेपर मैं आपके निकट चिर कृतज्ञ रहूँगा एवं धन्य होऊँगा।

(१) बद्ध जीवके देह एवं देही अर्थात् शरीर एवं आत्मामें भेद है, किन्तु साधनसिद्ध या नित्यसिद्ध जीवोंके देह एवं देहीमें भेद है या नहीं, कृपापूर्वक बतावें?

(२) **'मुक्तापि विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते'**—शास्त्रमें ऐसा वर्णन मिलता है। ऐसा कहने पर मुक्त जीवोंको सिद्ध देह प्राप्त होता है या नहीं? 'सिद्ध देह दिया वृन्दावन माझे सेवामृत करो दान'—इस कीर्तन—वाक्यके अनुसार साधनसिद्ध जीवके भी सिद्ध देहका वर्णन मिलता है। इस प्रश्नको भी कृपया स्पष्ट करें?

(३) अणुचैतन्य जीवात्मा परमात्मारूपी वस्तुका अंश है या वस्तुकी शक्तिका अंश है? परमात्मा एवं मुक्त जीवात्मा क्या दोनों ही देह—देहीभेदहीन तत्त्व हैं?

(४) ब्रह्मसंहिताके अनुसार **'अंगानि यस्य सकेलन्द्रियवृत्तिमन्ति'** क्या यह विचार केवल गोविन्दके लिए है या उनके तदेकात्मरूप, लीलावतार, अंशावतार या उनके विभिन्नांशरूप मुक्तजीवात्माके लिए भी लागू होता है? क्या नित्यसिद्ध जीवोंके अङ्गसमूह भगवान जैसे ही शक्तिसम्पन्न होते हैं? क्या वे किसी भी अङ्गका कार्य किसी भी अङ्गसे कर सकते हैं?

मेरा शरीर अस्वस्थ है, उसपर भी मेरी चिन्ताशक्ति एवं स्मृतिशक्ति लुप्तप्राय है; अतः पत्रमें हुई किसी भूल—त्रुटिको निजगुणसे ही क्षमा करेंगे—यही प्रार्थना करता हूँ।

प्रणत सेवकाधम,

त्रिविक्रम

[श्रील गुरुदेवके द्वारा प्रदत्त प्रत्युत्तर]

॥श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः॥

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
मथुरा (उ॰प्र॰)
ता॰—२९/१०/२००१

श्रीश्रीवैष्णवचरणे दण्डवन्नतिपूर्विकेयम्,

प्रपूज्यचरण महाराज! दासाधमकी दण्डवत् प्रणति स्वीकार करनेकी प्रार्थना करता हूँ। आपके द्वारा प्रेरित ८/९/०१ की कृपालिपि प्राप्तकर लिखित विषयसे अवगत हुआ।

जयपुरमें हमारा ९ दिनका प्रचार—कार्यक्रम विशेषरूपसे

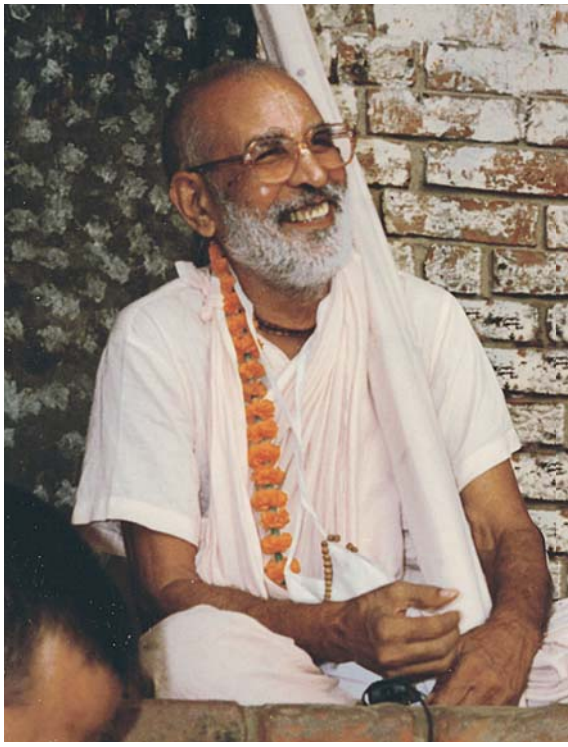

साफल्य मण्डित हुआ। तत्पश्चात् श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें हमारे पुरुषोत्तमदेव श्रीकृष्णके पादपद्ममें हमारा पुरुषोत्तमव्रत सुष्ठुरूपसे सम्पन्न हुआ। संन्यासी—ब्रह्मचारियों सहित देश—विदेशसे लगभग ५५०—६०० भक्त उपस्थित हुए। आशा करता हूँ कि आप नवद्वीपके भक्तों द्वारा इसके सम्बन्धमें अवगत हुए होंगे। **आपको मैं अपने शिक्षागुरुके रूपमें जानता आया हूँ एवं जानूँगा भी।** आप समस्त प्रकारके सिद्धान्तोंमें परिपूर्ण एवं पारङ्गत हैं। तथा आपके हृदयका गूढ़ भाव (अभिप्राय) देवताओंके लिए भी अगम्य है; फिर भी आपने दैन्य प्रकाश करते हुए हमारे सम्मुख कुछ प्रश्न प्रस्तुत किए हैं। मैं सिद्धान्तके विषयमें सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुर पर विशेषरूपसे आस्था रखता हूँ। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने जटिलसे जटिल सिद्धान्तोंको सहज, सरल एवं बोधगम्य भाषामें व्यक्त किया है। अब आपके प्रश्नोंका उत्तर दे रहा हूँ।

(१) साधनसिद्ध और नित्यसिद्ध जीव, जिनको परिकर जीव भी कहा जाता है, उनके लिए देह और देहीका भेद नहीं रह सकता। जिस प्रकार काँस्यको रासायनिक प्रक्रिया द्वारा सोना बनाया जाए अथवा खानसे निकला सोना दोनों एक ही हैं, दोनोंमें कोई भेद नहीं रहता है, उसी

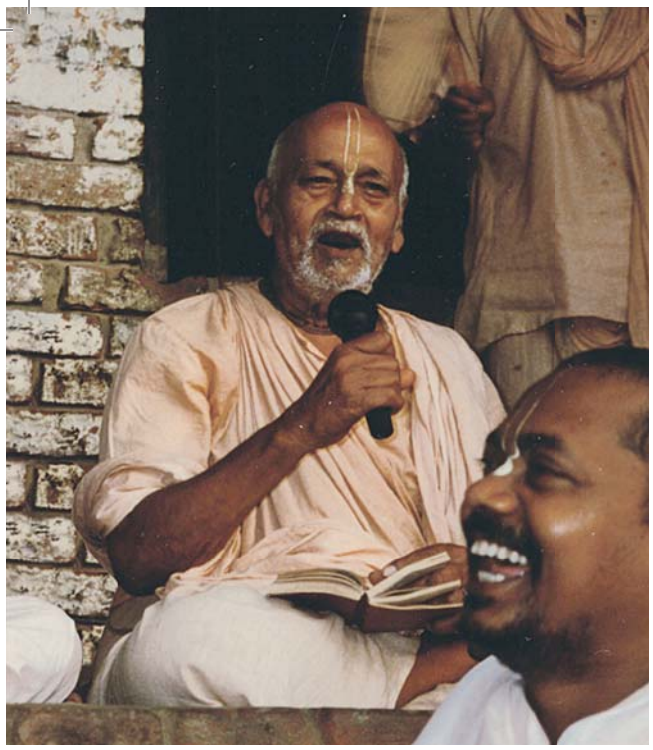

प्रकार परिकरत्व प्राप्त साधनसिद्ध या नित्यसिद्ध जीवोंकी आत्मा, लिंग शरीर और स्थूल शरीर—ऐसा त्रिविध भेद नहीं रहता। उनका केवलमात्र एक शुद्ध चिन्मय शरीर ही रहता है। वे चिन्मय शरीरके द्वारा ही भगवानकी सेवा करते हैं। शास्त्रोंमें कहीं भी परिकर जीवोंके लिंग अथवा स्थूल शरीरका वर्णन नहीं मिलता है।

(२) श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके विचारके अनुसार **'मुक्तापि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते'** वर्णनमें कुछ मायिक भाषाका मल है। भजनके प्रभावसे शुद्धभक्तोंके वर्णनका शुद्धभाव ग्रहण करना चाहिए। अपने भजन प्रभावसे ही भक्तगण इस वर्णनका शुद्धभाव ग्रहण करते हैं। 'सिद्ध देह दिया' इस कीर्तन—वाक्यमें भी इसी प्रकारसे समझना चाहिए। किन्तु, परिकरोंके लिए साधनसिद्ध या नित्यसिद्ध ऐसी भावना नहीं रख सकते। परिकर देहमें भगवत्—सेवामें सम्पूर्ण आत्मनियोग होता है, ऐसा समझना चाहिए।

(३) समस्त अवस्थाओंमें अणुचैतन्य जीवकी सत्ता वस्तु शक्तिके अंश या विभिन्नांश तत्त्वके रूपमें ही सिद्ध हैं। परमात्मा एवं मुक्तजीवात्मा—परिकरगण, दोनों ही देह—देही भेदहीन तत्त्व हैं।

(४) **'अंगानि यस्य सकेलन्द्रियवृत्तिमन्ति'**—यह विचार केवल श्रीगोविन्दके लिए ही नहीं, उनके तदेकात्मरूप, लीलावतार यहाँ तक कि मुक्त परिकर जीवोंके लिए भी सम्भव है। लीलापुष्टिके लिए श्रीकृष्णकी निजस्व योगमायाके प्रभावसे उन परिकरोंका सर्वज्ञत्व, प्रत्येक इन्द्रियके कार्य करनेकी अद्भुत क्षमता आच्छादित रहती है। वे किसी भी इन्द्रियसे अन्य किसी इन्द्रियका कार्य कर सकते हैं। लेकिन श्रीकृष्णकी लीलापुष्टिके लिए योगमायाके प्रभावसे उनका सर्वज्ञत्व एवं समस्त इन्द्रियों द्वारा समस्त इन्द्रियोंका कार्य करनेकी क्षमता आच्छादित रहती है। विशेष—विशेष परिस्थितिमें ही उनकी वैसी क्षमता प्रकाशित होती है। श्रीनारद ऋषि श्रीनन्दबाबा, यशोदा माँ, सखा एवं सखी इत्यादि परिकरोंका भी कोटि—कोटि प्रकोष्ठोंमें या कोटि—कोटि ब्रह्माण्डोंमें उनके कोटि—कोटि विग्रहोंके सम्बन्धमें श्रीबृहत्—भागवतामृतमें वर्णन मिलता है। विशेषकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कृत श्रीशिक्षाष्टक पर सन्मोदन भाष्यका अनुशीलनकर तथा श्रील गुरु महाराजके विचारोंको श्रवणकर, जिसे उन्होंने पूज्यपाद भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज आदि आचार्योंकी सभामें, मथुरामें प्रस्तुत किए थे, जीव तत्त्वके सम्बन्धमें मेरा संशय दूर हो चुका है। आप अनुग्रह पूर्वक 'श्रीशिक्षाष्टक' के प्रथम श्लोकमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कृत 'सन्मोदन भाष्य' अवश्य ही देखें। इस टीकामें **'चेतोदर्पणमार्जनमित्यादिना जीवस्य ——— गोपिकादेहमपि प्रकटयति'** तक पढ़नेसे आपके समस्त संशय दूर हो जाएँगे एवं धारणा स्पष्ट हो जाएगी। मैं इससे अधिक क्या लिखूँ? शेष कुशल।

इति—

आपका सेवकाधम,

श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

[श्रीभागवत—पत्रिका (वर्ष—४५, संख्या—११) में पूर्व प्रकाशित]

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके कतिपय वचनामृत

[श्रीगुरुदेवकी हरिकथासे संग्रहीत]

व्यास–पूजाका तात्पर्य और उद्देश्य

'व्यास' वह व्यक्ति थे जिन्होंने इस संसारमें भगवान्‌के नाम, रूप, गुण और लीलाका वितरण किया। जो भगवान्‌की सेवाके लिए एक व्यास–आसनपर बैठे हैं और उनके गुणोंका प्रचार करते हैं तथा लोगोंको उनके प्रति आकर्षित करते हैं, उन आचार्यको सम्मानित करनेके अनुष्ठानको 'व्यास–पूजा' कहते हैं। व्यास–पूजाका एक और नाम 'गुरु–पूजा' है। भारतमें साधारणतः गुरु–पूजा गुरु–पूर्णिमाके दिन मनायी जाती है। यह दिन व्यासजीका आविर्भाव दिन माना जाता है और उस दिन सभी समप्रदाय अपने गुरुजनोंकी पूजा करते हैं। किन्तु शास्त्रोंके अनुसार, आधुनिक समयके मुख्य आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' ने गुरुकी अपनी निजि आविर्भाव तिथिपर उनकी विशेष पूजाको स्थापित किया। यथार्थ रूपमें गुरु–पूजा तब है जब अपनी आविर्भाव तिथिपर गुरु अपनी सम्पूर्ण गुरु–परम्पराकी पूजा करता है और अपने शिष्योंको भी इसे करनेकी विधिके सम्बन्धमें निर्देश देता है।

श्रीमद्भागवतम् (११/१७/२७) में श्रीकृष्ण कहते हैं–

"आचार्यं मां विजानीयात् नावमन्येत् कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥"

अर्थात् भगवान् उद्धवसे बोले–"हे उद्धव! गुरुदेवको मेरा स्वरूप समझना। गुरुको सामान्य व्यक्ति समझकर उनकी अवज्ञा मत करना। गुरु सर्वदेवमय हैं।"

बहुतसे देवी–देवता हैं और उनमें प्रमुख हैं–ब्रह्मा, विष्णु और महेश। गुरु ब्रह्मा, विष्णु और महेशके स्वरूप हैं। उनकी तुलना ब्रह्मासे हुई है, क्योंकि जिस प्रकार ब्रह्मा इस जगत्‌की सृष्टि करते हैं उसी प्रकार गुरु हमारे हृदयमें भक्तिके बीजको बोकर भक्तिकी रचना करते हैं। विष्णु पालनकर्ता हैं और गुरुदेव वे हैं जो हमारी भक्तिका पालन करते हैं। जब तक हम प्रेमकी स्थितिको प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक वे हमारी भक्तिको शक्ति प्रदान करते हैं। बद्ध होनेके कारण हम यह सोच भी नहीं सकते कि वे केवल एक शिष्यके लिए कितना परिश्रम करते हैं। जिस प्रकार महेश संहारकर्ता हैं, उसी प्रकार गुरु हमारे सभी अनर्थों और अपराधोंका संहार करते हैं। इसलिए गुरुको देवताओंका स्वरूप कहा जाता है।

इस जगत्‌में बहुत जीव हैं। यद्यपि उनमेंसे कुछ सेवोन्मुख हैं, परन्तु अधिकांश बहिर्मुख हैं। उनका आन्तरिक स्वरूप कृष्णके दासका है, किन्तु इसे भूलकर वे भौतिक जगत्‌में विचरण कर रहे हैं। भक्तिके बिना उनका मङ्गल नहीं हो सकता। इसलिए कभी कृष्ण स्वयं इस जगत्‌में अवरोहण करते हैं, कभी पृथक अवतार ग्रहण करते हैं, और कभी अपनी शक्तिको गुरुके रूपमें भेजते हैं। अन्यथा जीवोंके लिए मङ्गल प्राप्त करना असम्भव है। केवल भक्तिके द्वारा ही वे अपना परम सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं। भक्ति इस जगत्‌की वस्तु नहीं है। कृष्णके नित्य परिकरोंमें संवित और ह्लादिनी शक्तिका सार प्रेमभक्तिके रूपमें सदा विद्यमान रहता है। जब तक जीवको वह सार प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक वह यथार्थरूपमें मङ्गलयुक्त नहीं हो सकता। गुरु पारमार्थिक जगत्‌के निवासी हैं और इस जगत्‌में अवरोहण करते हैं। वे अपने साथ गोलोक–व्रजप्रेम लाते हैं और उसे बद्ध जीवोंको प्रदान करते हैं। ऐसा महान् व्यक्ति, जो एक नित्य रागात्मिक भक्त है तथा व्रज–प्रेमयुक्त है और उसे इस जगत्‌में लाता है, उसको शुद्ध–गुरु कहते हैं।

जिस प्रकार गङ्गाकी धारा जलको हिमालयसे महासागरतक ले जाती है, उसी प्रकार हमारी गुरु–परम्परामें एक धारा बह रही है, जो स्वयं कृष्णसे आरम्भ होकर आधुनिक आचार्यों तक आयी है और इस समय पूरे भौतिक जगत्‌को कृष्णप्रेमकी बाढ़में निमज्जित कर रही है। यह गुरुका प्राथमिक कृत्य है। यदि कोई इस प्रेमको देनेका सामर्थ्य नहीं रखता, तो वह यथार्थ रूपमें गुरु नहीं है। कृष्ण–प्रेमको प्रदान करनेका सामर्थ्य एक यथार्थ वैष्णव गुरुका प्राथमिक गुण है।

["श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव तिथि" Sri Prabhandavali (first chapter) से अनुवादित]

मेरे गुरुदेव कहते थे—"हम भारतवासी ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्ववासी श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासके चिरऋणी हैं। उन्होंने वेद अध्ययन करनेवाले जनसाधारणकी सुविधाके लिए वेदके चार विभाग किए। वेदोंके सारभाग वेदान्त या उपनिषदोंके आपात–विरोधी वाक्योंका सामञ्जस्य करते हुए वेदान्तसूत्र या ब्रह्मसूत्रकी रचना की। इसके अतिरिक्त अन्यान्य पुराणों एवं महाभारतकी रचना की और अन्तमें वेदान्त–सूत्रको सरल सहज रूपमें बोधगम्य करानेके लिए स्वयं ही उसके भाष्यस्वरूप अमल महापुराण श्रीमद्भागवतका प्रकाश किया।

भारतके सारे धर्मसम्प्रदाय किसी–न–किसी प्रकारसे अपनेको व्यासानुग सम्प्रदाय मानते हैं। श्रीव्यासदेवके द्वारा रचित ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेसे यह स्पष्टरूपसे झलकता है कि भगवद्भक्ति ही उनके ग्रन्थोंका प्रतिपाद्य विषय है। उन्होंने अपने सुविख्यात ब्रह्मसूत्रके ५५० सूत्रोंमें कहीं भी ज्ञान या मुक्ति शब्दका उल्लेख नहीं किया। अपने ब्रह्मसूत्रके अकृत्रिम भाष्य पारमहंसी संहिता श्रीमद्भागवतमें उन्होंने सर्वत्र ही भक्तिका प्रतिपादन किया है।

श्रीशंकर सम्प्रदायमें श्रीव्यासपूजाका प्रचलन दृष्टिगोचर होनेपर भी उनकी व्यासपूजा हास्यास्पद है। आचार्य शंकरने ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें कृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यासको भ्रान्त बतलाया है। श्रीशंकरने लिखा है कि ब्रह्म आनन्दस्वरूप है, वह कभी भी आनन्दमय नहीं हो सकता। किन्तु श्रीव्यासजीने वेदान्त–सूत्रमें ब्रह्मको "आनन्दमय" कहा है। इस प्रकार आचार्य शंकरने श्रील व्यासदेवके विचारोंका खण्डन किया है। अतः उनकी व्यासपूजा केवल दिखावा मात्र है।

वैष्णव सम्प्रदायमें श्रीव्यासदेवकी यथार्थरूपमें पूजा होती है। श्रीपाद जनार्दन महाराजके द्वारा अनुष्ठित व्यासपूजाका आदर्श प्रत्येक त्रिदण्डि संन्यासीके लिए ग्रहणीय है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद–द्वारा

संग्रहीत तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुर–द्वारा संशोधित एवं परिवर्धित श्रीव्यासपूजा पद्धतिका अवलम्बन न कर केवल अपने चरणोंमें पुष्पाञ्जलि एवं अर्चाञ्जलि ग्रहण करना ही व्यासपूजा नहीं है। आजकल प्रायः सर्वत्र ऐसा ही देखा जा रहा है कि तथाकथित गुरु व्यासपूजाके नामपर अपने चरणोंमें पुष्पाञ्जलि एवं अर्चाञ्जलि ग्रहण करते हैं। अपने शिष्योंके द्वारा अपनी प्रशस्ति और अभिनन्दन श्रवण एवं ग्रहण करते हैं। व्यासपूजाके दिन आचार्य अपने गुरु, गुरुपरम्परा तथा उपास्य इन सबकी पूजा करेंगे। इस पूजा–पद्धतिके अनुसार गुरुपँचक, आचार्यपँचक, व्यासपँचक, सनकादिपँचक, कृष्णपँचक, उपास्यपँचक और पँचतत्त्वकी पूजा करता है–

(१) गुरु–पञ्चक (श्रीगुरु, परमगुरु, परमेष्ठीगुरु, परात्परगुरु, परम्परात्परगुरु)

(२) आचार्य–पञ्चक (श्रीशुकदेव, रामानुज, मध्व, विष्णुस्वामी, निम्बादित्य)

(३) व्यास–पञ्चक (श्रीव्यासदेव, पैल, वैशम्पायन, जैमिनी, सुमन्त)

(४) सनकादि–पञ्चक (श्रीसनक, सनतकुमार, सनातन, सनन्दन, विष्वक्सेन)

(५) कृष्ण–पञ्चक (श्रीकृष्ण, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध)

(६) उपास्य–पञ्चक (श्रीराधा, कृष्ण, गौर, गदाधर, श्रीगुरुदेव)

(७) पञ्च–तत्त्व (श्रीकृष्ण चैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैत आचार्य, गदाधर, श्रीवास)

इस प्रकार श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रचलित व्यासपूजा पद्धतिका अवलम्बन करना ही श्रीगौड़ीय सारस्वत वैष्णवोंका परम कर्त्तव्य है।"

["श्रीगौरवाणी–विनोद–आश्रम, खड़गपुरमें व्यासपूजा"
–"आचार्य केशरी" श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज
(तृतीय भाग) से उद्धृत]

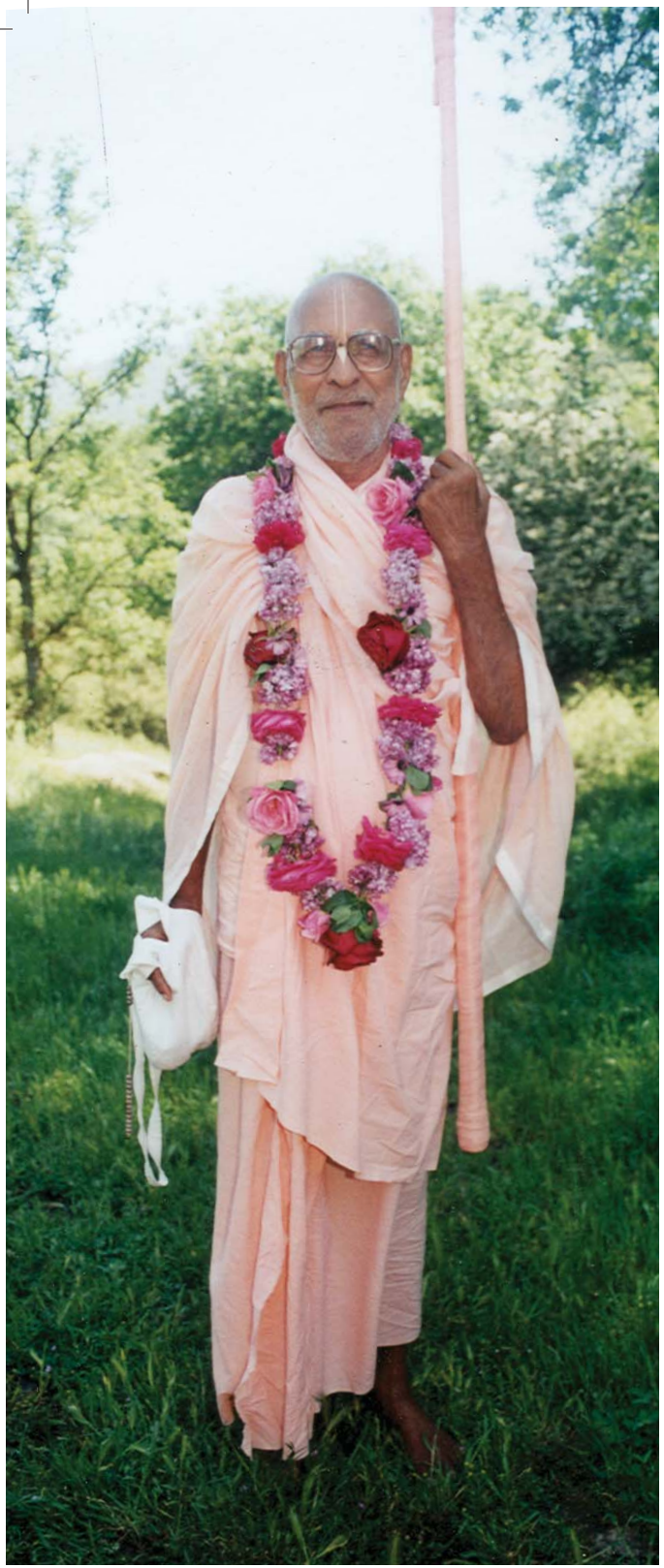

वेदव्यासने बताया कि ब्रह्मगायत्रीके अर्थका सार ॐकारसे आता है। गायत्री स्त्रीलिंग है। गायत्री कौन है? हम सुनते हैं कि वह ब्रह्माकी पत्नी है, किन्तु आपको ज्ञात होना चाहिये कि गायत्री–मंत्रमें क्या बतलाया गया है–भर्गो देवस्य धीमहि।

भर्गका अर्थ है 'शक्ति' अर्थात् ह्लादिनी–शक्ति या महाभाव–स्वरूपा (श्रीमती राधिका)। राधिका कृष्ण–प्रेमकी परम आश्रय हैं। हम सीखते हैं कि गायत्री ब्रह्माकी पत्नी हैं, किन्तु वास्तवमें वह कौन है? वह एक गोपी है। कृष्णने योगमायाको कहा था–"आपको किसी–न–किसी तरह ब्रह्माको यह गोपी देनेकी चेष्टा करनी चाहिये, नहीं तो वह परकीय नहीं हो सकती।"

समस्त गोपियाँ दूसरे गोपोंके साथ विवाहिता हैं और इस तरह परकीय–रस घटित होता है। इसलिए कृष्णने योगमायाको आदेश दिया कि वह गायत्री–देवीके विवाहका भी इन्तजाम करें जिससे कि गायत्री–देवीका कृष्णके प्रति प्रेम ओर उनसे परकीय सम्बन्ध भी हो सके। इस कारणसे गायत्री ब्रह्माको विवाहमें प्रदत्त हुई। वास्तवमें उसका ब्रह्माके प्रति तनिक भी प्रेम नहीं था, अपितु वह केवल कृष्णसे प्रेम करती थी। यह परकीय भाव सर्वश्रेष्ठ है और क्योंकि गायत्रीके पास यह भाव था, इसलिए वह श्रीमति राधिकाकी पाल्य–दासी बनी। हम देखते हैं कि गायत्री समस्त वेदोंका सार है। गायत्री राधिका है, या उनकी पाल्य–दासी है, इसलिए जो गायत्री–मन्त्रकी सेवा करेगा, उसके पास यह भाव आ सकता है।

यह एक विशेष बात है, जो मैंने इससे पहले व्यक्त नहीं की है। [यह प्रसंग पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण पर आधारित है।]

[व्यास–पूजा Alachua, Florida, १ फरवरी २००३]

व्यास क्या है? जो रेखा एक वृत्तके केन्द्रबिन्दुसे निकलते हुए वृत्तके परस्पर विरुद्ध भुजाओंको स्पर्श करती है, उसे व्यास कहते हैं। इसका अर्थ क्या है? कृष्ण सबके केन्द्रबिन्दु हैं। केवल यह पृथ्वी ही नहीं, अपितु कोटि–कोटि अंतरिक्ष–इस

घेरेमें हैं। व्यास कृष्णको स्पर्श कर रहे हैं और भौतिक जगत्के असंख्य कोनों तक जा रहे हैं। व्यास कौन हैं? जो कृष्णकी महिमा सबको प्रचार करता है और सिखाता है—"तुम्हें कृष्णकी सेवा करनी चाहिये, नहीं तो कोई भी तुम्हें जीवन और मृत्युके इस अनन्त बन्धनसे नहीं बचा सकता" तथा जो संसारके एक कोनेसे दूसरे कोने तक सर्वत्र सदा कृष्णकी सेवा करता है, वह व्यास है।

कुछ समय बाद व्यासदेवने वेदोंके चार भाग किये—ऋग् वेद, साम वेद, यजुर् वेद और अथर्व वेद। इसके उपरान्त उन्होंने वेदोंका सार लिखा, जिसे ब्रह्म–सूत्र, शारीरक–सूत्र या वेदान्त–सूत्र कहते हैं। उसके बाद उन्होंने ३६ प्रकारके पुराण लिखे—पुराण, उप–पुराण और शाखा–पुराण। तब सब व्यक्ति—स्त्रियों, शूद्रों [जो हमेशा शोक करते हैं] और जो भौतिक मदोन्मत्तमें उलझे हुए हैं—ऐसे लोगोंके लिए महाभारत लिखा, और उसमें मणि जैसा गीतोपदेश दिया। फिर भी व्यासदेव संतुष्ट नहीं थे।

नारद उनके पास आये और पूछे, "आप इतने परेशान क्यों हैं?"

व्यासदेवने उत्तर दिया—"गुरुदेव, मैं नहीं जानता"।

नारदने तब उन्हें कहा, "तुमने कृष्ण और उनकी वृन्दावन–लीलाकी महिमा नहीं कही है और तुमने यह नहीं बताया है कि गोपियाँ और सभी व्रजवासी उनकी कैसे सेवा करते हैं। तुम्हें उनकी महिमा कहनी चाहिये, और खासकर उनके अनेक भक्तों, उनकी प्रेयसियों और उनकी प्रियतमा श्रीमती राधिकाकी महिमा कहनी चाहिये।

व्यासदेवने तब कृष्ण और उनके परिकरोंकी समस्त लीला समाधिमें देखी और तब श्रीमद्भागवत् लिखी, जिससे वे प्रसन्न हुए। अतः वेद—उपनिषद्, पुराण और भागवतम्का सार है—व्रजप्रेम या गोपीप्रेम और विशेषकर जो श्रीमती राधिका कृष्णको वशीभूत करती हैं और सदा उनको अपने हृदयमें धारण करती हैं, उन राधिकाजीका प्रेम और स्नेह।

एक सद्गुरु यह तत्त्व प्रदान कर सकता है। उनसे यह तत्त्व लिए बिना इन रहस्यमयी तत्त्वोंको समझना असम्भव है। एक गुरु यह सब अपने शिष्यको देता है, जिससे कि वह शिष्य एक दिन प्रसन्न हो सके।

[श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव तिथि, Singapore, ११ फरवरी २००१]

आज (व्यासपूजा) के दिन शिष्य या आचार्य अपने गुरुदेवके श्रीचरणकमलोंमें प्रणाम करता है, जिनसे उसने सब प्रकारका ज्ञान प्राप्त किया है। आपलोगोंको यह जान लेना चाहिए कि केवल तत्त्व–सिद्धान्त ही काफी नहीं है। गोपियाँ जैसे रोयीं, वैसे ही रोनाका भाव कहाँसे आयेगा? श्रीकृष्णप्रेममें मत्त होकर श्रीमती राधिका हमेशा रोती हैं। श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानीके लिए विलाप करते हैं और दुःखित होते हैं, परन्तु श्रीकृष्ण प्रेममें इतने अधिक उन्मत्त नहीं होते, जितनी श्रीराधाजी होती हैं। श्रीकृष्णके साथ तो श्रीमती राधाजीकी अनेक कायव्यूह गोपियाँ नृत्य करती हैं, किन्तु राधिकाके लिए तो केवल एक ही कृष्ण हैं। श्रीव्यासदेव स्वयं श्रीनारायण हैं और उन्होंने इस विषयको प्रकाश किया है।

[व्यास–पूजा Alachua, Florida, १ फरवरी २००३]

हम सब एक ही गौड़िय परिवारमें हैं। हमारे गुरुदेव रघुनाथ दास गोस्वामीकी धारामें श्रीराधा–कृष्णकी सेवा कर रहे हैं। अर्थ और अन्यान्य भौतिक वस्तुएँ उनकी व्यास–पूजामें भेंट करना पर्याप्त नहीं है। एकमात्र उचित भेंट है—कृष्ण–भजनमें आविष्टता। यह यथार्थ पुष्पाञ्जलि है।

[श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी व्यास–पूजा, मथुरा, २२ फरवरी २०००]

व्यास-पूजाके अन्तर्गत ही सम्पूर्ण गुरु-परम्पराकी पूजा

हमारे ब्रह्म-मध्व-गौड़िय सम्प्रदायमें किसी भी आचार्यकी पूजाको गुरु-पूजा या व्यास-पूजा कहते हैं।

हम कृष्णके प्रति भक्ति क्यों करते हैं? हम श्रीगुरुदेवको इतना सम्मान क्यों देते हैं? यदि किसीके सान्निध्यमें हमारा पारमार्थिक विकास होता है, तो हम उस व्यक्तिका सम्मान करते हैं। यदि कोई लाभ नहीं होता है, तो सम्मान नहीं करते। श्रीगुरुदेव सदैव अपने गुरु और गुरु-परमपराके प्रति ऋणी होनेकी अनुभूति करते हैं। गुरु, गुरु-परमपरा, श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीकृष्णके बिना क्या है? कुछ नहीं। दूसरे शब्दोंमें उनके बिना पारमार्थिक उन्नति नहीं हो सकती। श्रीगुरु समझते हैं कि उनका सम्पूर्ण तत्त्व-ज्ञान और भक्ति श्रीगुरुदेव और गुरु-परमपराकी कृपा है। श्रील गुरुदेव एवं गुरु-परम्परा, जो कि श्रील व्यासदेवसे निकली है, स्वतन्त्र नहीं हैं।

स्वयं भगवान् नारायणका प्रकाश होनेके कारण श्रील व्यासदेव समस्त गुरुओंकी जड़ हैं और उन्होंने अपने ग्रन्थों—श्रीमद्भागवत, पुराण और अन्य ग्रन्थोंमें भगवान् कृष्णके प्रति हमारे विशाल ऋणके सम्बन्धमें लिखा है।

अकेला कोई भी व्यक्ति एक यथार्थ गुरु नहीं ढूँढ सकता। अगर आप स्वयं खोज करेंगे तो आप एक नकली गुरुका चयन करेंगे क्योंकि आपको नहीं पता कि यथार्थ गुरुके गुण और आदर्श क्या हैं। आपको व्यासदेवके शब्दों द्वारा परखना होगा—

"तस्माद् गुरुम् प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातम् ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥"

श्रीमद्भागवतम् (११/३/२१)

अर्थात् अतः जो जीवनके परम साध्यके विषयमें जानना चाहता है, उसे एक ऐसे यथार्थ गुरुकी शरण लेनी चाहिये। जो पूर्णरूपसे वैदिकशास्त्रोंका ज्ञाता हो तथा उसे भगवान्की प्रत्यक्ष अनुभूति हो चुकी हो। इस कारणसे वह भौतिक जीवनसे पूर्णतः आसक्तिरहित होगा।

श्रील व्यासदेवने गुरुकी यह परिभाषा दी है और हमारी गुरु-परम्पराने इसे स्वीकार किया है। अगर आप स्वतंत्र रूपसे स्वयं गुरुदेवकी खोज करो, तो मैं सोचता हूँ कि आपमें से अधिकांश एक नकली गुरु, जो कि गिरा हुआ होगा, उसका ही चयन करेंगे। आप आस्ट्रेलियाके कंगारुओंको चुनेंगे—उससे अधिक नहीं। जब आपका संग एक ऊँचे भक्तसे होगा, तब आपके पास परखनेकी शक्ति होगी, उससे पहले नहीं।

[व्यास-पूजा Hilo, Hawaii, २१ जनवरी २००४]

इस विशेष दिनमें मैं अपने गुरुदेव, ब्रह्मा तक समस्त गुरु-परम्परा, श्रीश्रीराधा-कृष्णके सभी परिकरों, श्रीचैतन्य महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभुके सभी परिकरोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे आप सबपर अपनी कृपाकी वर्षा करें।

मैं प्रार्थना करता हूँ कि इस संसारमें जहाँ कहीं भी जो सभी भक्त आज पुष्पाञ्जलि दे रहे हैं, उनपर भी वे कृपा करें। मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे अपनी कृपा उनको भी दें जो आज पुष्पाञ्जलि नहीं दे रहे हैं, परन्तु केवल स्मरण कर रहें हैं। मैं इन सभी भगवान्के परिकरोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे कृपालु होकर आपके समस्त अनर्थोंको ले लें तथा आपके हृदयमें व्रज-प्रेम और व्रज-भक्ति स्थापित करें और आपके जीवनका लक्ष्य आपपर वर्षा करें।

[व्यास-पूजा Hilo, Hawaii, ८ फरवरी २००५]

मेरे गुरुदेव कहते थे, "मेरे जन्मदिनपर मुझे समस्त गुरु-परमपरा, गुरुभाइयों तथा सभी श्रेष्ठ वैष्णवोंको यथायोग्य सम्मान देना चाहिये। जो मेरे पास है और जो मैं प्रचार कर रहा हूँ, वह मुझसे नहीं निकल रहा है। ऐसी बात नहीं है कि मैं बहुत बुद्धिमान हूँ या मैं प्रचार कर रहा हूँ—इसका श्रेय मेरे गुरुदेवको ही जाता है। अपने गुरुदेवकी कृपासे मैं श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीरूप-सनातन, श्रीरूप-रघुनाथ और अन्यान्य गुरु-परमपराके आचार्योंकी कृपाको जानता हूँ।"

[Murwillumbah, Australia, ९ फरवरी २००४]

श्रीगुरुकी कृपा कुछ भी कर सकती है

मैं एक विद्वान व्यक्ति नहीं था। जो भी जानकारी मुझे है, वह मैंने श्रीगुरु और वैष्णवोंकी विशेष कृपासे प्राप्त की है। मैंने अपना सम्पूर्ण हृदय अपने गुरुदेवको दिया और जो कुछ भी मेरे पास था, उसे उनके चरणकमलोंमें अर्पित किया। जब मैं मठमें आया तो मैंने अपने गुरुदेवसे कहा, "मैं अपना हृदय आपको दे रहा हूँ। मेरा जो प्रेम और स्नेह अपनी पत्नी, बच्चों, पिता और अन्य सबके लिए था, उसे मैं आपको दे रहा हूँ। मैं उस प्रेम और स्नेहको लेकर पूर्ण शरणागतिसे आपके चरण–कमलोंमें रख रहा हूँ।"

उन्होंने मेरे शब्दोंको सुना और उन्हें स्वीकार किया। उनकी आँखोंमें अश्रु आ गए और वे राते हुए कहने लगे–"अब तक मुझे किसीने ऐसा नहीं कहा"। इस तरह मुझे उनकी अहैतुकी कृपा प्राप्त हुई। आज केवल उनकी कृपाके कारण ही विश्वभरके व्यक्ति मुझसे सुन रहे हैं। अगर आप अपने गुरुदेवके प्रति शरणागत होते हैं, तो आपको सब कुछ जो कि अपने तथा दूसरोंके जीवनको सार्थक बनानेके लिए चाहिये, वह सब प्राप्त होगा।

[व्यास–पूजा Hilo, Hawaii, ८ फरवरी २००५]

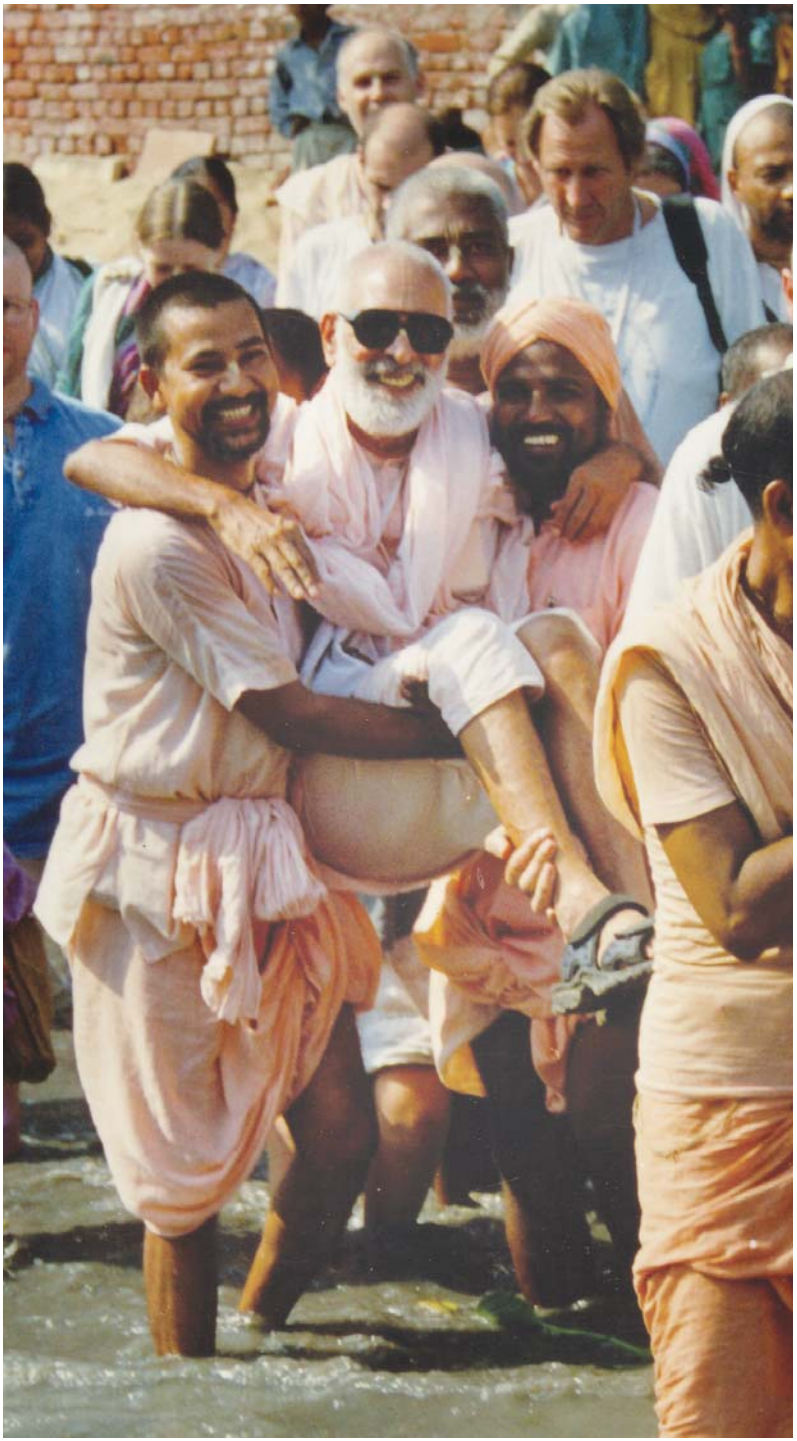

श्रीगुरु कोई साधारण मर्त्य जीव नहीं

ऐसा प्रतीत हो सकता है कि गुरु शौचालय गए हैं या वे भोजन कर रहे हैं, क्योंकि वे भूखे हैं। किन्तु उनको इस तरह नहीं देखना चाहिये जैसे हम एक साधारण व्यक्तिको देखते हैं, नहीं तो आप सदाके लिए ठगे जायेंगे। गुरुमें दृढ़ श्रद्धा रखें, कृष्णसे भी ज्यादा। श्रीमती राधिका और कृष्णने उन्हें अपने दूतके रूपमें भेजा है। हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिये, खासकर व्यास–पूजाके शुभ दिन।

मैं विशेषतः डरता हूँ कि कभी–कभी अहंकार विद्वान् शिष्योंके हृदयमें आता है और वे सोचते हैं, "मैं गुरुदेवसे बढ़कर हूँ"। यह एक बहुत खतरनाक अपराध है और ऐसे अपराधी अन्ततः सदाके लिए भटक जाते हैं। अतः अपनी किसी भी योग्यताके लिए अहंकार न करें। सदैव गुरुदेवके दास रहें। शुद्ध सेवकोंके बहुतसे उदाहरण हैं, जैसे—श्रील ईश्वर पुरिपाद, श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी और श्रील जीव गोस्वामी।

[व्यास–पूजा
Hilo, Hawaii, ८ फरवरी २००५]

हमारी गुरु-परम्पराकी विशेषता

हमारी परम्पराके शुद्ध वैष्णवगण यदि वास्तवमें आपपर कृपा करेंगे, तभी आप रागानुगा भक्तिमें प्रवेश करेंगे। श्रीरूप गोस्वामी (श्रीरूप मञ्जरी) के आनुगत्यमें आप श्रीश्रीराधाकृष्णकी सेवा करेंगे और आपका झुकाव श्रीमती राधिकाके प्रति होगा। यह तत्त्व बहुत रहस्यमय है, इसलिए मैंने आपको यहाँ बुलाया है, जिससे कि आप इसे समझ सकें। हमारे आचार्योंका अनुसरण करते हुए तथा उनकी इच्छासे मैं रागानुगा भक्तिके विषयमें अनेक बातें व्यक्त कर रहा हूँ।

मैं चाहता हूँ कि आप सभीका रागानुगा भक्तिमें प्रवेश हो। किन्तु उसे पानेके लिए आपको भी शरणागत होना होगा।

[व्यास–पूजा Hilo, Hawaii, ८ फरवरी २००५]

अतः **'रतिकेलिसिद्धि'** के लिए गुरु राधिकाकी पुरुष रूपमें सेवा नहीं कर सकते। श्रील स्वामी महाराज और मेरे गुरुदेव, दोनों वहाँ गोपियोंके रूपमें सेवा करते हैं। मेरे गुरुदेव विनोद मञ्जरी, श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर नयन मञ्जरी, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कमल मञ्जरी, श्रील जीव गोस्वामी विलास मञ्जरी, श्रील रूप गोस्वामी रूप मञ्जरी और श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी रति मञ्जरी हैं। ये मञ्जरियाँ राधा–कृष्ण युगलकी सेवा कर सकती हैं।

मैं अपने गुरुदेवको उसी रूपमें [मञ्जरी रूपमें] प्रणाम् करता हूँ। वे चन्द्रावलीइत्यादिविपक्षागोपियोंकोठगते हैं तथा वे [किसी गूढ़ लीला–रहस्यके कारण] कृष्ण तकको भी ठगते हैं। ऐसा करके वे श्रीकृष्णको उनकी प्रियतमा राधिकाकी सेवामें नियुक्त करते हैं। श्रीचैतन्य चरितामृतमें प्रकट रूपसे बताया गया है कि श्रीमती राधिका कृष्णकी गुरु हैं। अतः उनके चरणकमलोंमें आश्रय क्यों न लें, जो कि कृष्णकी गुरु हैं? हमारे गुरु गोलोक वृन्दावनमें राधिकाकी सेवा कर रहे हैं।

श्रीगुरुकी कृष्णलीलामें भूमिका

'निकुञ्जयूनो रतिकेलिसिद्धेः' का क्या अर्थ है? वे गुरु क्या कर रहे हैं?

गुरुको ऐसा होना ही चाहिए–'निकुञ्जयूनो रतिकेलिसिद्धेः'। वे राधा और कृष्णकी सेवा कर रहे हों, विषेशकर श्रीराधिकाजीकी। गोपियाँ उनके मिलनके लिए अनेकानेक व्यवस्था करती हैं। **'या यालिभिः युक्तिरपेक्षणीया'**। वह जानती हैं कि कैसे अपने पिता, माता और पतियोंको धोखा देना है, जिससे कि राधाकृष्ण युगलका सार्थक मिलन हो सके और वे उनकी सेवा कर सकें। एक गुरु इन सब क्रियाओंमें अति निपुण होता है।

हम अपने गायत्री–मन्त्रमें देखते हैं: **'कृष्णानन्दाय धीमहि।'** यह संकेत करता है–दोनों 'कृष्ण' और 'कृष्णा' को। कोई भी पुरुष कृष्णकी सेवा कर सकता है, परन्तु कोई भी पुरुष कृष्णाकी सेवा नहीं कर सकता। 'कृष्णा' राधिका हैं।

वास्तवमें गुरु वह है, जो श्रीमती राधिकाकी सेवा कर सकता है। यदि एक गुरुने अपनी इन्द्रियोंपर नियन्त्रण कर लिया है, किन्तु वह प्रत्यक्ष रूपसे श्रीमती राधिकाकी सवा नहीं करता है, तो वह आंशिक गुरु है।

यदि गुरु रूप मञ्जरी और रति मञ्जरीके जैसा नहीं है तथा वह उनकी सेवा नहीं कर रहा, तो वह अंशिकरूपसे गुरु हो सकता है, किन्तु पूर्ण रूपसे नहीं। गुरुका सबसे

उन्नत गुण है कि वह राधिकाका दास है। इस प्रकार श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर लिख रहे हैं—'वन्दे गुरोः श्री चरणारविन्दम्' अर्थात् मैं अपने गुरुदेव तथा श्रीरूप गोस्वामीकी धारामें सभी गुरुजनोंके प्रति नतमस्तक होता हूँ। ऐसा गुरु न केवल नित्यानन्द प्रभु और बलदेव प्रभुका प्रकाश है, अपितु वह राधिकाजीका भी प्रकाश है। ऐसा गुरु सबसे उन्नत होता है। यहाँ तक कि बलदेव प्रभु अनङ्ग मञ्जरीके रूपमें श्रीमती राधिकाके चरणकमलोंका आश्रय लेते हैं। कितने सुन्दर और यशस्वी हैं वे।

[व्यास–पूजा Murwillumbah, Australia,
१२ फरवरी २००२]

यह आवश्यक है कि हमारे सम्प्रदायके लिए श्रील रूप गोस्वामीका विशेष अवदान और श्रीचैतन्य महाप्रभुका इस जगत्में आविर्भावके कारणको हम समझें। सारमें यही कहना होगा कि वह हमारे जीवनके परम और सबसे प्रमुख साध्यका विवरण देना ही था—जो कि श्रील रूप गोस्वामीके चरणकमलोंमें धूलका एक कण बनना है, श्रीरूप मञ्जरीके आनुगत्यमें श्रीमती राधिकाकी पाल्य–दासी बनना है। यही हमारे पूर्व गुरुवर्गकी प्रिय आकांक्षा हैं।

[श्रीगौर–पूर्णिमाका अधिवास दिवस
श्रीकेशवजी गौड़िय मठ, मथुरा, १६ जुलाई २००८]

निष्कपट व्यक्तिको ही सद्गुरुकी प्राप्ति

आप जिस किसी भी स्थितिमें हों, शुद्ध वैष्णवोंके संगमें रहनेका प्रयास कीजिए। यदि आप हृदयसे प्रार्थना करेंगे, तो श्रीकृष्ण इसकी व्यवस्था करेंगे। वे आपके गुरुदेवको आपके द्वारपर भेज देंगे। आप गुरुकी खोज नहीं कर सकते। आपको बिल्कुल नहीं पता कि उनकी योग्यताको कैसे पहचानें। कोटि–कोटि जन्मोंमें आप इसे स्वयं नहीं जान सकते, किन्तु कृष्ण कृपापूर्वक एक योग्य गुरुको भेजेंगे यदि आप निष्कपट रूपसे यही चाहते हैं।

[Kualalumpur, Malaysia, १५ फरवरी २००४]

गुरु–निष्ठा–भक्तिकी रीढ़ है

जिसके पास गुरु–निष्ठा है, उसके लक्षण क्या हैं? वह गुरुसे सम्बन्धित एक कुत्तेका भी यथायोग्य सम्मान करेगा। यदि वह अपने गुरुसे सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्तिको, चाहे वे दीक्षित हों या नहीं, यथायोग्य सम्मान नहीं देता, यदि उनके प्रति वह आदर और सम्मान नहीं रखता, तब उसका अपने गुरुके प्रति सम्मान वास्तवमें एक दिखावा है। उसके पास वास्तविक गुरु–निष्ठा नहीं है।

गुरु–निष्ठाका लक्षण है—हमेशा श्रेष्ठ व्यक्तियोंको विशेषकर गुरु–भाईयोंको सम्मान देना। आजकल मैं देखता हूँ कि गुरुभाई आपसमें कलह करते हैं। वे मिलजुलकर नहीं रहना चाहते, यह उचित नहीं है, सबको मिलकर गुरुकी महिमाका गान करना चाहिए।

[Murwillumbah, Australia, ९ फरवरी २००४]

यदि किसीकी श्रीमती राधिकाके प्रति अनन्य–भक्ति भी है, किन्तु गुरु–निष्ठा नहीं है, तो उसकी भक्ति शून्य है। हमें गुरुसेवाके लिए अपने जीवनको हथेलीपर लेकर चलना चाहिये। दूसरे शब्दोंमें शिष्यको गुरुदेवके लिए हर सेवा, चाहे वह खतरनाक भी हो, करनी चाहिये। उसे गुरु–सेवाके लिए सब प्रकारके भौतिक सम्बन्ध, स्पृहा और कार्य त्यागने चाहिये।

[श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी व्यास–पूजा,
श्रीकेशवजी गौड़िय मठ, मथुरा,
२२ फरवरी २०००]

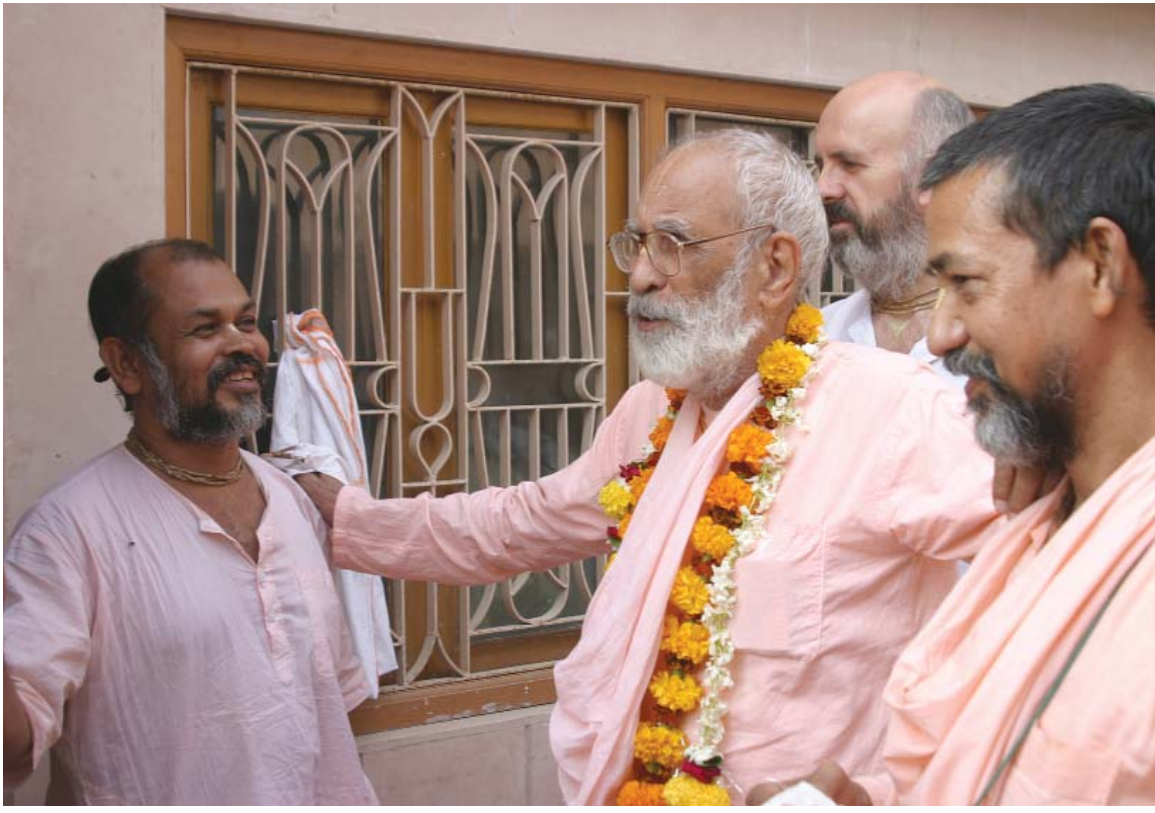

श्रीगुरुकी महिमा और कृपाका स्मरण

यदि हम अपने गुरुको न केवल बाह्यरूपसे, अपितु आन्तरिक रूपसे भी प्रसन्न कर सकें, तभी समझना होगा कि व्यास–पूजा वास्तव रूपमें मनायी गयी है। हमें उन आन्तरिक मार्गोंको, जिनसे गुरुदेव अपने गुरुदेवको प्रसन्न करते हैं, समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये ।

'अन्याभिलाषिताशून्यम्' श्लोकको पूर्णतः अपने गुरुदेवके चरणकमलोंमें लगाइये। अब मैं अपने गुरुदेवकी कुछ महिमाको समझ रहा हूँ और उनके प्रति अपने हृदयके भावोंको व्यक्त करनेमें अक्षम हूँ। वे करुणाके अगाध सागर थे। उन्होंने मुझे मलके कुएँसे निकाला और वे मुझे रसके सागर—भक्तिरसामृतसिन्धु और श्रीउज्ज्वल नीलमणि—में रखना चाहते थे। उनकी विशेष कृपासे मैंने इन ग्रन्थोंमें प्रतिपादित प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभावसे लेकर मादनाख्य तक सम्बन्धित तत्त्वोंकी महिमाको कुछ स्पर्श किया। मैंने कुछ समझा, किन्तु यह किसकी महिमा है? मैं कोई विद्वान नहीं था, मैं अति तुच्छ था। मुझे ज्ञात है कि मेरी कोई भी योग्यता नहीं थी; मैं पूर्णतः अज्ञ था। तथापि गुरुदेवके चरणकमलोंको स्पर्श करनेसे तथा उनकी हरिकथा सुननेसे मैंने सब प्रकारका ज्ञान उनसे प्राप्त किया, जिसे मैं विश्वमें दे रहा हूँ। वास्तवमें मैं नहीं दे रहा हूँ, मेरे गुरुवर्ग मुझे प्ररित कर रहे हैं और सब–कुछ उनकी कृपासे घटित हो रहा है।

जब मैं इस प्रकार अपने गुरुदेवकी कृपाका स्मरण करता हूँ, तब मैं अभिभूत हो जाता हूँ। उनकी कृपा कितनी महिमामयी है! यदि कोई अपने गुरुदेवकी वास्तविक महिमाका स्पर्श नहीं कर पाता और उनकी पूर्णतः सेवा नहीं कर पाता है, तो क्या वह उन्हें कभी प्रसन्न कर सकेगा?

गुरुदेव कृष्णके समान सर्वभूत–स्थितम् (सबके हृदयमें स्थित) हैं। कृष्ण सर्वत्र विद्यमान हैं और गुरुदेव

भी। इसलिए आप उनसे कुछ भी नहीं छिपा सकते। आप बहुत वस्तुओंको छिपाना चाहते हैं, जैसे अपनी कामुकता और भौतिक स्पृहाएँ, किन्तु गुरुदेव कृष्णके निकट होनेके कारण सर्वज्ञ हैं, अतः आप उन्हें नहीं ठग सकते। यदि आप उन्हें ठगनेका प्रयास करेंगे, तो आप केवल स्वयंको ही ठगेंगे। इसलिए उन्हें ठगनेकी कोशिश न करें। अपने हृदयको गुरुदेवके चरणकमलोंमें अर्पित करें तब आपको ज्ञान होगा कि कैसे उनको प्रसन्न करना है।

[व्यास–पूजा Alachua, Florida, १ फरवरी २००३]

हमें श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंमें प्रार्थना करनी चाहिये और गुरुदेवको स्मरण करना चाहिये। हम प्रार्थना करते हैं कि वे हमें अपनी कृपाकी एक बूँद प्रदान करें, जिससे हम तृणसे भी अधिक दीन बन सकें। हम उस दीनताको स्वयं प्राप्त करनेकी चेष्टा कर सकते हैं, किन्तु श्रीगुरुकी कृपाके बिना हमारी चेष्टाएँ विनाशवान और विक्षुब्ध हो जायेंगी। अमानिना मानदेन बननेके लिए अर्थात् दूसरोंको पूर्ण सम्मान देने तथा आत्म–सम्मानकी स्पृहासे मुक्तिकी शक्ति प्राप्त करनेके लिए हमें श्रीगुरुदेवके लिए अश्रु बहाने होंगे, जिससे कि हमें उनकी कृपा प्राप्त हो।

[श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी व्यास–पूजा, श्रीकेशवजी गौड़िय मठ, मथुरा, २२ फरवरी २०००]

हमें सोचना चाहिये कि हमारे गुरु इतने शक्तिशाली हैं कि वे हमारे हृदयमें प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूपसे प्रवेश कर सकते हैं और हमें बचा सकते हैं। श्रीगुरु किसी–न–किसी तरह–प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष–रूपमें, आयेंगे और हमारी मदद करेंगे। यदि शिष्योंकी उनके प्रति ऐसी श्रद्धा है, तो वे शिष्य वास्तवमें शिष्य हैं, अन्यथा नहीं।

[Moscow, Russia, ३० जुलाई २०००]

मैंने आपको बहुत उन्नत साधुसङ्ग दिया है। यदि आप इन सब सुविधाओंको, जो आपको दी गई हैं, तथा अपनी अनुकूल परिस्थितियोंका लाभ नहीं उठाते हैं, तो आप जन्म और मृत्युके अन्तहीन चक्रमें ढकेल दिये

जायेंगे। यदि आपके पास ये सब सुविधाएँ हैं, परन्तु आप मात्सर्ययुक्त, कलहप्रिय और छिद्रान्वेषी हैं, आप यह नहीं देखते कि आप स्वयं क्या गलत कर रहे हैं, तो आप पारमार्थिक आत्महत्या कर रहे हैं। इस प्रकार आप अपनी आत्माके ही नहीं, दूसरोंकी आत्माके भी हत्यारे होंगे।

[Badger, California, १७ जून २००५]

जिस प्रकार सबके हृदयमें सर्वज्ञ परमात्मा उपस्थित हैं, उसी प्रकार गुरुका विशेष गुण है कि वे आपके हृदयको पूर्णतः जानते हैं। वे हमारी आत्माके स्वाभाविक भाव—भगवान्‌से हमारे नित्य सम्बन्धको जानते हैं तथा तदनुसार भगवान्‌से हमें जोड़ते हैं। तब श्रवण, कीर्त्तन और स्मरणरूपी जल प्रदानकर वे उस सम्बन्धकी पुष्टि करते हैं तथा जो भी उस पुष्टिमें अवरोधक है, उसे अपनी वाणीरूपी कुल्हाड़ीसे काटते हैं। वे यह सब इतनी निपुणतासे करते हैं कि साधकको पता नहीं चलता, किन्तु उनका आवश्यक कार्य पूर्ण हो जाता है।

यही तो यथार्थ गुरु और वास्तविक वैष्णव करते हैं। उनका मांस और चमड़ेका शरीर नहीं हैं, जो परिवर्तनशील होगा और किसी भी क्षण मृत्युको प्राप्त होगा। वे कृष्णके सबसे कृपामय अवतार श्रीचैतन्य महाप्रभुके नित्य परिकर हैं, जो इस कलयुगके पतित जीवोंका कल्याण करनेके लिए आये हैं। गुरु और वैष्णव श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलके अंतरंग परिकरोंमें–से हैं। श्रीभगवान् मायाबद्ध जीवोंके प्रति प्रेममयी कृपा करनेके लिए वैष्णवोंके रूपमें अपने परिकरोंको भेजते हैं।

[श्रीदामोदराष्टकम्, श्लोक ५]

गुरु उस तरह हैं। यदि आप उनसे प्रार्थना करेंगे, तो केवल उनकी प्रेरणाके द्वारा नयी अनुभूति आपके हृदयमें प्रवेश करेगी। यह मत सोचिये कि वे मरणशील हैं। वे कृष्णकी तरह हैं और कृष्णकी तरह ही उनकी कृपा भी अहैतुकी है। अतः उनसे प्रार्थना करें और वे आपको प्रेरणा देंगे।

[Murwillumbah, Australia, २८ अप्रैल २००५]

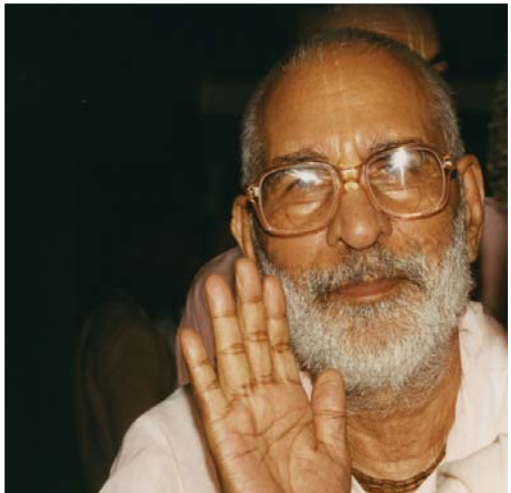

आदर्श शिष्यका कर्तव्य

एक आदर्श शिष्यका कर्तव्य क्या है? उसे गुरुदेवके साथ केवल रहना ही नहीं चाहिये, अपितु उसे गुरुदेवकी इच्छानुसार अपने तन, मन ओर वाणीसे उनकी सेवाकी चेष्टामें अपनी सम्पूर्ण शक्ति देनेकी कोशिश करनी चाहिये। सेवाके प्रति उदासीन होकर केवल अपने सुखकी आशासे उसे केवल शारीरिक रूपसे अपने गुरुदेवके समीप नहीं रहना चाहिये। ऐसा शिष्य शिष्य नहीं है, अपितु उसके विपरीत है। एक यथार्थ शिष्य अपने पूर्ण हृदय ओर मनसे हमेशा स्पृहा करता है कि गुरुदेवकी और अच्छी सेवा कर सकूँ।

[श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी तिरोभाव तिथि, कार्तिक, २०००]

विरह–विशेषांक

(संख्या–१)

महाभागवतोंके प्रकाशित

श्रील माधवेन्द्रपुरीपाद

प्रश्न—महाभागवतकी देहमें किसी प्रकारकी व्याधिका लक्षण प्रकाशित होता है या नहीं? तथा क्या वह व्याधि साधारण जीवोंकी व्याधिके समान होती है? अनेक बार साधु—महात्माओंको भी शारीरिक तापोंसे तप्ते हुए देखा जाता है, यह क्या साधारण जीवोंकी देहमें उत्पन्न आसक्तिकी भाँति है?

उत्तर—महाभागवतगण कर्मफल बाध्य साधारण जीव नहीं हैं। वे भुवनमङ्गलके लिए इस जगत्में विचरण और अवस्थान करते हैं। महाभागवतोंके द्वारा अस्वस्थ होनेका जो अभिनय—प्रदर्शन है, वह त्रितापरूपी दुःख—भोगके अन्तर्गत नहीं है।

महाभागवतजन अत्यन्त विमुख और अपराधी व्यक्तियोंकी वञ्चना कर विप्रलम्भमय भजनके आदर्शको प्रकाशित करते हैं तथा सेवोन्मुख व्यक्तियोंको सेवा—सुयोगका दान और जागतिक क्लेशके बीचमें भी हरिसेवा करनेकी तीव्र चेष्टा और उत्साह प्रदर्शनकी शिक्षाके प्रत्यक्ष आदर्शका प्रचार करते हैं।

जिस प्रकार प्रेमकल्पतरुके मूलस्वरूप नित्यसिद्ध भगवत्पार्षद महाभागवतकुल—शिरोमणि श्रीमन्माधवेन्द्रपुरीपादके अस्वस्थ लीला—अभिनयमें

द्वारा अस्वस्थ लीलाको करनेका यथार्थ तात्पर्य

[गौड़ीय (वर्ष-१२, संख्या-४५) से संग्रहीत एवं अनुवादित]

श्रीईश्वरपुरीपादकी सेवावृत्ति ही सम्प्रकाशित हुई थी, किन्तु गुरु और भगवान्‌के चरणोंमें अपराध करनेका आदर्श प्रदर्शित करनेवाले श्रीरामचन्द्रपुरीकी उस अस्वस्थ लीलामें विपरीत बुद्धिका उदय हुआ था। रामचन्द्रपुरीने श्रील माधवेन्द्रपुरीके विप्रलम्भ विलाप और क्रन्दनको सुनकर विचार किया था—"ब्रह्मविद् गुरुदेव क्यों क्रन्दन करेंगे? प्रतीत होता है कि रोगकी यन्त्रणा अथवा देहमें आसक्त साधारण जीवकी भाँति क्रन्दन कर रहे हैं।" जैसे श्रीचैतन्यचरितामृतम् अन्त्य लीला (८/२१) में कहा गया है—

"तुमि—पूर्णब्रह्मानन्द, करह स्मरण।
ब्रह्मविद् हइया केन करह रोदन?"

अर्थात् श्रीरामचन्द्रपुरीने कहा—यदि आप पूर्ण ब्रह्मानन्दमें प्रतिष्ठित हैं, तो उस ब्रह्मका ही स्मरण कीजिए/करना चाहिए। किन्तु ऐसे ब्रह्मविद् होकर आप क्यों रो रहे हैं?

रामचन्द्रपुरीने स्वयं भगवान् श्रीमन्महाप्रभुको भी प्राकृत जीवकी भाँति जिह्वालम्पट समझा था, किन्तु श्रील ईश्वरपुरीपादकी वैसी बुद्धि नहीं हुई थी—यही श्रील माधवेन्द्रपुरीपादके कपट शिष्य रामचन्द्रपुरीसे उनके वास्तविक शिष्य श्रील ईश्वरपुरीपादका वैशिष्ट्य है।

"ईश्वरपुरी करे श्रीपादसेवन।
स्वहस्ते करेन मलमूत्रादि मार्जन॥

निरन्तर कृष्णनाम करये स्मरण।
कृष्णनाम, कृष्णलीला शुनाय अनुक्षण॥

तुष्ट हञा पुरी ताँरे कैला आलिङ्गन।
वर दिला—'कृष्णे तोमार हउक प्रेमधन'॥

सेइ हइते ईश्वरपुरी—'प्रेमेर सागर'।
रामचन्द्रपुरी हैल सर्वनिन्दाकर॥

महदनुग्रह निग्रहेर 'साक्षी' दुइजने।
एइ दुइ द्वारे शिखाइला जगजने॥"

(श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य ८/२६-३०)

अर्थात् श्रील ईश्वरपुरीपाद श्रील माधवेन्द्रपुरीपादकी इस प्रकार सेवा करते थे—अपने हाथोंसे उनके मल-मूत्र आदिका मार्जन/साफ करते थे, स्वयं निरन्तर श्रीकृष्णनामका स्मरण करते थे तथा अपने गुरुदेवको [उनके प्रिय] श्रीकृष्णनाम और कृष्णलीलाको अनुक्षण सुनाते थे। इन विविध प्रकारकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर श्रील माधवेन्द्रपुरीपादने उन्हें आलिङ्गन किया और वर देते हुए कहा—"श्रीकृष्णके प्रति तुम्हें प्रेम

रूपी धनकी प्राप्ति हो।" तबसे श्रील ईश्वरपुरीपाद 'प्रेमके सागर' और रामचन्द्रपुरी सबकी निन्दा करनेवाले बन गये। महत्व्यक्तिके अनुग्रह और निग्रहके 'साक्षी' ये दोनों हैं और इन दोनोंके द्वारा श्रील माधवेन्द्रपुरीपादने जगत्–जीवोंको शिक्षा प्रदान की है।

श्रीलईश्वरपुरीपादनेश्रीगुरुपादपद्मकीशिक्षाकाअनुसरण कर यही जाना था कि महाभागवतजन जो अस्वस्थ होनेका अभिनय प्रदर्शित करते हैं, वह कर्मफल बाध्य बद्धजीवोंके कर्मफलका भोग अथवा देहमें आबद्ध होकर भगवत्सेवासे विच्युति नहीं है। पूर्णरूपसे भगवदनुशीलन करते हुए भी वे इस प्रकार विचार करते हैं—"हम भगवत्सेवा नहीं कर पाये।" जैसे श्रीचैतन्यचरितामृतम् (अन्त्य ८/१९) में कहा गया है—"मथुरा ना पाइनु बलि' करेन क्रन्दन।" अर्थात् श्रील माधवेन्द्रपुरीपाद यह कहकर क्रन्दन करते थे कि मैं मथुरा–मण्डल प्राप्त नहीं कर सका। श्रीकृष्णके पूर्णतम इन्द्रिय–तर्पणके उद्देश्यसे उनकी जो ऐसी उत्कट और तीव्र लालसा है, वही भजनकी पराकाष्ठा अथवा विप्रलम्भ है। इसीलिए श्रीचैतन्यलीलाके व्यास श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने कहा है—

श्रीमन्महाप्रभुके ज्वर–रोगका अभिनय, श्रील सनातन गोस्वामी प्रभुके श्रीअङ्गोंमें कण्डुरस रोगका अभिनय, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभुका वृद्धावस्थासे आतुर होनेके अभिनय आदिको आध्यक्षिक ज्ञान (emperical knowledge) संग्रह करनेमें प्रवृत्त जो समस्त व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञानकी वञ्चनामें ठोकर खाते हुए उसे कर्मफलसे बाधित जीवोंके प्रारब्ध भोगके समान समझते हैं, वे दुर्भागे और वञ्चित हैं।

"जत देख वैष्णवेर व्यवहार–दुःख।
निश्चय जानिह–सेई परानन्द सुख॥
विषय–मदान्ध सब किछुइ ना जाने।
विद्याकुल–धन–मदे वैष्णव ना चिने॥"

(श्रीचैतन्यभागवत मध्य ९/२४०–२४१)

अर्थात् वैष्णवोंके जो व्यवहारिक दुःख दीखते हैं, वे निश्चित रूपमें उनके लिए परमानन्द सुख स्वरूप हैं। विषय मदमें अन्ध व्यक्ति इन अप्राकृत विषयोंके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते हैं। विद्या, कुल और धनके अहङ्कारमें मत्त रहनेके कारण वे वैष्णवोंको पहचान नहीं सकते।

श्रीमन्महाप्रभुके ज्वर–रोगका अभिनय, श्रील सनातन गोस्वामी प्रभुके श्रीअङ्गोंमें कण्डुरस रोगका अभिनय (श्रीचै॰ अन्त्य ४/५), श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभुका वृद्धावस्थासे आतुर होनेके अभिनय आदिको आध्यक्षिक ज्ञान (emperical knowledge) संग्रह करनेमें प्रवृत्त जो समस्त व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञानकी वञ्चनामें ठोकर खाते हुए उसे कर्मफलसे बाधित जीवोंके प्रारब्ध भोगके समान समझते हैं, वे दुर्भागे और वञ्चित हैं। जीव रोग और शोकके बीचमें जीवनकी अनित्यताकी उपलब्धि कर जिससे भगवत्सेवामें अधिक परिमाणमें तीव्रभावसे उत्साहित और प्रवृत्त हो सके, इसीलिए महापुरुषगण इस प्रकार अभिनय किया करते हैं। भगवान्के निजजन यदि नीचकुलमें और विभिन्न विपद्–आपद्, क्लेश–सङ्कट, रोग–शोकके बीचमें अवस्थित होनेकी लीला दिखलाकर भी हरिसेवाके लिए तीव्र चेष्टा प्रदर्शित नहीं करते, तब इस त्रितापके कारागारमें पतित कैदी स्वरूप विमुख जीवसमूह किसी भी प्रकारसे अपने मङ्गलके प्रति उन्मुख नहीं होते।

श्रीमद्भागवतमें उद्धव–गीतामें श्रीभगवान्ने कहा है—

"समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभि–
र्गुणो भवेन्मत्सुविवित्तधाम्नः।
विक्षिप्यमानैरुत किं नु दूषणं
घनेरुपेतैर्विगतैः रवेः किम्॥"

(श्रीमद्भा॰ ११/२८/२५)

अर्थात् मेरा स्वरूप जिनके निकट सुव्यक्त हुआ है,

ऐसे मुक्त व्यक्तिकी समस्त इन्द्रियाँ समाहित हो या फिर विक्षिप्त ही क्यों न हों, उसमें उनका गुण और दोष क्या होगा? जिस प्रकार मेघ उपस्थित हो अथवा विगत ही क्यों न हों, उससे सूर्यका कुछ नहीं बिगड़ता। उसी प्रकार मुक्त महाभागवतोंकी समस्त इन्द्रियाँ बाह्य दृष्टिमें विक्षिप्त प्रतीत होनेपर भी उसके द्वारा वे अभिभूत नहीं होते। अज्ञानी सूर्यको मेघ द्वारा आवृतप्राय देखकर यह समझता है कि सूर्य मेघसे आच्छन्न हुआ है, किन्तु वास्तवमें वैसा नहीं है। उनके नेत्र ही मेघके द्वारा आवृत है। स्वप्रकाश सूर्य निरन्तर ही निर्मल है। मुक्तपुरुषोंकी इन्द्रियाँ विक्षिप्त नहीं होती, हम ही विक्षिप्त–इन्द्रियोंसे युक्त होकर अनुक्षण हरिसेवा–परायण मुक्तपुरुषोंको रोग–शोकादिसे आच्छन्न और क्लिष्ट/दुःखित समझ बैठते हैं।

पुनः यदि हम दुर्बुद्धिवशतः इस प्रकार विचार करें कि जब महाभागवत वास्तवमें रोग–शोक आदिके द्वारा क्लिष्ट/दुःखित नहीं हैं, तब हम उनकी सेवा–शुश्रूषा नहीं करेंगे, क्योंकि क्लिष्ट/दुःखित और आर्त्त जनोंके लिए ही सेवाकी आवश्यकता होती है। जो वास्तवमें क्लिष्ट/दुःखित नहीं हैं, फिर उनकी सेवा करनेकी क्या आवश्यकता है? इस प्रकारके विचारसे प्रणोदित/अनुप्राणित होनेपर हम राचन्द्रपुरीके दूसरे स्वरूप हो जायेंगे। श्रील ईश्वरपुरीपादने अपने गुरुदेवको रोग–शोकादिमें अनासक्त विप्रलम्भ भजनमें तत्परके रूपमें जानते हुए भी अपने हाथोंसे अपने श्रीगुरुदेवके मल–मूत्रादिका मार्जन किया था, इसका कारण है कि श्रीमद् ईश्वरपुरीने लोक–शिक्षाके लिए यह दिखलाया है कि श्रीगुरुदेव रोगका अभिनय कर शिष्यको उस अवस्था में जो सेवाका सुयोग प्रदान करते हैं, उस सुयोगको वरण नहीं करनेसे शिष्यके लिए सर्वनिरपेक्ष महाभागवतोंकी सेवा करनेका और कोई सुयोग नहीं है। देहासक्त जीवोंके लिए श्रीअर्चावतार पूर्णकाम होकर भी सापेक्ष जैसे होते हैं, सर्वज्ञ होकर भी अज्ञ जैसे होते हैं, सर्वशक्ति समन्वित होकर भी शक्तिरहित जैसे होते हैं, रक्षक होकर भी रक्षाके पात्र जैसे होते हैं, स्वयं स्वामी होकर भी भक्तोंकी दासता जैसे रूपका प्रदर्शन करते हैं। वैसा रूप प्रदर्शन नहीं करनेसे देहासक्त जीवोंके लिये सेवानुष्ठानका सुयोग उपस्थित नहीं होता। निष्किञ्चन महाभागवतगण समस्त जागतिक विषयोंकी अपेक्षासे रहित होकर भी, त्रिगुणके समस्त विक्रमोंके बन्धनसे परममुक्त होकर भी सेवोन्मुख जीवोंको सेवानुशीलनका सुयोग प्रदान करनेके लिए इस प्रकार रोगी जैसा, अपेक्षायुक्त होने जैसा रूप प्रदर्शन किया करते हैं, यही उनकी जगतके प्रति करुणाका निदर्शन है। जगतके बद्धजीव जिस प्रकार अनर्थग्रस्त–आर्त्त व्यक्तिकी सेवामें वृथा श्रम नहीं कर महाभागवतोंकी सेवा–शुश्रूषाका सुयोग पाकर फलाकांक्षी या फलत्यागके विचारसे मुक्त हो सकें, इस उद्देश्यसे ही महाभागवतगण इस प्रकारका सुयोग प्रदान किया करते हैं। महाभागवतगणोंकी शुश्रूषा और इन्द्रिय–तर्पणके द्वारा ही जीवका परम मङ्गल साधित होता है। इसीलिए श्रील रूप गोस्वामी प्रभुने श्रीउपदेशामृत (५) में कहा है–

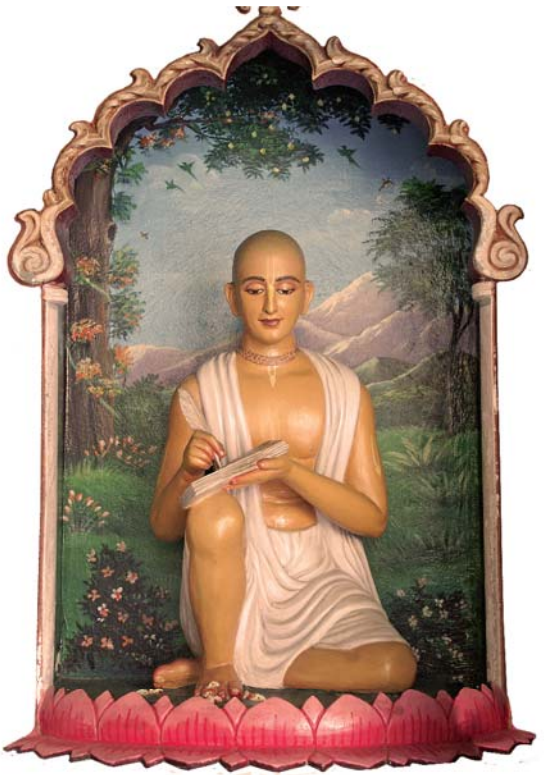

कृष्णेति यस्य गिरिं तं मनसाद्रियेत,
दीक्षास्ति चेत् प्रणतिभिश्च भजन्तमीशम्।
शुश्रूषया भजनविज्ञमनन्यमन्य–
निन्दादिशून्यहृदमीप्सितसङ्गलब्ध्या ॥

अर्थात् जिनके मुखमें एक कृष्णनाम हुआ है, उन्हें मध्यम अधिकारी व्यक्ति मन–ही–मन आदर करेंगे। यदि कनिष्ठ अधिकारी दीक्षित हैं एवं हरिभजनमें प्रवृत्त रहता है, तब उसका प्रणामादिके द्वारा आदर करेंगे और जो कृष्ण–भिन्न अन्य प्रतीतिसे रहित होकर निन्दादि भावोंसे शून्य तथा भजनविज्ञ हैं, वैसे महाभागवतको सजातीय–आशय स्निग्धजनोंमें सर्वापेक्षा श्रेष्ठ सङ्गके रूपमें जानकर शुश्रूषाके द्वारा उनका आदर करेंगे।

किन्तु इस प्रकार भगवद्भक्तोंके स्वाभाविक या देहगत किसी भी प्रकारके दोषोंका प्राकृत–दृष्टिसे दर्शन करके यदि उनकी अवज्ञा की जाये, तब वैष्णव–सेवा प्राप्त नहीं होगी। इसीलिए श्रीउपदेशामृत (६) में श्रील रूप गोस्वामीपादने उपदेश दिया है–

दृष्टैः स्वभावजनितैर्वपुषश्च दोषै–
र्न प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत्।
गङ्गाम्भसां न खलु बुद्बुदफेनपङ्कै–
र्ब्रह्मद्रवत्वमपगच्छति नीरधर्मैः॥

अर्थात् इस प्रपञ्चमें अवस्थित अनुक्षण हरिसेवापरायण भगवद्भक्तोंके स्वभाव–जनित दोष एवं देह–दोष समूहको प्राकृत दर्शनसे नहीं देखें। जिस प्रकार गङ्गाजलमें फेन, कीचड आदि मिलित होनेपर भी गङ्गाजलका ब्रह्मद्रवत्व धर्म नष्ट नहीं होता, उसी प्रकार अनुक्षण कृष्णसेवापरायण भगवद्भक्तोंमें बाहरी दृष्टिसे शारीरिक व्याधि या वृद्धावस्था–जनित कुदर्शन, नीचवर्ण, कर्कशता आदि देखे जोनेपर भी वे कभी भी प्राकृत बुद्धिके विषय नहीं हैं।

महाभागवत या मुक्त पुरुषोंकी समस्त चेष्टाएँ ही कृष्णसेवा परक हैं। वे भोग या त्याग–बुद्धिके द्वारा चालित होकर कोई कर्म नहीं करते हैं। श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादके मल–मूत्रादि विसर्जनके सम्बन्धमें श्रवण कर कोई यदि ऐसा विचार करते हैं कि 'महाभागवतोकी ऐसा चेष्टा क्यों होगी?'– इसके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णने श्रीउद्धवगीतामें हमें बतलाया है–

करोति कर्म क्रियते च जन्तुः
केनाप्यसौ चोदित आ निपातात्।
न तत्र विद्वान् प्रकृतौ स्थितोऽपि
निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या॥
तिष्ठन्तमासीनमुत व्रजन्तं
शयानमुक्षन्तमदन्तमन्नम् ।
स्वभावमन्यत् किमपीहमान–
मात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद॥

(श्रीमद्भा॰ ११/२८/३०–३१)

अर्थात् सभी प्राणि अपने किसी पूर्व–संस्कारके द्वारा प्रेरित होकर मृत्युतक कर्म करते हैं एवं विकृत होते हैं, किन्तु विद्वान् व्यक्ति अर्थात् जो बन्धन और मोक्षके विषयमें जानते हैं, वे शरीरमें वर्तमान रहनेपर भी भगवत्सेवानुकूल सुखानुभवके द्वारा समस्त तृष्णाओंसे निवृत्त होते हैं और कभी भी कर्मके द्वारा संसार–गतिको प्राप्त नहीं करते हैं। जिनका चित्त सर्वदा भगवत्सेवामें अधिष्ठित हैं, वे खड़े ही हों अथवा बैठे ही हों, गमन करें या फिर शयन करें, मल–मूत्र ही विसर्जन क्यों न करें या फिर अन्नका भोजन करें अथवा अन्य कोई स्वाभाविक कार्य ही क्यों न करें, वे कभी भी अपने देहमें आसक्त नहीं होते हैं।

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीका श्रीराधारमणविहारीजीकी नैश–लीलामें प्रवेश

गत २९ दिसम्बर २०१० बुधवार, पौष (नारायण) मासकी शुभ कृष्ण-नवमी तिथि तथा ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी शुभ आविर्भाव तिथिके उपस्थित होते ही रात्रि ३ बजे क्षेत्र-मण्डल श्रीजगन्नाथपुरीके अन्तर्गत श्रीजगन्नाथ-बलदेव-सुभद्रा और सुदर्शनके आविर्भाव स्थान श्रीचक्रतीर्थमें स्थित जयश्रीदामोदर गौड़ीय मठमें श्रीगौड़ीय-सम्प्रदाय-संरक्षक जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग प्रिय परिकर नित्यलीलाप्रविष्ट अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके अन्तरङ्ग पार्षद, कलियुग पावनावतारी श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्ट पूरक—श्रीलरूप गोस्वामिपादके ऐकान्तिक अनुगतवर, रसिक-कुल-चूड़ामणि, युगाचार्य तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टके सभापति-आचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस स्वामी अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने अपने चरणाश्रित सेवकवृन्दको तीव्र विरहसमुद्रमें निमज्जित कर स्वेच्छापूर्वक अपने नित्यधाममें श्रीश्रीराधारमणविहारीजीकी नैश (रात्रिकालीन) लीलामें प्रवेश किया है।

नित्यलीलामें प्रवेश करनेका पूर्वाभास

अगस्त २००९ में श्रील गुरुदेव नेपालमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणीके प्रचारके साथ-साथ वहाँ स्थित श्रीजनकपुरीमें श्रीसीतादेवीके जन्मस्थानका दर्शन करने गये थे। वहाँसे लौटनेपर मथुरामें स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें अपने प्रवचनमें उन्होंने अपनी उस मनोवाञ्छित-यात्राके सम्बन्धमें वर्णन करते हुए कहा था—"बहुत लम्बे समयसे भगवान् श्रीरामचन्द्रकी शक्ति श्रीसीतादेवीके जन्मस्थानका दर्शन करनेकी मेरी अभिलाषा थी और उनकी कृपासे अब मेरे जीवनके इस शेष भागमें वह अभिलाषा पूर्ण हुई है। इसलिये मैं समझता हूँ कि अब मेरी विश्वके तीर्थोंके दर्शनकी यात्रा सम्पूर्ण हो गयी है।"

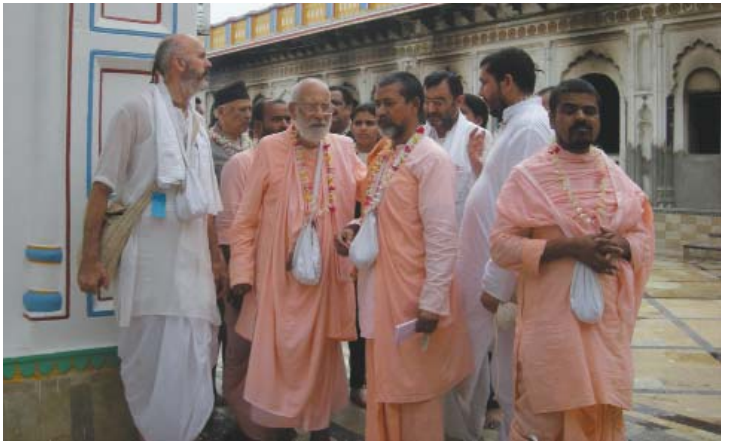

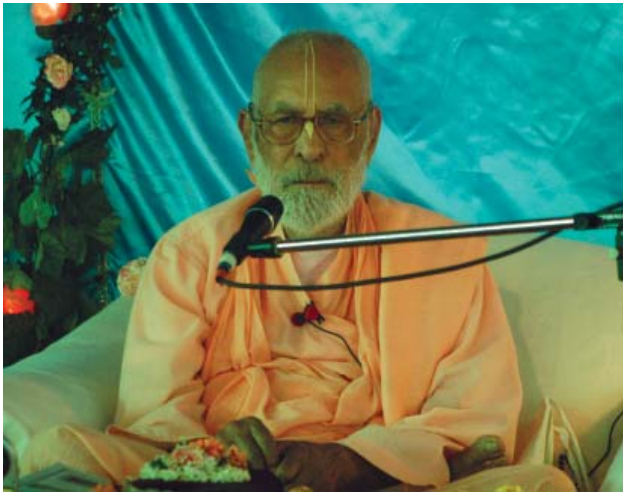

Badger में

जून २०१० में अमेरिकामें स्थित Badger नामक स्थानपर हुए 'Summer Harikatha festival' में श्रील गुरुदेवने ८०० से अधिक उपस्थित भक्तोंके समक्ष घोषणा की थी कि 'यही मेरी अन्तिम अमेरिका यात्रा है।'

यद्यपि इन इङ्गितोंसे श्रील गुरुदेवने पहलेसे ही यह बताना प्रारम्भ कर दिया था कि उन्हें अपने परमाराध्य गुरुपादपद्म, श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीराधारमणविहारीसे इङ्गित प्राप्त हुआ है कि उनके द्वारा इस जगतमें गौरवाणी प्रचारका जो सेवाकार्य था वह पूर्ण हो गया है, अब उन्हें अपने प्रेष्ठ श्रीश्रीराधारमणकी नित्यसेवामें उन्हींके नित्य धाममें उपस्थित होना है।

अस्वस्थ लीलाका अभिनय

श्रीलगुरुदेवने इसीके उपक्रम स्वरूप और अपनी नरवत् लीलाके अनुरूप वर्ष २०१०के प्रारम्भसे ही अस्वस्थ होनेका अभिनय किया।

२०१० की गुरुपूर्णिमाके पश्चात् श्रील गुरुदेव अपने दिये हुए वचनको निभाते हुए दुबई एवं रशियाके 'हरिकथा उत्सव' में गये तथा उस उत्सवको सफलता पूर्वक पूर्ण करके जैसे ही भारत लौटे, तब उन्होंने अस्वस्थ होनेका अभिनय किया।

दिल्लीमें जन्माष्टमीके दिन उनका अन्तिम प्रवचन

श्रील गुरुदेवको अपना स्वास्थ्य लाभ करने हेतु चिकित्सकोंके अनुरोधसे दिल्लीमें रहना पड़ा। इसी कारण वे अपने जीवनके पैंसठ वर्षोंमें पहली बार झूलन महोत्सव, श्रील रूप गोस्वामीके विरह महोत्सव, श्रीबलदेव पूर्णिमा, श्रीकृष्णजन्माष्टमी तथा श्रीनन्दोत्सव आदि उत्सवोंको

मथुरा–वृन्दावनमें रहकर नहीं मना सके। इसके लिये उन्होंने जो खेद प्रकट किया था, वह अवर्णनीय है। श्रीकृष्णजन्माष्टमीके दिन दिल्लीमें स्थित श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठमें अपना अन्तिम प्रवचन देते हुए उन्होंने जिन भावोंको व्यक्त किया था, उसे श्रीश्रीभागवत–पत्रिका वर्ष–७, संख्या–७ में पहले प्रकाशित किया जा चुका है।

मथुरा–गोवर्धन आगमन

श्रीनन्दोत्सवके उपरान्त चिकित्सा पूर्ण होनेपर श्रील गुरुदेव मथुरामें उपस्थित हुए एवं वहाँ दो दिन रहनेके पश्चात् उन्होंने गोवर्द्धनके लिये प्रस्थान किया।

मथुरामें जब एक भक्तने श्रील गुरुदेवसे कहा कि आपकी अनुपस्थितिके कारण जन्माष्टमीका उत्सव बहुत सूना–सा लग रहा था। आपसे प्रार्थना है कि आप हर बार जन्माष्टमीके समय यहीं आया कीजिए, तो उसके उत्तरमें श्रील गुरुदेवने अत्यधिक गम्भीर होकर कहा कि "अब नया युग आनेवाला है, सब कुछ नया होगा।" इतना कहकर श्रील गुरुदेव चुप हो गये।

पुनः अस्वस्थ होनेका अभिनय

गोवर्द्धनमें कुछ दिन निवास करनेके पश्चात् श्रील गुरुदेवने पुनः अस्वस्थ–लीलाका अभिनय किया। गोवर्धनमें चिकित्साकी सीमित व्यवस्था होनेके कारण उन्हें पुनः दिल्ली ले जाया गया, जिसके कारण श्रील गुरुदेव प्रबल इच्छा होनेपर भी मथुरामें श्रीराधाष्टमीका उत्सव मनानेके लिये नहीं रुक सके। श्रील गुरुदेवके द्वारा इस प्रकार पुनः पुनः अस्वस्थ होनेकी लीलाका अभिनय करनेपर शिष्यों एवं आश्रितजनोंकी जो अवस्था हुई, वह केवल स्व–स्व–अनुभवका विषय है। सभी यही चाहते थे कि श्रील गुरुदेव जिस किसी उपायसे शीघ्र स्वस्थ हो जाएँ। १७ दिसम्बरको श्रील गुरुदेव मलेशिया जानेवाले थे, किन्तु दिल्लीके डॉक्टरोंके परामर्शके अनुसार श्रील गुरुदेवकी यात्रा स्थगित कर दी गयी।

सेवकोंने श्रील गुरुदेवकी चिकित्साके लिए शीघ्र ही देश–विदेशके सभी बड़े डाक्टरोंसे संपर्ककर दिल्लीमें ही श्रील गुरुदेवकी चिकित्साके यथासाध्य प्रयत्न करने प्रारम्भ कर दिये। यह सूचना इन्टरनेटके माध्यमसे सभी भक्तोंको भी दी गयी।

स्वास्थ्य लाभके लिए अखण्ड–नामसंकीर्त्तन, हवन, पूजा–अर्चन

श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठ दिल्लीमें चिकित्साके लिए निवास करते समय प्रत्येक दिन दिल्ली एवं विश्वके कोने–कोनेसे आये भक्तगण श्रील गुरुदेवकी भजनकुटीरके बाहर बैठकर घंटों तक नाम–संकीर्त्तन करते तथा श्रील गुरुदेव भी भीतर बैठकर कीर्त्तनका आस्वादन करते। किसीको भी अपने व्यवसाय, नौकरी तथा घरेलु कामोंकी चिन्ता नहीं थी। सभीका चिन्तनीय विषय एकमात्र श्रील गुरुदेवका स्वास्थ्य और उनके दर्शन ही था। कभी–कभी जब सेवक श्रील गुरुदेवके हाथोंको अपने कन्धेपर रखकर उन्हें चलाते हुए भजनकुटीरके द्वारपर ले आते, तो भक्तगण श्रील गुरुदेवका दर्शनकर आनन्दसे विभोर होकर रोते–रोते उच्चस्वरसे नाम–संकीर्त्तन करने लगते। कभी–कभी श्रील गुरुदेव अपनी Balcony से भी भक्तोंको अपना दर्शन तथा आशीर्वाद प्रदान करते थे।

इसके अतिरिक्त देश–विदेशमें श्रील गुरुदेवके स्वास्थ्यके लिये नृसिंह होम, सुदर्शन होम आदिका भी अनुष्ठान किया गया तथा बहुतसे भक्तोंने प्रतिदिन श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा, श्रीगिरिराज गोवर्धनका पञ्चामृत अभिषेक तथा पूजा–अर्चन आदि भी किया। सभीकी एक ही मनोकामना रही—श्रील गुरुदेव अपना पूर्ण स्वास्थ शीघ्र ही लाभ करें।

सेवकोंको जहाँसे भी श्रील गुरुदेवके स्वस्थ होनेकी आशा प्राप्त होती, वे तत्क्षणात् उस उपायको करनेमें लग जाते थे।

अनेकानेक अप्राकृत भावोंका उदित होना

दिल्लीमें निवास करते समय श्रील गुरुदेव अपनी अस्वस्थ अवस्थामें कभी–कभी तो अप्राकृत भावोंमें निमग्न होकर कुछ अस्फुट शब्दोंका उच्चारण करते, तो कभी अप्राकृत भावमें ही निमग्न होकर घंटोतक आह्निक और स्तव–स्तुतियाँ करते रहते। सेवकोंके द्वारा प्रसाद एवं औषधि आदि देनेके लिये अनेक प्रयत्न करनेपर धीरे–धीरे वे बाह्य अथवा अर्द्धबाह्य दशामें आते। इस प्रकार श्रील गुरुदेव सब समय अप्राकृत भावोंमें विभोर और अपनी अन्तर्दशामें स्थित होकर रहते थे।

श्रील गुरुदेवकी भजनकुटीरके अन्दर सेवक समय–समय पर श्रील गुरुदेवको प्रिय लगने वाले कीर्त्तन

पदोंका गान करते तथा कभी–कभी किसी ग्रन्थका पाठ करते।

एकदिन श्रील गुरुदेव बार–बार कहने लगे–"मुझे सभी मसाले मिल गये, किन्तु ऊबर नहीं मिला।" सेवकोंने बार–बार उस मसालेके विषयमें पूछा और श्रील गुरुदेवने पुनः पुनः उसी शब्दका ही उच्चारण किया। किन्तु किसीने भी कभी उस अप्राकृत मसालेका नाम सुना ही नहीं था।

विभिन्न वैष्णवोंका श्रील गुरुदेवके दर्शनोंके लिये आगमन

दिल्लीमें वासके समय प्रतिदिन श्रील गुरुदेवके अनेक आश्रित भक्त श्रील गुरुदेवके दर्शनोंके लिये उपस्थित होते थे। इसके अतिरिक्त श्रीगोपीनाथ गोड़ीय मठके वर्त्तमान आचार्य श्रीपाद भक्तिविबुद्ध बोधायन महाराज, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान आचार्य श्रीपाद भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज तथा श्रीपाद भक्तिवेदान्त वैष्णव महाराज, ईस्कानके जी.बी.सी श्रीपाद गोपालकृष्ण महाराज, श्रीपाद भक्तिचारु महाराज, श्रीपाद इन्द्रद्युम्न महाराज, श्रीपाद शिवराम महाराज, श्रीपाद भक्तिभृङ्ग गोविन्द महाराज, श्रीपाद वेदव्यास महाराज, श्रीचैतन्य गौड़ीयमठके श्रीपाद भक्तिप्रपन्न तपस्वी महाराज तथा श्रीपाद भक्तिविचार विष्णु महाराजके साथ आये अनेक ब्रह्मचारियों तथा गृहस्थ भक्तोंने श्रील गुरुदेवका दर्शन किया।

श्रीचैतन्य गौड़ीयमठके वर्त्तमान आचार्य प्रपूज्यचरण श्रीश्रीमद्भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज तथा उनके सतीर्थ प्रपूज्यचरण श्रीश्रीमद्भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराजने Telephone के माध्यमसे श्रीपाद भक्तिवेदान्त माधव महाराजसे श्रील गुरुदेवके स्वास्थ्यकी जानकारी ली।

श्रील गुरुदेवके करकमलोंमें ग्रन्थोंका समर्पण

दिल्लीमें ही श्रीपाद भक्तिवेदान्त दामोदर महाराजने अंग्रेजी भाषामें अनुवादित 'वैष्णवसिद्धान्तमाला', श्रीशान्ति दासीने अंग्रेजी भाषामें अनुवादित 'श्रीराधाकृष्णगणोद्देश दीपिका', श्रीश्यामारानी दासीने 'walking with a saint' नामक ग्रन्थको श्रील गुरुदेवको समर्पित किया। इसके अतिरिक्त श्रीमान् मधुमङ्गल दास ब्रह्मचारी और श्रीमान् वंशीवदन दास ब्रह्मचारीने उड़िया भाषामें अनुवादित 'जैवधर्म', 'श्रीचमत्कार चन्द्रिका' तथा 'श्रीप्रेमसम्पुट' नामक ग्रन्थोंको श्रीलगुरुदेवके करकमलोंमें समर्पित

किया। यद्यपि श्रील गुरुदेव उड़िया भाषाको स्वयं पढ़ नहीं सकते थे, तब भी उन्होंने अनेक पृष्ठोंको खोल–खोलकर देखा तथा पूछा कि यहाँ क्या लिखा है, यहाँ क्या लिखा है इत्यादि। कुछ भक्तोंने Chinese भाषामें अनुवादित कुछ ग्रन्थ तथा अन्य कुछ भक्तोंने Spanish भाषामें अनुवादित ग्रन्थ भी श्रील गुरुदेवके करकमलोंमें समर्पित किये। ग्रन्थोंको देखकर श्रील गुरुदेवका मुखकमल प्रफुल्लित हो उठता तथा वे ग्रन्थ–सेवामें लगे भक्तोंको अपने वरद हस्तकमल तथा करुणामयी दृष्टि द्वारा हार्दिक कृपा आशीर्वाद प्रदान करते।

जब श्रील गुरुदेवको श्रीश्रीभागवत पत्रिका (वर्ष–७, संख्या–७) समर्पित की गयी तो श्रील गुरुदेवने उसे आरम्भसे अन्त तक देखा तथा परमगुरुदेव श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके द्वारा लिखित प्रबन्धको सम्पूर्णरूपसे पढ़ा।

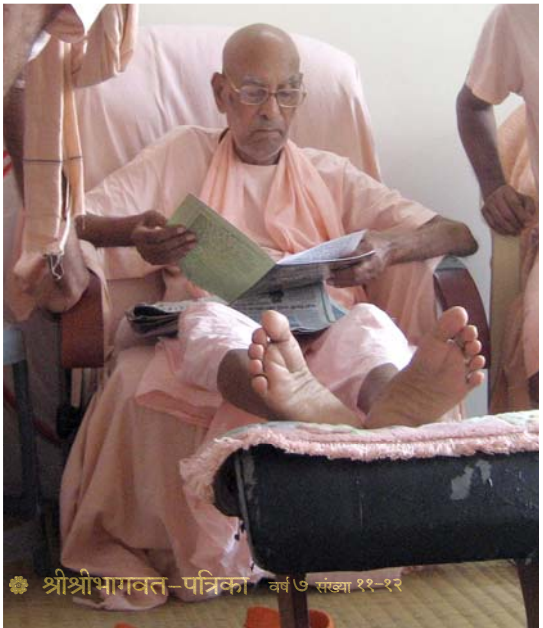

श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाके उपलक्ष्यमें अनेकानेक भक्तोंका आगमन

तदनन्तर कार्त्तिक मासमें ८४ कोस व्रज–मण्डल परिक्रमाके उपलक्ष्यमें देश–विदेशसे भक्तोंका आना प्रारम्भ हुआ। सभी भक्तगण श्रीलगुरुदेवके दर्शनोंके लिए आतुर होकर पहले श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठ दिल्लीमें श्रील गुरुदेवका दर्शन करते और उसके बादमें श्रीवृन्दावन धाम जाते।

श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा हेतु श्रील गुरुदेवका आदेश

कुछ भक्त श्रीलगुरुदेवके स्वास्थ्यकी चिन्तावशतः उनके सान्निध्यमें दिल्लीमें ही रहनेकी इच्छा प्रकाशित करते, किन्तु श्रीलगुरुदेव प्रायः प्रातः एवं सन्ध्याके समय अपने भजनकुटीरके द्वारपर जाकर स्वयं जिन–जिन भक्तोंको देखते, उनसे कहते 'यहाँ क्या कर रहे हो, वृन्दावन जाओ, व्रजमण्डलकी परिक्रमा करो, लीला–स्थलियोंके दर्शन करके अपने जीवनको सफल बनाओ, मैं तो अस्वस्थ होनेके कारण नहीं जा पा रहा हूँ, परन्तु यह मेरा आदेश है कि आप सभी परिक्रमामें योगदान दो, मैं भी धीर–धीरे स्वास्थ्य लाभ कर रहा हूँ। जितना जल्दी होगा परिक्रमामें आने का प्रयास करूँगा।'

भक्तोंकी सद्भावना

जिस समय श्रील गुरुदेव इस प्रकार अस्वस्थ लीला प्रकाशित कर रहे थे, तब बहुतसे भक्त पुनः–पुनः यह परामर्श देते कि 'श्रीलगुरुदेवको गोवर्धन ले जाया जाये, उन्हें दिल्लीमें क्यों रखा हुआ है। आप सेवकलोग ठीक नहीं कर रहे, ऐसा करना उचित नहीं है।' यद्यपि सेवक भक्तोंकी सद्भावनाओंको समझते थे, तब भी वे श्रील गुरुदेवके स्वास्थ्यके लिये अपनी ओरसे किसी भी प्रकारकी कोई कमी नहीं छोड़ना चाहते थे। साथमें उन्हें यह भी दृढ़ विश्वास था कि श्रील गुरुदेव जैसे भगवान्‌के नित्यसिद्ध परिकर जिस किसी भी स्थान पर क्यों न रहे, वही स्थान ही वृन्दावन धाम, गोवर्धन, श्रीराधाकुण्ड

है। कुछ भक्तलोग तर्क करते हुए कहते है कि 'यदि श्रील गुरुदेवने दिल्लीमें ही अप्रकटलीला प्रकाशित की तो बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा।' इसपर सेवक उत्तर देते कि क्या श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने अपनी अप्रकट लीलाको कोलकत्तामें प्रकाशित नहीं किया था? क्या उससे बहुत बड़ा अनर्थ हुआ था? इसके अतिरिक्त सेवक भक्तोंको पुनः–पुनः यही कह रहे थे कि 'देखिये! उचित समयपर श्रील गुरुदेव स्वयं ही हमें गोवर्धन चलनेके लिए कहेंगे।' और हुआ भी ठीक वैसा ही।

कार्तिक मासमें गोवर्द्धन–वास करनेकी अभिलाषा प्रकट करना

कार्त्तिक मासके बीचमें एकदिन श्रील गुरुदेवने स्वयं श्रीगोवर्द्धन जानेकी इच्छा प्रकट की। श्रील गुरुदेवके वचन सुनकर सेवकोंने श्रील गुरुदेवको गोवर्धन लानेकी सम्पूर्ण व्यवस्था शीघ्रातिशीघ्र कर ली। जिस दिन श्रील गुरुदेवको प्रातःकाल गोवर्धन लाना था, उस दिन दिल्ली मठमें लोगोंकी इतनी अधिक भीड़ थी कि श्रील गुरुदेवको Lift से Ambulance में लानेमें प्रायः आधा घंटा लग गया। Wheelchair पर बैठे हुए श्रील गुरुदेव अपनी हस्तमुद्रासे सभीको आशीर्वाद प्रदान कर रहे थे। दिल्लीसे डॉ॰ रवीन्द्र प्रकाश भी श्रील गुरुदेवके साथ गोवर्धन आये।

कार्तिक मासमें गोवर्द्धन–वास

तत्पश्चात् जब श्रील गुरुदेव श्रीगोवर्द्धन स्थित श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठमें पहुँचे, तो वहाँ पर भी श्रील गुरुदेवके दर्शनके लिये लगभग एक हजार भक्त उपस्थित थे। गोवर्द्धनमें श्रीलगुरुदेव अधिकतर अन्तर्दशामें रहने लगे। गोवर्द्धनमें निवास करते समय श्रील गुरुदेवके स्वास्थ्यमें निरन्तर उतार–चढ़ाव बना रहा।

गोवर्धनवास कालमें श्रील गुरुदेवमें अप्राकृत भावोंका आविर्भाव

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुमें श्रील रूप गोस्वामीने जो भावके लक्षण लिखे हैं, गोवर्धनवास कालमें समय–समयपर वह लक्षण श्रील गुरुदेवमें दिखलायी देते थे। कभी उनकी आँखोंसे निरन्तर अश्रु प्रवाहित होते, तो कभी मुखसे बहुत अधिक मात्रामें फेन निकलता, कभी निरन्तर हिचकी आती रहती, जोकि रुकनेका नाम ही न लेती, कभी–कभी विस्मरणकी दशामें वे पूछते 'मैं कहाँ हूँ', कभी पूछते 'अभी दिन है न रात है', कभी सब समय अपने साथ रहनेवाले सेवकोंके नाम तक भी भूल जाते। कभी सेवकोंके द्वारा किसी व्यक्तिका नाम ठीक उच्चारण न करनेपर सेवकोंको ठीक करते हुये उस व्यक्तिका सही नाम उच्चारण करते। कभी अपने आश्रित जनोंकी सेवा परिपाटीपर विचारकर उनकी प्रशंसा करते, तो कभी किसी आश्रित जनको

उसकी सेवा परिपाटीको ठीकसे करनेका आदेश प्रदान करते, कभी अचानक ही सोते हुए जागते और पूछते 'आज परिक्रमा नन्दगाँव गयी है न!', कभी पूछते 'आज एकादशी है क्या?' यह सुनकर सेवक आश्चर्यमें पड़ जाते कि श्रील गुरुदेवको यह सब कैसे पता है? कभी कहते कि 'आज क्या मुझे खानेके लिये कुछ भी नहीं दोगे? श्रील गुरुदेवकी बात सुनकर सेवक आनन्दित होकर शीघ्र ही कुछ–न–कुछ प्रस्तुत करते।

श्रीलगुरुदेवके दर्शनकी व्यवस्था

श्रीलगुरुदेवके गिरिराज गोवर्धनमें रहते समय अब और एक समस्या आयी कि परिक्रमामें आये देश–विदेशके भक्तोंको कैसे श्रील गुरुदेवके दर्शन कराये जाये? श्रीलगुरुदेवकी भजनकुटीरमें सबको आने देना सम्भवपर नहीं था। दर्शन किये बिना भक्तलोग बहुत दुःखी होते थे। खिड़कीसे भी सबको श्रीलगुरुदेवका दर्शन कराना कोई सहज बात नहीं थी। जब भी भक्तोंको खिड़कीसे दर्शन कराये जाते, तो जो भक्त खिड़की तक पहुँचता, वह आगे बढ़नेका नाम ही न लेता, कुछ भी कहने पर बहुत असन्तुष्ट होता। ऐसी परिस्थितिमें किसी भक्तने एक बहुत अच्छा सुझाव दिया कि 'क्यों न हम नाट्यमन्दिरमें एक LCD Screen लगा दे, जिससे सुगमतासे सभी भक्त एकसाथ श्रीलगुरुदेवका दर्शन कर सकते हैं?' सभीने सहर्ष उनके इस प्रस्तावको स्वीकार किया तथा शीघ्र ही LCD की व्यवस्था की गयी। भक्तलोग नाट्यमन्दिरमें श्रीलगुरुदेवके दर्शन करते तथा श्रीलगुरुदेव भी अपनी भजनकुटीरमें लगे TV के माध्यमसे नाट्यमन्दिरमें उपस्थित सभी भक्तोंको देखते तथा कभी पूछते कि 'संन्यासी लोग कहाँ बैठे हैं, दिखलायी नहीं दे रहे', तो कभी सेवकोंके कहने पर और कभी स्वयं ही अपना हाथ उठाकर भक्तोंको आशीर्वाद देते। श्रीलगुरुदेवके दर्शन करके सभी भक्तलोग परमानन्दित होकर उच्चस्वरसे कभी 'जय श्रीलगुरुदेव', कभी 'गुरुदेव! तुम्हारी जय जय हो', कभी 'गोविन्द दामोदर माधवेति', तो कभी आस्ट्रेलियन धुनमें 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण

हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥' इत्यादिका गान करते–करते भाव विभोर हो उठते, क्रन्दन करने लगते, जितनी भी देर तक श्रीलगुरुदेव दर्शन क्यों न देते, कोई भी अपने स्थानसे नहीं हिलता। सभी एकटक श्रीलगुरुदेवको ही निहारते रहते, मानो उन्हें और कोई काम ही नहीं हो।

सेवकोंके लिये धर्मसङ्कटकी स्थिति

'किन्तु कहाँ श्रीलगुरुदेवकी साक्षात्रूपमें एक झलक की प्राप्ति और कहाँ LCD पर उनके दर्शन? क्या इन दोनोंमें कोई तुलना हो सकती है?' धीरे–धीरे अनेक भक्तोंने फिरसे शिकायत करनी प्रारम्भ कर दी कि 'हमें तो श्रीलगुरुदेवके साक्षात्रूपसे दर्शन की अभिलाषा होती है, LCD से मन नहीं भरता, कृपया कोई–न–कोई

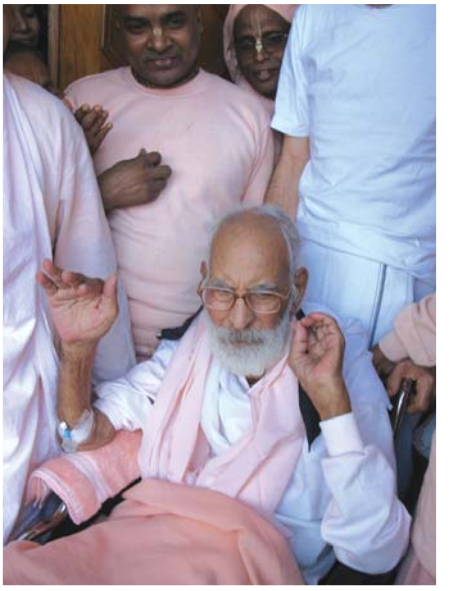

व्यवस्था कीजिए।' जहाँ तक सम्भव पर होता, सेवकलोग भक्तोंके लिये श्रील गुरुदेवके दर्शनकी व्यवस्था करते, किन्तु सबके मनको रख पाना कहाँ तक सम्भवपर था? जब श्रीलगुरुदेव सो रहे होते, तब तो भक्तोंको खिड़कीसे आकर दर्शन करनेका सुयोग प्रदान किया जाता, किन्तु यदि अचानक बीचमें श्रीलगुरुदेवकी आँख खुलती तो वे साथ–ही–साथ कमरेके सभी पर्दोंको बन्द करनेके लिये कहते। थोड़ा सा भी किसी पर्देके खुले रहने पर पुनः कहते कि इसे पूरी तरहसे बन्द करो। 'मैं नहीं चाहता कि मेरी इस अवस्थामें मुझे कोई देखे।' सेवकलोग बाध्य होकर श्रीलगुरुदेवकी इच्छाको पूर्ण करते। कभी–कभी तो ऐसा होता कि दिनके समय भी छोटी सी लाइट जलाकर सारे कार्य करने पड़ते। किन्तु सेवकोंकी इस अवस्थाको कौन समझे?

भक्तोंमें श्रील गुरुदेवके दर्शनोंकी प्रबल उत्कण्ठा

कभी–कभी सेवकलोग यह कहकर–'श्रीलगुरुदेव! डॉक्टरका कहना है कि आपको अन्ततः थोड़ी देरके लिये अपने कमरेसे बाहर जाना चाहिए। खुली हवामें बैठना चाहिए। भक्तोंसे मिलना–जुलना चाहिए'–श्रीलगुरुदेवको बाहर लानेमें सफल हो जाते। श्रीलगुरुदेवको सेवकोंके कन्धोंपर हाथ रखकर चलते देख तथा कभी पाँच–दस मिनटके लिये उनके दर्शन करके भक्तोंकी कैसी अवस्था होती, उनमें कैसी उमङ्ग भर जाती, इसका वर्णन शब्दोंके द्वारा कर पाना सम्भवपर नहीं है। कोई खिड़कियोंसे, कोई छत से, कोई पार्क से, कोई खम्भोंसे लटक करके, कोई Balcony से, जिसके लिये जैसे सम्भवपर होता, वैसे श्रीलगुरुदेवकके दर्शन करते। ऐसा प्रतीत होता मानो सभी इस दृश्यको सदाके लिये अपने हृदयमें अङ्कित करके रखना चाहते हो। कुछ भक्तलोग पञ्चप्रदीपके द्वारा श्रीलगुरुदेवकी आरती उतराते तो कुछ भक्तलोग अपने नेत्र रूपी दीपकके द्वारा

श्रीलगुरुदेवककी आरती उतारते। जिस किसी ओर श्रीलगुरुदेव अपने मुखकमलको घुमाते, उस ओर खड़े हुए भक्त स्वयंको परम कृतार्थ मानते। दो–तीन दिन तक इसप्रकार दर्शन देनेके उपरान्त श्रील गुरुदेव पुनः सम्पूर्णरूपसे अन्तर दशामें रहने लगे।

श्रील गुरुदेवके द्वारा की गयी श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा

श्रील गुरुदेव सब समय किसी भावावस्थामें ही रहते। एकदिन बार–बार कहने लगे 'मुझे वृन्दावन ले चलो। मैं व्रजमण्डल परिक्रमामें जाना चाहता हूँ।' सेवकोंके कहने पर भी–'गुरुदेव! परिक्रमा वृन्दावनसे गोवर्धन आ चुकी है, आप गोवर्धनमें परिक्रमाके साथमें ही हैं।'–श्रीलगुरुदेवने जब पुनः–पुनः वृन्दावनमें जानेके लिये कहा तो सेवक समझ गये कि श्रील गुरुदेवकी इस अवस्थाका कोई रहस्य है। जब सेवकोंने कहा कि 'ठीक है श्रीलगुरुदेव! हम वृन्दावन जानेकी सब व्यवस्था करते हैं' तो श्रील गुरुदेव सन्तुष्ट हो गये तथा उन्होंने कुछ देर तक विश्राम किया। सन्ध्याके समय बीच–बीचमें कह उठते कि 'ओह! आज तो परिक्रमा राधादामोदर मन्दिर, सेवाकुंज, श्यामसुन्दर मन्दिर आदि स्थानों पर जायेगी, मेरे लिये सभी स्थानों पर जाना तो सम्भवपर नहीं होगा, किन्तु मैं सेवाकुंज और राधादामोदर तो अवश्य ही जाऊँगा', 'आज तो परिक्रमा मानसरोवर जायेगी' इत्यादि। मानो वे वृन्दावनमें रहकर व्रजमण्डल परिक्रमा कर रहे हों। जब श्रील गुरुदेव प्रातः उठे तो उन्होंने कहा कि 'ओह! यह पैठा गाँव कितना सुन्दर है, यहाँपर श्रीराधाजीका कैसा वैशिष्ट्य स्थापित हुआ है।' इत्यादि। ऐसा प्रतीत हुआ मानो श्रीलगुरुदेव एक ही दिनमें वृन्दावनसे की जानेवाली बारह दिन की परिक्रमाको अपनी भावास्थामें सम्पूर्ण करके गोवर्धनमें उपस्थित हुए हों। अब श्रील गुरुदेव कहने लगे कि 'मुझे दानघाटी, सुरभि कुण्डके तट पर दिये जा रहे उत्सव, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड इत्यादि लीला–स्थलियोंपर जाना है।' कभी कहते–'आज तो परिक्रमा नन्दग्राम, बरसाना जायेगी। हम लोग भी टेर–कदम्ब, उद्धव–क्यारी, ऊँचा गाँव आदि स्थानों पर जायेंगे।' श्रील गुरुदेवकी अठारह दिन तक गोवर्धनसे की जाने वाली परिक्रमा भी प्रायः एकदिन में सम्पूर्ण हो गयी तथा अगले दिन प्रातःकाल ही श्रीलगुरुदेवने अपने सेवकसे कहा–'देखो! दिल्लीमें हमारे दाँतोके डॉक्टरको कह दो कि हम दिल्ली आ रहे हैं, वो तैयार रहें। मेरे दाँतोको देखनेमें कोई देरी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि सन्ध्याके समय हमारे श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठका वार्षिक उत्सव है। हमारा समयसे वहाँ पहुँचना आवश्यक है।' सेवकने भी कहा कि 'ठीक है! मैं उनसे बात करता हूँ।' जब सेवक श्रीलगुरुदेवको brush करा रहे थे, तो श्रीलगुरुदेवने कहा 'मुझे मेरा dental floss लाकर दो, मेरे दाँतमें कुछ फसा हुआ है।' जब सेवक गुरुदेवके 'dental floss' को ढूँढ़ रहे थे, तब श्रीलगुरुदेवने कहा–'देखो! हमारा सारा सामान तो गाड़ी रख दिया गया है, यदि आसानीसे उसे गाड़ीमेंसे ला सको, तो ठीक है, नहीं तो छोड़ो, दिल्ली पहुँच कर देख लेंगे।' इस प्रकार लगभग तीन दिन तक श्रीलगुरुदेवने ऐसी लीला की।

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी शुभ तिरोभाव तिथिका समागमन

एक समय श्रील गुरुदेवने कहा था कि–"मैं अपने ज्येष्ठ सतीर्थ प्रपूज्यचरण श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजका

अनुगमन करते हुए उनकी तिथिको आश्रय करके ही इस जगतसे जाना चाहता हूँ।" कार्तिक मासमें श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी तिरोभाव तिथिके उपस्थित होनेसे पूर्व ही श्रील गुरुदेवकी वाञ्छाको स्मरणकर सभी भक्तोंके हृदयमें यह आशङ्का होने लगी कि कहीं जैसा श्रील गुरुदेवने कहा था, वैसा तो नहीं हो जायेगा। इसी कारण श्रीव्रजमण्डल परिक्रमामें उपस्थित प्रायः सभी भक्त अत्यधिक तीव्रता, उत्कण्ठासे सर्वाभीष्ठ प्रदाता श्रीगिरिराज गोवर्धनसे प्रार्थना करने लगे, कुछ भक्तोंने रात्रि जागरण, स्तव–स्तुति, हरिनाम सङ्कीर्त्तन तथा गिरिराजजीका अभिषेक और उनकी परिक्रमा आदि भी की।

श्रीमद्भागवतम्के विमोचनके अवसरपर श्रील गुरुदेवका कृपा निर्देश

कार्त्तिक मासमें श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजके द्वारा अनुवादित तथा श्रील गुरुदेवके द्वारा सम्पादित टीका समन्वित श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके प्रथम–भागका प्रकाशन होनेपर उसका विमोचन करते हुए श्रील गुरुदेवने श्रीपाद भक्तिवदान्त तीर्थ महाराजको उपलक्ष्य करके जो उपदेश प्रदान किया था, उसका भावार्थ इस प्रकार है–"जिस समय मैंने अपने गुरुदेवके आदेशानुसार श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा विरचित 'जैवधर्म' नामक ग्रन्थका हिन्दी भाषामें अनुवाद किया था, तो ग्रन्थ–सम्पादनमें मैंने अपने गुरु महाराजका नाम व्यवहृत किया था। गुरु महाराजने यद्यपि प्रस्तावनामें लिखा था कि 'मैं भक्तजनोंके गौरवका पात्र होनेके कारण ही इस ग्रन्थके सम्पादनमें मेरा नाम व्यवहृत हुआ है। वास्तवमें इस ग्रन्थके अनुवादक और प्रकाशक त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज ही सम्पादनका सारा कार्य करके मेरे विशेष आशीर्वादके पात्र हुए हैं।' यद्यपि बाहरी दृष्टिकोणसे मैंने ही समस्त कार्य किया भी था तथा श्रील गुरु महाराजने वैसा लिखा भी, परन्तु तब भी मैं अपने हृदयमें सदैव इसी विचारको ही धारण करता था कि गुरु महाराजके द्वारा ही यह कार्य सम्पन्न हुआ है। उसी प्रकार तुम भी कभी यह

मत सोचना कि यह ग्रन्थ तुम्हारे द्वारा किया गया है, बल्कि यह सोचना कि श्रील गुरुदेवने तुम्हारे माध्यमसे समस्त विश्ववासियोंके मङ्गलके लिये इस ग्रन्थको प्रकाशित कराया है। उन्होंने पुष्पवृष्टिकी भाँति समस्त जगत्में इस वाणीकी वर्षा की है। मैंने लगभग दशम स्कन्धके ५२ अध्याय पूर्ण कर लिये हैं, तुम हमारी गौड़ीय विचार धाराके अनुसार गुरुवर्ग (आश्रय विग्रह) को अपने कार्यका सम्पूर्ण श्रेय प्रदान करते हुए उन्हें आगे रखकर दशम स्कन्धको यथावत्रूपमें सम्पूर्ण करना।' इस प्रकारके कृपाशीष वचनोंको सुनकर सभी भक्त गदगद् हो गये।

कार्तिक मासमें प्रकाशित विभिन्न ग्रन्थोंका श्रील गुरुदेवके करकमलोंमें समर्पण

इसके अतिरिक्त श्रीमअरी देवी दासीने अंग्रेज़ी भाषामें अनुवादित 'श्रीबृहद्भागवतामृत' के प्रथम खण्ड

तथा श्रीवैजयन्ती माला दासीने 'Rays of Harmonist' Team की ओरसे श्रील गुरुदेवके श्रीकरकमलोंमें Rays of Harmonist Magazine का कार्तिक २०१० का अङ्क समर्पित किया। श्रील गुरुदेवके द्वारा संगृहीत, अनुवादित एवं सम्पादित 'चार रूपानुग वैष्णव आचार्य' नामक ग्रन्थ तथा श्रीपाद भक्तिवेदान्त माधव महाराजके द्वारा अंगेज़ी भाषामें लिखित 'Srila Gurudev: The Supreme Treasure' को भी श्रील गुरुदेवके करकमलोंमें समर्पित किया गया। श्रील गुरुदेवने प्रसन्नचित्त मुद्रासे इन ग्रन्थोंपर कार्य करनेवाले समस्त भक्तोंको आशीर्वाद प्रदान किया।

श्रील गुरुदेवकी शुभ इच्छा

एकदिन श्रील गुरुदेवने हिन्दी ग्रन्थोंके लिए सेवा करनेवाले कुछ भक्तोंसे कहा—'हमारे ग्रन्थ जिस प्रकारसे छप रहे हैं, मेरे चले जानेके बाद भी उन्हें उसी प्रकारसे छपवाते रहना। हमारे ग्रन्थोंके प्रकाशनका जो क्रम है, वह कभी टूटे नहीं। जो ग्रन्थ समाप्त हो जाये, उन्हें बिना किसी विलम्बके फिरसे छपवाना।'

विभिन्न सारस्वत गौड़ीय वैष्णवोंका श्रील गुरुदेवके दर्शनोंके लिए आगमन

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठमें भी विभिन्न मठोंके आचार्यों तथा अन्यान्य वैष्णवोंका आवागमन सब समय लगा रहा। श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ वृन्दावनसे श्रीपाद भक्तिविकास गोविन्द महाराज, श्रीगोवर्धन गौड़ीय मठसे श्रीपाद गोवर्धन दास बाबाजी, श्रीरूपानुग भजनाश्रमसे श्रीपाद भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज, श्रीपाद मथुरानाथ दास बाबाजी, श्रीकृष्णचैतन्य मठ वर्द्धमानके वर्त्तमान आचार्य श्रीपाद भक्तिजीवन आचार्य महाराज, श्रीभजनकुटि वृन्दावनके श्रीपाद गोपानन्द वन महाराज, श्रीचैतन्य मठके वर्त्तमान आचार्य श्रीपाद भक्तिप्रज्ञान यति महाराज तथा श्रीभक्तिसुधीर दामोदर महाराज, श्रीगोपीनाथ गौड़ीयमठके श्रीपाद भक्तिशरण दामोदर महाराज, इस्कॉनके श्रीपाद महानिधि महाराज तथा श्रीपाद मुकुन्द प्रभु, श्रीश्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराजके आश्रित श्रीपाद गोविन्द महाराज, श्रील भक्तिवैभव पुरी गोस्वामी महाराजके चरणाश्रित अनेक सन्यासियों तथा वृन्दाकुञ्जके श्रीभक्ति आलोक परमाद्वैती महाराज इत्यादि अनेक वैष्णव

भक्तोंने श्रीगुरुदेवके दर्शन किये। इसके अतिरिक्त बरसाना मानगढ़के श्रीरमेश बाबा इत्यादि वैष्णव संत भी श्रील गुरुदेवके दर्शनोंके लिये उपस्थित हुए।

सेवकोंके यत्नको देखकर श्रील गुरुदेवका चिन्तित होना

अपने सेवकोंको दिन–रात अपनी सेवा करते हुये देखकर श्रील गुरुदेवने एक दिन बहुत दुःखी होकर कहा–'मैं अब और इस संसारमें नहीं रहना चाहता।' सेवकोंके पूछनेपर कि–'आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?' श्रील गुरुदेवने उत्तर दिया–'क्योंकि मेरे कारण बहुतसे भक्तोंको कष्ट पहुँच रहा है।' सेवकोंने कहा–'गुरुदेव! इसमें कष्टकी कोई बात नहीं है, यह तो हम सबका सौभाग्य है कि हम आपकी कुछ सेवा कर पा रहे हैं। हमारी सेवामें जो त्रुटियाँ हों, आप उन्हें क्षमा कीजियेगा।' इस प्रकार देखा गया कि अपनी अस्वस्थ अवस्थामें भी श्रील गुरुदेव अपने सेवकोंके यत्नको देखकर उनके लिये चिन्तित हो जाते थे।

अति धीमी–गतिसे स्वास्थ्य लाभ और भक्तोंका आनन्दवर्धन

इस प्रकार श्रीगोवर्धनमें वास करते हुए श्रील गुरुदेव सबको आश्चर्यचकित कर देनेवाली गतिसे स्वस्थ हो रहे थे।

कार्तिकके अन्तमें श्रील गुरुदेवका आशीर्वचन

कार्त्तिक मासकी पूर्णिमाके दिन श्रील गुरुदेवने अपनी भजन कुटीरसे बाहर आकर सभी भक्तोंको सम्बोधित करते हुये कहा कि–"जिस प्रकार आप लोग इस वर्ष व्रजमण्डल परिक्रमामें आये हैं, उसी प्रकार आप सभी प्रत्येक वर्ष आते रहना और अभी कुछ ही महीनोंके बाद श्रीनवद्वीप–धाम परिक्रमा भी आने वाली है। इसलिये आप सब नवद्वीप परिक्रमामें भी भाग लेना, मैं भी आप सबको वहीं मिलूँगा।" श्रील गुरुदेवके यह वचन सुनकर सभी

गद्‌गद् होकर 'जय श्रील गुरुदेव', 'श्रील गुरुदेवकी जय' इत्यादि कहते–कहते क्रन्दन करने लगे।

कार्तिक व्रतकी समाप्तिपर पुनः दिल्ली गमन

कार्त्तिक मासके बाद भी कुछेक दिन श्रील गुरुदेव गोवर्द्धनमें ही रहे। उसके पश्चात् Philippines के Dr. Ray वं दिल्लीसे आये डॉ॰ रवीन्द्र प्रकाशके परामर्शके अनुसार श्रील गुरुदेवको पुनः दिल्ली ले जाया गया। दिल्लीमें श्रील गुरुदेव जनकपुरीमें स्थित श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठमें रहने लगे। वहाँ फिरसे भक्तोंका, डॉक्टरोंका आना जाना लगा रहा। एकदिन श्रील गुरुदेवने देश–विदेशसे आये हुए डॉक्टरोंको सम्बोधित करते हुए कहा–"आप सब लोग मेरे लिये इतना प्रयास कर रहे हैं, इसके लिये मैं आप सबको विशेष रूपसे धन्यवाद देता हूँ।" यह सुनकर डॉक्टरोंने कहा–"गुरुजी! यह तो हमारा परम सौभाग्य है कि आपने हमें अपनी सेवामें नियुक्त कर रखा है।"

"मुझे धामके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं मत ले जाओ"

तत्पश्चात् Dr. Ray के परामर्श अनुसार जब सेवकोंने श्रील गुरुदेवके समक्ष चिकित्सा हेतु इटलीमें जानेका प्रस्ताव रखा और कहा कि इसके लिए उन्होंने सभी प्रकारकी व्यवस्था भी कर ली है, तब श्रील गुरुदेवने कहा—'मेरी तो इच्छा नहीं है, पर फिर भी तुम लोग विचार करो।' किन्तु कुछ समयके बाद ही श्रील गुरुदेवने बहुत ही गम्भीर होकर कहा कि 'मुझे धामके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं मत ले जाओ। मैं विदेश नहीं जाना चाहता। मैं धाममें ही अपनी देह त्याग करना चाहता हूँ। मुझे फिरसे गोवर्द्धन ले चलो। सेवकोंने कहा कि 'गोवर्धनमें बहुत ठंड है।' तब श्रील गुरुदेवने कहा—'तो फिर मुझे नवद्वीप ले चलो।' सेवकोंने कहा कि 'वहाँ भी तो बहुत ठंड है।' यह सुनकर श्रील गुरुदेवने कहा—'तो फिर मुझे जगन्नाथ पुरी ले चलो।' श्रील भक्तिप्रमोद पुरी महाराजने भी तो श्रीजगन्नाथ पुरी धाममें ही अपनी अप्रकट लीला की थी तथा बादमें उनके सेवक उन्हें श्रीधाम मायापुर ले गये थे। तुम लोग भी मुझे जगन्नाथ पुरी ले चलो। यदि मेरा शरीर वहीं छूट जाँय, तो फिर मुझे वहाँसे गोवर्द्धन अथवा नवद्वीप जहाँ सम्भव हो, वहाँ ले जाना।'

श्रील गुरुदेवके इन वचनोंको सुनकर सेवकोंने जब पुनः श्रीगुरुदेवको इटली जानेके लिये प्रेरित करना चाहा, तो श्रील गुरुदेवने गम्भीरतापूर्वक फिर कुछ कहा—'इस विषयमें और अधिक बात न करके मेरे जगन्नाथ पुरी जानेकी व्यवस्था करो। मैं और कुछ भी सुननेके लिये प्रस्तुत नहीं हूँ। मेरी अवस्था भी हो आयी है, मैं सम्पूर्ण रूपसे भगवान्पर निर्भर होना चाहता हूँ।' श्रील गुरुदेवकी इच्छानुसार भक्तोंने विदेश जानेका विचार छोड़ दिया और श्रील गुरुदेवका आदेश पालन करते हुये श्रीजगन्नाथ पुरी जानेकी व्यवस्था करनी आरम्भ कर दी। श्रील गुरुदेवकी इस वार्त्तालापके ठीक ४ दिनके बाद श्रीजगन्नाथ पुरी जानेका विचार हुआ, क्योंकि एक तो हवाई जहाजसे जानेकी टिकट उपलब्ध नहीं थी और दूसरा यात्रा करनेकी तिथि भी उपयुक्त नहीं थी। अगले दिन श्रील गुरुदेवने सेवकोंसे पूछा कि 'पुरी जानेका क्या हुआ?' तो सेवकोंने कहा कि 'कल की तो टिकट नहीं मिल रही और परसों नवमी तिथि है, इसलिए हम दशमीके दिन जायेंगे।' यह सुनकर श्रील गुरुदेवने कहा—"परसों ही चलो।" सेवकोंने पुनः कहा कि 'परसों नवमी तिथि है, हमने आज तक कभी भी नवमीको यात्रा नहीं की। नवमी तिथि यात्राके लिये शुभ नहीं होती।' श्रील गुरुदेवने कहा—**"कभी तो नवमीमें यात्रा नहीं की। इस बार करके देखते हैं।"** श्रील गुरुदेवके इस निर्णयमें क्या गूढ़ रहस्य छिपा था, मन–ही–मन उन्होंने क्या निश्चय कर रखा था, कौन जान सकता था?

अन्ततः श्रील गुरुदेवकी इच्छानुसार नवमी तिथिके दिन ही यात्राकी समस्त तैयारियाँ की गयीं।

विप्रलम्भ–क्षेत्रमें श्रीमन् महाप्रभुके भावोंमें विभावित होकर वास

इस प्रकार श्रील गुरुदेव श्रीजगन्नाथ पुरी धाममें चक्रतीर्थमें स्थित श्रीजयश्री–दामोदर गौड़ीय मठमें पधारे। भक्तोंने विधिपूर्वक श्रील गुरुदेवका स्वागत किया। श्रीजगन्नाथ पुरीमें भी अन्य स्थानोंकी भाँति श्रील गुरुदेवके सेवकोंके द्वारा क्रमानुसार २४ घंटोंकी सेवा

सम्पन्न होने लगी। समय–समयपर सेवक श्रील गुरुदेवकी भजन कुटीरमें कीर्त्तन तथा ग्रन्थ–पाठ इत्यादि करते थे। कभी–कभी जब श्रील गुरुदेव देखते कि सेवक लोग खाली बैठे हैं, तो कहते 'खाली मत बैठो, उपस्थित अन्य भक्तको कथा सुनाओ, कथा सुनाना भी भक्तिका अङ्ग है।' एक दिन श्रील गुरुदेवने समुद्र की ओर देखते हुए कहा कि 'मैं पहले जब भी श्रीजगन्नाथ पुरी आता था, तो सपरिकर श्रीमन् महाप्रभुके समुद्र स्नान तथा श्रील हरिदास ठाकुरके चरणामृतकी बात स्मरण करके प्रायः प्रतिदिन समुद्रमें स्नान करता था, क्या तुम लोग वहाँसे जल लाकर मुझे स्नान करा सकते हो?' उसी दिनसे लेकर जब तक श्रील गुरुदेव प्रकट रहे, तब तक नित्यप्रति श्रील गुरुदेवको समुद्रके जलसे स्नान कराया जाता था। वे प्रातःकाल एवं सन्ध्याके समय मठके प्रांगणमें ही सेवकोंकी सहायतासे चलते थे और कभी बाहरके आँगनमें बैठकर महातीर्थ समुद्रका दर्शन करते तथा भक्तोंको दर्शन देते थे।

एक दिन श्रील गुरुदेवने समुद्रका दर्शन करते हुये कहा—"यह वही स्थान है जहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभु महाभावकी दशामें विभावित होकर कूर्म–आकृति धारणकर जलमें बहते हुये आ पहुँचे थे।"

श्रीजगन्नाथ पुरी धाममें श्रील गुरुदेव प्रायः मौन ही रहते थे। मानो वे किसी गम्भीर चिन्तामें हों।

श्रीजगन्नाथ पुरीमें विशेषरूपसे लक्ष्य किया गया कि यदि कोई बहुत दूर समुद्र तटसे भी श्रील गुरुदेवके उद्देश्यसे प्रणाम करता, तो श्रील गुरुदेव यथासम्भव हाथ उठाकर आशीर्वाद प्रदान करते थे। और एक बात, श्रील गुरुदेवके प्रकटकालीन अन्तिम दिवस तक भी जब कोई भी प्रसादादि उनके समक्ष लाया जाता, तब श्रील गुरुदेव पहले हाथ जोड़कर उसकी वन्दना करते तथा तब कहीं कुछ ग्रहण करते। दिल्ली, गोवर्धन तथा जगन्नाथ पुरीमें बहुत बार ऐसा समय आया, जब श्रील गुरुदेवके अन्तर्दशामें आविष्ट रहनेके कारण सेवकोंको श्रील गुरुदेवको एक चम्मच कुछ खिलानेके लिये लगभग ३० से ४५ मिनट तक लग जाते थे।

भुवनेश्वरका ठववा थ्पत (पुस्तक मेला)

जब श्रील गुरुदेव जगन्नाथ पुरीमें थे, तभी भुवनेश्वरमें वार्षिक पुस्तक मेला आरम्भ हुआ था। जयश्री–दामोदर गौड़ीय मठ, पुरीके भक्तोंने प्रतिवर्षकी भाँति पहलेसे ही वहाँ श्रील गुरुदेवके ग्रन्थोंके प्रचार हेतु एक Bookstall की व्यवस्था की हुई थी। जब कुछ भक्तोंने श्रील गुरुदेवसे पुस्तक मेलेमें जानेको अनुमति एवं आशीर्वाद माँगा, तो श्रीलगुरुदेवने अत्यधिक प्रसन्न होते हुए उन्हें जानेकी अनुमति एवं आशीर्वाद प्रदान किया और फिर प्रतिदिन पुस्तक मेलेके विषयमें जानकारी लेते रहे। जब भी जयश्री–दामोदर गौड़ीय मठ, पुरीके किसी भक्तको अपने

कक्षमें देखते, तभी जिज्ञासा करते कि 'ये पुस्तक मेलेमें क्यों नहीं गया।' श्रील गुरुदेवकी बात सुनकर वहाँ उपस्थित देशी–विदेशी सभी भक्तोंकी पुस्तक मेलेमें जानेकी इच्छा चौगुनी बढ़ जाती।

पुरीके सारस्वत गौड़ीय वैष्णवों द्वारा श्रील गुरुदेवके दर्शन

श्रीजगन्नाथ पुरीमें भी अन्यान्य गौड़ीय मठोंके अनेक संन्यासी तथा ब्रह्मचारी भक्तोंने आकर श्रील गुरुदेवके दर्शन किये, जिनमेंसे प्रमुख हैं—श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके श्रीपाद भक्तिविवेक परमार्थी महाराज, श्रीपाद भक्तिसम्बन्ध शुद्धाद्वैती महाराज, श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठके श्रीपाद भक्तिशरण वामन महाराज, श्रीपाद गोपीनाथ ब्रह्मचारी, श्रीनीलाचल गौड़ीय मठके श्रीमान् सच्चिदानन्द ब्रह्मचारी तथा श्रीकृष्ण–चैतन्य मिशनके श्रीपाद भक्तिविचार विष्णु महाराज और श्रीपाद भक्तिस्वरूप श्रीधर महाराज इत्यादि।

श्रीगौरहरिके चिन्तनमें उन्हींके वर्णका तदात्म प्राप्त करना

एक विशेष बात देखनेमें आयी कि जबसे श्रील गुरुदेव श्रीजगन्नाथ पुरी धाममें आये उनका तेज बढ़ता गया, उनका वर्ण और भी अधिक गौर होता गया मानो वे अपने इष्टदेव श्रीगौरहरि एवं अपनी अधीश्वरी श्रीमती राधारानीके तीव्र–चिन्तनमें निमग्नता हेतु उन्हींके वर्णके साथ तदात्म प्राप्त कर रहे हों।

अन्तर्धान–लीला

इस प्रकार दिन क्रमशः व्यतीत हो रहे थे। अंगेजीके अनुसार २९ दिसम्बर प्रातः लगभग दो बजे जब श्रील गुरुदेव जागे, तो श्रील गुरुदेवके सेवकने उनसे पूछा—"श्रील गुरुदेव, क्या आप जल पियेंगे?" उत्तरमें श्रील गुरुदेवने कहा कि 'पिलाओ।' सेवकने गुरुदेवको उठाकर बैठाया, तो श्रील गुरुदेवने कहा—'पहले पैखाना जाना चाहता हूँ।' सेवकने अपने साथ उपस्थित अन्य भक्तोंकी सहायतासे श्रील गुरुदेवको पैखाना कराया। तत्पश्चात् पुनः श्रील गुरुदेवको बिस्तरपर बैठा दिया गया। अभी सेवकने श्रील गुरुदेवको Glucerna मिले जलको पिलाना प्रारम्भ ही किया था कि श्रील गुरुदेवने कहा—'मुझसे बैठा नहीं जा रहा है।' श्रील गुरुदेवकी बात सुनते ही उसने उन्हें लिटा दिया। श्रील गुरुदेवने इङ्गितके द्वारा करवट बदलनेके लिये कहा। जैसे ही सेवकने श्रील गुरुदेवकी करवट बदली, उसी समय श्रील गुरुदेवने मुखसे एक दीर्घ श्वास लिया और श्रील गुरुदेवकी मुखकी आकृतिमें भी कुछ परिवर्तन दिखायी दिया। Pulse और oxygen देखनेपर उसमें उतार–चढ़ाव देखनेपर सेवकने तुरन्त ही श्रीपाद माधव महाराज और श्रीमान् श्रीब्रजनाथ प्रभु तथा दो–चार मिनटके बाद अन्य कुछ सेवकोंको भी बुला लिया। श्रील गुरुदेव बहुत ही शान्त दिखायी दे रहे थे तथा उपस्थित भक्तोंको देख रहे थे। यद्यपि बाहरी रूपसे कदाचित ऐसा प्रतीत नहीं हो रहा था कि वे अपनी अप्रकटलीला प्रकाशित करनेवाले हैं, तथापि मशीनमें pulse तथा oxygen को बहुत कम होता देखकर सभी भक्तोंने उच्च स्वरसे हरिनाम करना आरम्भ कर दिया। उस समय श्रील गुरुदेवकी जिह्वा भी ऊपर–नीचे होने लगी और ऐसा स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि वे भी हमारे साथ–साथ महामन्त्रका जप कर रहे हैं। देखते–ही–देखते अपने अप्रकट होनेसे प्रायः एक मिनट पहले उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये तथा अन्तमें उनकी जिह्वा भी क्रमशः शान्त हो गयी। घड़ीके अनुसार उस समय प्रातः तीन बजेका समय था।

धीरे–धीरे मठमें उपस्थित सभी संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा अन्यान्य भक्त श्रील गुरुदेवके कक्षमें उपस्थित हुए।

सेवकोंकी दशा

श्रीगुरुदेवको देखकर सभी उच्चस्वरसे क्रन्दन करने लगे। तत्पश्चात् गौड़ीय वैष्णव नियमानुसार भक्तोंने श्रील गुरुदेवके श्रीअङ्गको स्वच्छ जलसे स्नान कराके उन्हें नये वस्त्र पहनाये, द्वादश तिलक लगानेके बाद श्रील गुरुदेवको पद्मासनमें बैठा दिया गया। सभी भक्तोंने एक–एक करके

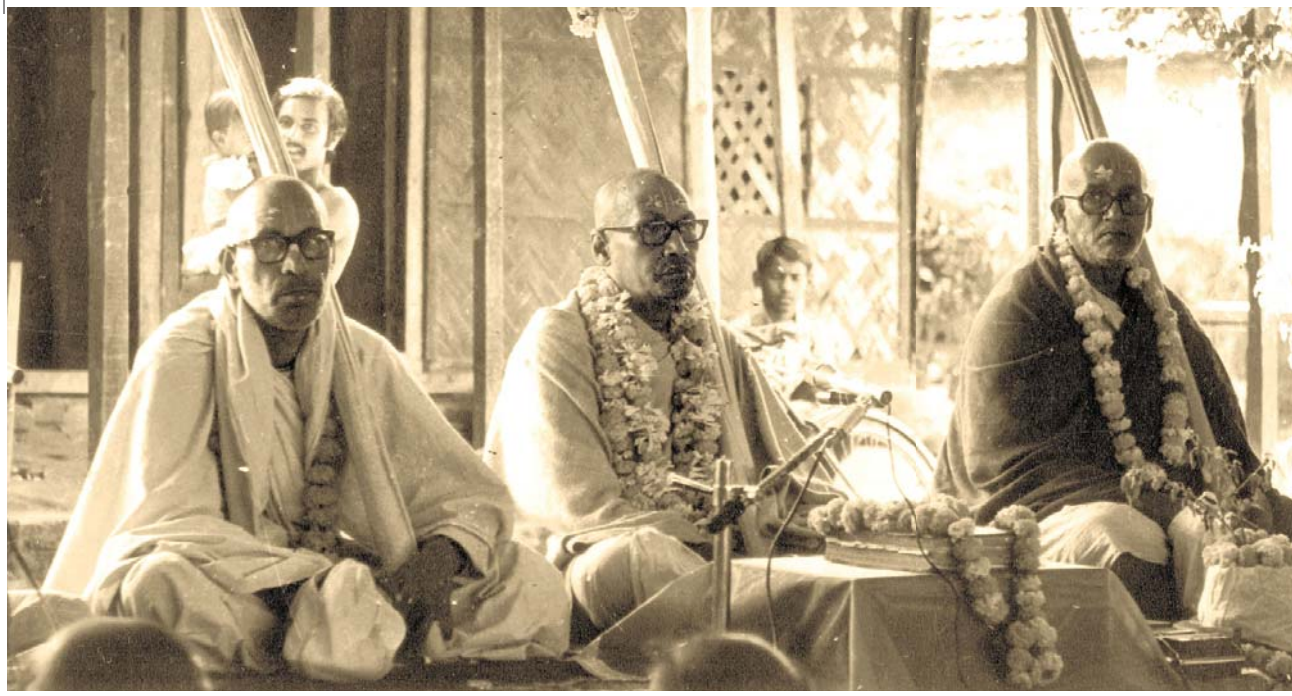

'श्रीगुरुदेवाष्टकम्', गुरु–परम्परा कीर्त्तन, 'जे आनिल प्रेमधन करुणा प्रचुर' तथा श्रीलगुरुदेवको प्रिय लगनेवाले 'श्रीरूप मञ्जरी पद', 'देखिते–देखिते भुलिब वा कबे', 'चिन्तामणिमय राधाकुण्डतट', 'श्रीनन्दनन्दनाष्टकम्', 'श्रीराधाकृपाकटाक्षस्तवराज', 'श्रीदामोदराष्टकम्' तथा श्रील गुरुदेवको अतिप्रिय लगनेवाले Australian धुनमें महामन्त्रके कीर्त्तनके साथ–साथ और अनेक कीर्त्तन किये। सूचना मिलते ही श्रीजगन्नाथ पुरी स्थित प्रायः सभी मठोंके भक्तगण भी श्रील गुरुदेवके दर्शनोंके लिये उपस्थित होने लगे। 'श्रीगुरुचरणपद्म केवल भक्तिसद्म' कीर्त्तनके साथ–साथ उपस्थित सभी भक्तोंने क्रन्दन करते हुए श्रील गुरुदेवकी आरती उतारी। श्रील गुरुदेवके अप्रकट होनेका समाचार कुछ ही क्षणोंमें पूरे विश्वमें फैल गया और हजारों भक्तगण श्रील गुरुदेवके विरहमें कातर हो उठे।

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव तिथिके दिन ही अन्तर्धान

जिस दिन श्रील गुरुदेव अप्रकट हुए उसी दिन ही श्रील गुरुदेवके ज्येष्ठ गुरुभ्राता नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव तिथि थी तथा श्रीजयश्री दामोदर गौड़ीय मठके भक्तोंने इस शुभ तिथिके लिए पहलेसे समस्त तैयारी कर रखी थी तथा पुरीके समस्त सारस्वत गौड़ीय भक्तोंको हरि–गुरु कथा कीर्तन एवं जगन्नाथ महाप्रसादके लिए निमन्त्रण दे रखा था। श्रील गुरुदेव द्वारा इसी शुभ तिथिके उपस्थित होनेपर अप्रकटलीला प्रकाशित करनेसे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि जैसे श्रील भीष्म पितामह उत्तरायणकी अपेक्षा कर रहे थे, उसी प्रकार श्रील गुरुदेव भी चुपचाप अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्रील वामन गोस्वामी महाराजजीकी इसी शुभ आविर्भाव तिथिकी अपेक्षा ही कर रहे थे, जैसे ही तिथि उपस्थित हुई, बिना किसी विलम्बके उन्होंने अप्रकट लीला प्रकाशित की। इससे पता चलता है कि गौड़ीय वेदान्त समितिके तीन स्तम्भ श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज एवं श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजका एक दूसरेके प्रति कितना स्नेह एवं प्रगाढ़ सम्बन्ध था कि श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजने श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजकी अप्रकट तिथिमें ही अपनी अप्रकट लीला प्रकाशित की तथा श्रील गुरुदेवने श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी आविर्भाव तिथिमें ही अपनी अप्रकट लीला प्रकाशित की।

नैश–लीलामें प्रवेश

परमाराध्य श्रील गुरुदेवने रात्रि ३.०० बजे श्रीराधारमणविहारजीकी नित्यलीलामें प्रवेश किया है। श्रील कृष्णदास–कविराज गोस्वामीपादके श्रीगोविन्द–लीलामृतम् और श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तिपादके श्रीकृष्ण–भावनामृतम्के अनुसार यह समय श्रीश्रीराधाकृष्णकी अष्टकालीयलीलाके अन्तर्गत नैश–लीलामें आता है। रात्रि दस बजकर अड़तालीस मिनटसे प्रारम्भकर तीन बजकर छत्तीस मिनट तक अर्थात् चार घंटे और अड़तालीस मिनट तकका समय ही नैशकालीन लीलाका समय है, जो कि श्रीराधाकृष्णकी सबसे लम्बी और अत्यन्त निभृत निकुञ्ज लीला है ।

जब श्रीकृष्णके परिवारके सभी सदस्य रात्रिमें विश्राम कर रहे होते हैं, तब वे गुप्त–रूपसे श्रीनन्दग्राममें स्थित अपने भवनको त्यागकर मधुर–सुगन्धित वृन्दावनके विपिनमें प्रवेश करते हैं। उस समय श्रीवृन्दावन मन्द–मन्द पवनके द्वारा लायी गयी वनके फूलोंकी सुगन्धसे सुवासित हो रहा होता है, उस सुगन्धसे मत्त हुए भ्रमर गुञ्जन करते हुए अपने मार्गको भूल जाते हैं, प्रणय–पीडित हंस और बगुले वहाँ स्थित सरोवरोंमें मधुर विहार करते हैं और पक्षी आनन्दसे भरकर चारों दिशाओंमें जय ध्वनि करते हैं। ऐसे समयमें श्रीकीर्तिदाकी दुलारी श्रीमती राधाजी भी अपने ससुराल जावटसे चुपकेसे निकलकर अपने प्राण प्रियतम श्रीकृष्णसे पूर्व निर्धारित स्थानपर मिलनेके लिए अभिसार करती हैं।

श्रीश्रीराधाकृष्णका मधुर–मिलन होता है। वे रास–लीला–विहार आदि करते हैं जिसके अन्तर्गत वन भ्रमण, अद्भुत दृश्योंका दर्शन और एक–दूसरेके

रूप–गुण–माधुर्यका वर्णन, वन फूलोंसे शृंगार, नृत्य–संगीत तथा वाद्य–यन्त्रोंका वादन, जल विहार तथा मधुपान आदि अनेकानेक लीलाएँ हैं। जगत्को मोहित करनेवाली ऐसी लीलाओंको देखकर देवताओंकी महिषियाँ, अप्सराएँ तथा गन्धर्व–पत्नियाँ आदि सभी मोहको प्राप्त करते हैं। वे भी 'जयकार' देते हुए आकाशसे फूलोंकी वर्षा करते हैं, दुन्दुभि आदि बजाते हैं।

रास–लीलाके परिश्रमसे क्लान्त होकर श्रीकृष्ण और गोपियाँ विश्राम करते हैं। मञ्जरियाँ उनके लिये विविध प्रकारके फल–पेय आदि लेकर आती हैं। उस समय श्रीकृष्णके प्रेम–रसको वर्धित करनेके लिए सखियाँ मधुपान लीला आदि करती हैं जिससे वे श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करनेवाली और भी अन्तरङ्ग–लीलाओंका सम्पादन करती हैं। उसके बाद श्रीराधाकृष्णको श्रीयमुनामें जल–क्रीड़ा आदि सम्पादन कराती हैं। और फिर मञ्जरियाँ उन्हें तटपर ले आकर उनका शृंगार सम्पादन करती हैं। तत्पश्चात् श्रीश्रीराधाकृष्णको एक निभृत–निकुञ्जमें ले जाकर उनकी शयन लीला सम्पादन करती हें। उस समय श्रीराधाकृष्णकी अत्यन्त प्रिय सखियाँ उनके नव–पल्लवसे भी अत्यन्त कोमल तथा स्निग्ध दोनों चरणकमलोंको अपनी गोदमें लेते हुए अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनका पादसम्वाहन करती हैं। उस समय अन्य कुछ मञ्जरियाँ उनका वीजन करती हैं, तो अन्य कोई युगल–किशोरको अत्यन्त सुगन्धित द्रव्योंसे युक्त पानकी बीड़ी प्रस्तुत करती हैं। श्रीश्रीराधाकृष्ण उन दासियोंकी सेवासे अपनी क्लान्तिको दूरकर शयन करते हैं। इस अन्तरङ्ग सेवामें श्रीमतीजीकी प्रियनर्म सखियोंका भी प्रवेश नहीं है।

जब श्रीश्रीराधारमणविहारी सुखपूर्वक शयन कर रहे होते हैं, उस समय उनकी प्रिय मञ्जरियाँ अपने प्रेमपूर्ण अश्रुओंसे उनके दोनों चरणकमलोंका अभिषेक करती हैं। उस समय वे श्रीश्रीरमणविहारीजीके श्रीचरणकमलोंकी पूजा इस प्रकार करती हैं—पाद्य अपने प्रेमभरे अश्रुओंसे, धूप अपने सुगन्धित श्वासोंसे, दीप अपने ज्योति छटासे देदीप्यमान नख–चन्द्रोंसे, पुष्प अपनी मदीयतामयी प्रेमपूर्ण दृष्टिसे और उनकी आरती अपने महाभावमयी प्रेमभरी प्राणवायुसे युक्त मुसकान रूपी कर्पूरसे युक्त होकर करती हैं।

श्रील गुरुदेव ऐसे शुभ समयपर अपनी गुरुरूपा सखिके इङ्गितसे और आह्वानसे श्रीश्रीराधारमणविहारीजीकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। इसलिए हम अपने श्रील गुरुदेवको भी ऐसे ही अपने प्राणप्रिय श्रीश्रीराधारमणविहारजीकी सेवा करते हुए भावना करेंगे। श्रीविनोद मञ्जरी, श्रीनयन मञ्जरी, श्रीरूप और रति मञ्जरीके आनुगत्यमें तथा श्रीललिता देवीकी अध्यक्षतामें हमारे श्रील गुरुदेव अपने नित्य मञ्जरी स्वरूपमें अर्थात् अपने नित्य **श्रीरमणमञ्जरी स्वरूपमें** स्थित होकर श्रीश्रीराधारमणविहारीजीकी नैश लीलामें प्रवेशकरअष्ट प्रहर (२४ घंटे) भावपूर्ण सेवामें नित्य विराजमान हैं।

श्रील गुरुदेव हमें श्रीमन् महाप्रभु द्वारा उपदिष्ट यही व्रजभक्ति देनेके लिए और हमें उसमें प्रवेश करनेका अधिकार प्रदान करनेके लिए ही श्रीश्रीराधाजीके आदेश तथा श्रीमन् महाप्रभुकेआदेशसे इस पृथ्वीपर आविर्भूत हुए थे। वे इससे कम कुछ भी नहीं देना चाहते थे। वे वास्तवमें 'भूरिदा' और 'महा–महा–वदान्य' हैं।

विप्रलम्भ क्षेत्रमें अपनी लीलाका समापन

श्रीचैतन्य महाप्रभुने भी अपने जीवनके अन्तिम १८ वर्ष श्रीजगन्नाथ पुरीमें श्रीराय रामानन्द और श्रीस्वरूप दामोदर प्रभुके साथमें श्रीमतीजीके विप्रलम्भमय भावोंका आस्वादन करते हुए और उनमें ही निमग्न होकर बिताये थे। उस समय श्रीराय रामानन्द और श्रीस्वरूप दामोदर प्रभु श्रीमन्महाप्रभुके भावोंके अनुरूप उन्हें श्रीचण्डीदास और श्रीविद्यापति आदि वैष्णव कवियोंकी पदावली आदि का श्रवण कराते थे और उनके भावोंकी पुष्टि करते थे। श्रीमन्महाप्रभुने ऐसे विप्रलम्भभावोंका आस्वादन करते हुए श्रीटोटा गोपीनाथमें प्रविष्ट होकर अपनी लीला अन्तर्धान की। श्रील गुरुदेवने भी विप्रलम्भमय भावोंमें विभोर होकर अपनी लीलाका संगोपन उसी विप्रलम्भ क्षेत्र श्रीजगन्नाथ

पुरीमें श्रीजगन्नाथजीके प्राकट्य स्थल श्रीचक्रतीर्थपर किया है।

इस प्रकार श्रील गुरुदेवके चक्रतीर्थपर अप्रकटलीला प्रकाशित करनेसे, अब आश्रित जनोंके लिए चक्रतीर्थ एक महातीर्थ बन गया है, क्योंकि इस 'चक्र' तीर्थ पर ही महाभागवत रसिकजन—श्रील गुरुदेवको 'चक्र' नामसे 'चक्रवर्त्ति—लीला' अर्थात् 'रासलीला' का निरन्तर उद्दीपन होता रहा। अतः उस रासलीलामें आविष्टावशतः श्रील गुरुदेवने रासलीला काल रात्रि ३ बजे उसी लीलामें प्रवेश किया।

श्रीपुरीधामसे श्रीधाम नवद्वीप की ओर यात्रा

श्रील गुरुदेवने पुष्पोंसे सुसज्जित मठकी गाड़ीमें, उसी पद्मासनमें बैठकर शुभ कृष्ण नवमीको अपने परमाराध्य श्रील गुरुपादपद्म एवं ज्येष्ठ सतीर्थ द्वयके नित्य सान्निध्य प्राप्ति हेतु प्रातःकाल प्रायः ८.०० बजे श्रीजगन्नाथ पुरीसे नवद्वीपके लिये यात्रा आरम्भ की। श्रील गुरुदेवकी सुसज्जित गाड़ीके पीछे—पीछे अन्य छह गाड़ियोंमें भक्तजन बैठकर उनका अनुगमन करने लगे।

श्रील गुरुदेवने सबसे पहले नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुरकी समाधिके सामने जाकर उनसे विदायी ली। इसी बीच जिस स्थानपर श्रीमन् महाप्रभुने श्रील हरिदास ठाकुरकी अप्राकृत देहको स्नान कराया था, एक भक्तने समुद्र जाकर उसी स्थानसे जल संग्रह किया। श्रीलगुरुदेवके दिव्य कलेवरपर उस जलको छिड़का गया। तत्पश्चात् श्रील गुरुदेव चटक पर्वत, श्रीटोटा गोपीनाथ, यमेश्वर टोटा, श्रीसिद्धबकुल एवं गम्भीराकी बाहरसे परिक्रमा करते हुये जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके जन्मस्थान तथा उसके बाद श्रीजगन्नाथ मन्दिरके सिंहद्वारपर उपस्थित हुए। जहाँ पहलेसे कुछ भक्तगण श्रीजगन्नाथदेवकी प्रसादी माला, चन्दन, प्रसादी वस्त्र और महाप्रसाद तथा अन्यान्य उन सभी सामग्रियोंको लेकर उपस्थित थे, जो श्रीमन् महाप्रभुने नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुरकी समाधिके समय उन्हें प्रदान की थी। इस

प्रकार श्रील गुरुदेवने श्रीजगन्नाथपुरीमें श्रीमन् महाप्रभु एवं उनके परिकरोंसे विदायी लेनेके उपरान्त श्रीनवद्वीप धामकी यात्रा प्रारम्भ की।

मार्गमें भुवनेश्वर, जाजपुर आदि स्थानोंपर श्रील गुरुदेवके अनेकानेक आश्रित भक्तोंने श्रील गुरुदेवका दर्शन किया और क्रन्दन करते हुये उनके श्रीचरणकमलोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पित की। बालेश्वर पहुँचनेपर कुछ भक्तोंने श्रील गुरुदेवको श्रीक्षीरचोर गोपीनाथजीकी प्रसादी माला एवं खीर प्रसाद अर्पण किया।

श्रीजगन्नाथ पुरीसे श्रीनवद्वीप धामकी यात्रा पूर्ण करनेमें लगभग चौदह घंटे लग गये। रातके लगभग १०:३० बजे श्रीनवद्वीप धाम स्थित श्रीश्रीकेशव गौड़ीय मठमें पहुँचनेपर देखा गया कि हजारोंकी संख्यामें भक्त—मण्डली क्रन्दन करते हुए श्रील गुरुदेवकी प्रतीक्षा कर रही हैं। श्रील गुरुदेवकी गाड़ीके मठके समीप पहुँचनेपर सभीने आकर

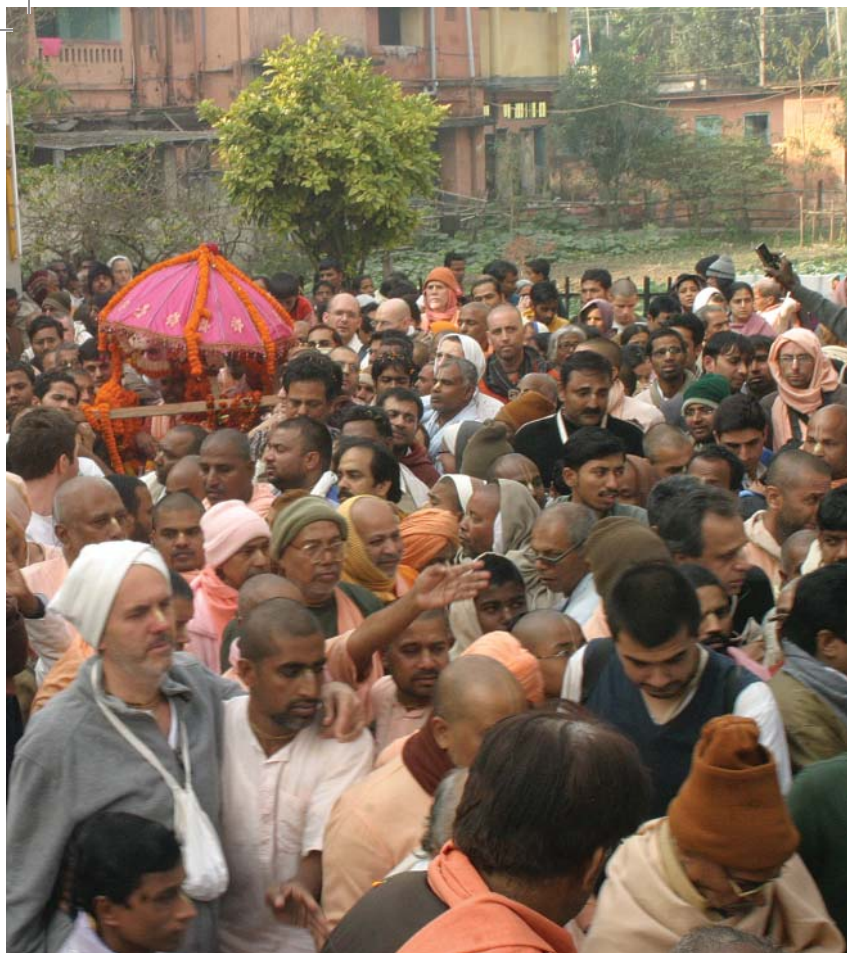

गाड़ीको घेर लिया और उच्चस्वरसे क्रन्दन करते हुये श्रील गुरुदेवकी जय जयकार करने लगे। श्रीधाम नवद्वीपमें उपस्थित भक्तोंमें जो विरह–विह्वलता दिखलायी दी थी, उसे शब्दोंके द्वारा वर्णन कर पाना सम्भवपर नहीं है। श्रील गुरुदेवको नाट्य मन्दिरमें व्यास–आसनपर पद्मासनमें बैठाया गया तथा 'श्रीगुरुचरणपद्म' कीर्तनके साथ उनकी आरती उतारी गयी।

देश–विदेशके भक्तोंकी श्रीधाम नवद्वीप की ओर यात्रा

श्रील गुरुदेवका एक वैशिष्ट्य था कि वे सभीके साथ अन्तरङ्ग व्यवहार रखते थे। इसलिए श्रील गुरुदेवका असंख्य भक्तोंके साथ सम्बन्ध था। देश–विदेशके विभिन्न स्थानोंसे भक्तोंके आगमनकी प्रतीक्षा की जा रही थी, जिससे सभी श्रील गुरुदेवके अन्तिम दर्शन कर सकें। इसलिये शुभ कृष्ण नवमीकी उस रात श्रील गुरुदेवके दिव्य कलेवरको नाट्य मन्दिरमें ही रखा गया। उस रातको बहुतसे स्थानोंसे लगभग दो हज़ार भक्तजन रेल, विमान, गाड़ी आदि जिस किसी भी प्रकारसे सम्भवपर हुआ, शीघ्रातिशीघ्र नवद्वीपमें उपस्थित होने लगे। श्रील गुरुदेवके अन्तिम दर्शन करते हुये मठके संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा अन्यान्य भक्तोंने नाट्य मन्दिरमें बैठकर सम्पूर्ण रात्रि विरह–सूचक कीर्त्तन किये। बिना किसी रोक–टोकके सभीने श्रीलगुरुदेवके चरणकमलोंमें अपनी–अपनी हार्दिक श्रद्धा–पुष्पाञ्जलि समर्पित की।

नगर संकीर्त्तन

३० दिसम्बर प्रातःकाल लगभग ८.०० बजे श्रील गुरुदेव पुष्पोंसे सुसज्जित पालकीमें बैठकर, कीर्त्तनरत हजारों भक्तोंको अपने साथ लेकर श्रीनवद्वीप धाम स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठकी ओर चल दिये। तब एक अपूर्व दृश्य दिखलायी दे रहा था—सभी नवद्वीपधाम वासी अपने–अपने घरोंसे निकलकर श्रील गुरुदेवका दर्शनकर उन्हें दूरसे ही प्रणाम करते हुए, उनकी आरती उतारने लगे और रोते–रोते उनकी जयकार देने लगे। श्रील गुरुदेवने अपने परमाराध्य गुरुपादपद्म श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज, सतीर्थ श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज, जगद्गुरु श्रील प्रभुपाद सरस्वती ठाकुर, श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीश्रीराधाविनोदविहारी एवं श्रीलक्ष्मीवराहदेवके दर्शन करके उन्हें अपने आगमनकी वार्त्ताके विषयमें बतलाया।

तत्पश्चात् श्रील गुरुदेवके गुरुभाईयोंने एवं श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके प्रायः सभी भक्तोंने मिलकर श्रील गुरुदेवकी आरती की। वहाँ कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था जो श्रील

गुरुदेवको उनके गुरुदेवके सामने देखकर क्रन्दन न कर रहा हो। सभीके नेत्रोंसे अश्रुकी धारा प्रवाहित हो रही थी।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें अपने गुरुपादपद्मके दर्शन एवं उन्हें प्रणाम करनेके पश्चात् श्रील गुरुदेव श्रीगङ्गाजीका दर्शन करनेके लिये गये। इस नगर–संकीर्त्तनका क्रम ठीक उसी प्रकार हो रहा था जिस प्रकार श्रील गुरुदेव अपने प्रकट कालमें श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाके समय करते थे। एक बात और, जनसमूहको देखकर भी ऐसा ही प्रतीत हो रहा था, मानो श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा चल रही हो।

समाधि

इसके बाद प्रातः लगभग ११.०० बजे श्रील गुरुदेव श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उपस्थित हुए, जहाँ भक्तोंने उनका पञ्चामृत, गङ्गा जल, गुलाब जल, अगरु, तेल आदिसे अभिषेक किया, उनके श्रीअङ्गपर द्वादश तिलक करके उन्हें नये वस्त्र पहनाये तथा उनके वक्षःस्थलपर चन्दनके द्वारा समाधिका मन्त्र लिखा और विभिन्न स्थानोंसे उपस्थित भक्तोंने भोग–आरती इत्यादिकी सम्पूर्ण व्यवस्थाकी।

श्रीलगुरुदेव देश–विदेशसे आये अनुगत भक्तोंके अतिरिक्त श्रीधाम नवद्वीप, मायापुर तथा गोद्रुम स्थित अनेक मठोंके संन्यासी तथा ब्रह्मचारी और धामवासी अनेक स्थानीय भक्तोंके समक्ष कोलद्वीप स्थित अभिन्न–गोवर्द्धन, श्रीकुलिया पर्वतके सानुप्रदेशकी रासस्थली श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें अपनी भजन कुटीरसे संलग्न स्थानपर ठीक उन्हीं विधि–विधानोंके अनुसार समाधिस्थ हुए, जिनका 'श्रीमन् महाप्रभुके द्वारा श्रील हरिदास ठाकुरकी समाधि' के प्रसङ्गके विषयमें श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने वर्णन किया है। अर्थात् श्रील गुरुदेव श्रीजगन्नाथ देवके प्रसाद, वस्त्र, दातुन, प्रसादी माला, चन्दनको धारणकर समाधिस्थ हो गये। भक्तोंने श्रील गुरुदेवको श्रीक्षीरचोरा गोपीनाथके प्रसाद, जयपुर स्थित श्रीगोविन्ददेवजीके प्रसादी वस्त्र इत्यादि अर्पित किये। समाधिके समय सभी प्रान्तोंसे आये भक्तोंने अपनी–अपनी श्रद्धाके अनुसार भाग लिया। चारों–ओरसे देख रहे भक्तोंने श्रील गुरुदेवको समाधि प्रदान करते हुए उनपर पुष्पों तथा धामकी रजकी वर्षा की।

तत्पश्चात् सभी भक्तोंने विरहभावसे भरकर 'जे आनिल प्रेमधन' आदि कीर्तन किया। धीरे–धीरे समाधिको धामकी रजसे भरा गया और उसके ऊपर वृन्दादेवीको

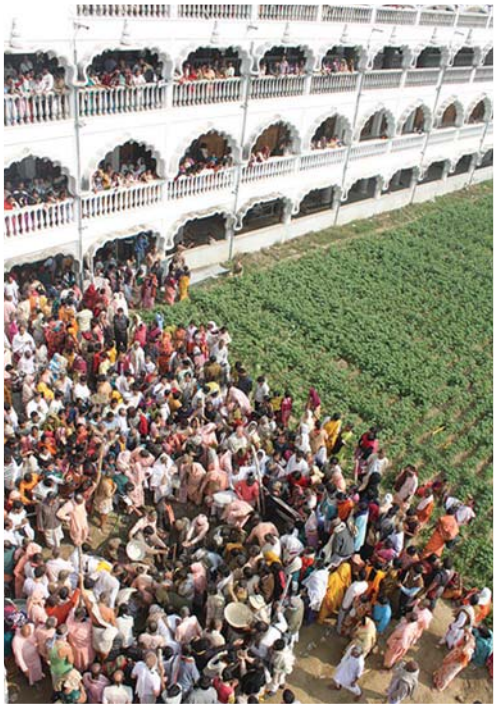

स्थापित किया गया। क्रमशः समाधि स्थलीको फूलोंसे सजाया गया तथा अनेक भक्तोंने सुगन्धित अगरबतियों, दीप आदिके द्वारा अपनी भावनाओंको व्यक्त किया। सभी भक्तोंने मिलकर कीर्त्तन करते हुए श्रील गुरुदेवकी परिक्रमा की। किसी–किसी भक्तने बैठकर श्रीचैतन्यचरितामृतमेंसे 'नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुरके निर्याणके प्रसङ्ग' का पाठ किया। उपस्थित सभी भक्तोंको सुस्वादु प्रसादका परिवेशन किया गया। अगले दिन श्रील गुरुदेवकी समाधिके चारों ओर एक अस्थायी मन्दिर बना दिया गया।

अभी उसी मन्दिरमें ही प्रतिदिन नियमित रूपसे श्रीश्रील गुरुपादपद्मके समाधि–पीठमें उनकी नित्य पूजा–अर्चन, भोग राग और आरति आदि सम्पादित हो रहे हैं।

इस प्रकार श्रील गुरुदेवने अपनी अन्तिम यात्राको व्रजमण्डलके अन्तर्गत श्रीगोवर्धनसे आरम्भकर क्षेत्रमण्डलमें पुरीधाम और अन्तमें श्रीगौरमण्डलके अन्तर्गत नवद्वीप धाममें शुभ विजय किया। इस प्रकार वर्तमानकालमें श्रीव्रजमण्डल, श्रीक्षेत्रमण्डल और श्रीगौरमण्डलके सार्वभौम–वैष्णवत्वको प्राप्त करते हुए वे नित्य ही अभिन्न व्रज श्रीनवद्वीप धाममें समाधिस्थ हुए।

समाधिका अर्थ

श्रील गुरुदेवने स्वयं कई वर्षों पहले समाधिका अर्थ इस प्रकार बतलाया था—"'सम' अर्थात् समान और 'धी' अर्थात् बुद्धि अर्थात् शुद्धभक्त अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीश्रीराधाकृष्णके पार्षदोंके जैसे स्वरूपमें अवस्थित होकर उन पार्षदों जैसी बुद्धि, सौन्दर्य, गुण आदिसे युक्त हो जाते हैं। हमारी परम्परामें आराध्यादेवी श्रीमती राधारानी हैं और जब हमारे आचार्यवर्ग समाधि प्राप्त होते हैं, तब वे श्रीरूप मञ्जरी आदि श्रीराधारानीके निजजनोंके आनुगत्यमें उनके समान 'सम' धी प्राप्तकर युगलकिशोरकी साक्षात् सेवा प्राप्त करते हैं।"

विरहका अनुभव किसको होगा?

१९९१ में श्रील गुरुदेवने अपने एक प्रवचनमें कहा था—"किसको विरहकी अनुभूति होगी? केवल उन्हीं विशेष भक्तोंको जो श्रील गुरुदेवके निकट अपनेको कृतज्ञ और ऋणी अनुभव करते हैं तथा जिन्होंने श्रील गुरुदेवकी विश्रम्भभावसे सेवा की है। ऐसे भक्तोंमें 'मैं अति तुच्छ हूँ और श्रील गुरुदेव अतिश्रेष्ठ हैं'—ऐसा भाव नहीं आयेगा। ऐश्वर्य या सम्भ्रम भाव नहीं रहेगा,अन्यथा क्रन्दन ही नहीं होगा।

श्रील गुरुदेवसे विरह विभिन्न स्तरोंमें हो सकता है। जब हम उनकी दया, कृपा और श्रेष्ठतापर विचार करते हैं, तब एक प्रकारका भाव उदित होता है। किन्तु जब हम स्मरण

करते हैं कि वे हमारे कितने प्रिय एवं निकट थे और वे हमें कितना स्नेह करते थे,तब हम उनके लिए अत्यधिक क्रन्दन कर सकेंगे।

श्रीयशोदा मैया कृष्णके लिए श्रीनन्द बाबासे अधिक क्रन्दन कर सकती हैं। किन्तु गोपियाँ श्रीयशोदा मैयासे भी अधिक क्रन्दन कर सकती हैं, क्योंकि उनका श्रीकृष्णसे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारा भी ऐसा ही सम्बन्ध श्रीकृष्ण, श्रीमती राधारानी, हमारे श्रील गुरुदेव, श्रीरूप मञ्जरी, श्रील रूप गोस्वामी और गुरुवर्गोंके प्रति होना चाहिए। तभी हम उनकी कृपाके लिए क्रन्दन कर सकते हैं। किन्तु यदि अभी तक हमारा श्रील गुरुदेवसे घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ ही नहीं है, तब हम श्रीमती राधिका, श्रीकृष्ण और श्रीरूप मञ्जरी आदिसे अपने सम्बन्धके विषयमें कैसे समझ पायेंगे। हमारी भजनमें उन्नति श्रीगुरुदेवसे हमारी घनिष्ठता या हम कितने विश्रम्भभावसे श्रीगुरुदेवकी सेवा कर रहे हैं, इसके ऊपर निर्भर करती है। यदि हम श्रील गुरुदेवके लिए क्रन्दन कर सकेंगे, तभी हम श्रीमती राधारानीके लिए भी क्रन्दन कर सकेंगे, किन्तु यदि हम श्रील गुरुदेवके लिए ही क्रन्दन नहीं कर सकेंगे, तो फिर श्रीमती राधारानीके लिए क्रन्दन करना कैसे सम्भवपर होगा। इसीलिए हमें श्रील गुरुदेवके लिए आन्तरिक रूपसे क्रन्दन करना चाहिए।

श्रीनवद्वीपमें समाधि लेनेका रहस्य

श्रील गुरुदेवने गुप्त गोवर्धन अथवा गोवर्धनसे अभिन्न श्रीकोलद्वीपमें स्थित श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठके प्रांगनमें समाधि ग्रहण की है। जिस प्रकार श्रीनवद्वीप–धाम महावदान्य, अपराधोंको ग्रहण नहीं करनेवाले तथा परम करुण है, श्रील गुरुदेव भी उसी प्रकार महावदान्य, परम उदार, करुण और समस्त दोषोंको क्षमा कर देने वाले हैं। श्रीनवद्वीप धामकी कृपाके बिना श्रीवृन्दावन धामकी कृपा असम्भव है तथा श्रीश्रीराधाकृष्णकी सेवाकी प्राप्ति भी असम्भव है, इसी आदर्शको स्थापित करनेके उद्देश्यसे ही श्रीलगुरुदेवने श्रीधाम नवद्वीपमें समाधि ग्रहण की हैं।

और भी, वे अपने परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव तथा अपने परमप्रिय गुरुभ्राता श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज और श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजके समीप रहना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने परमगुरुदेव और श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी समाधि तथा श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजकी समाधिके बीचमें समाधि ग्रहण की हैं।

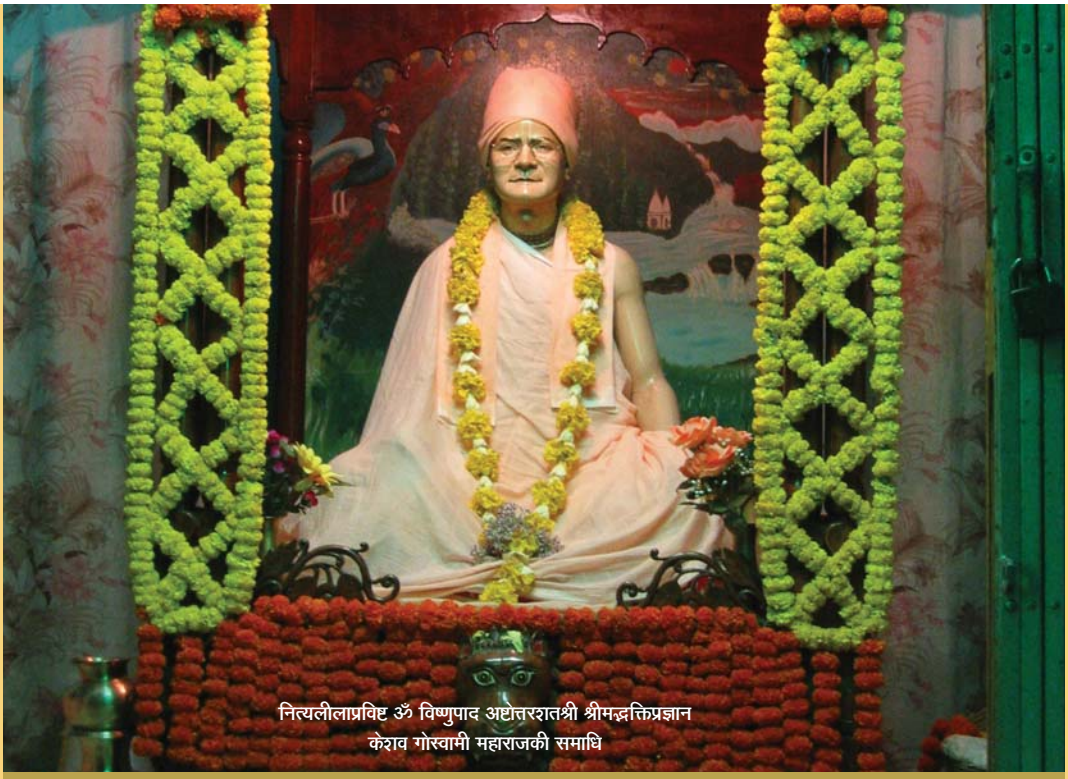

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी समाधि

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी समाधि

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी समाधि

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजकी समाधि

कृतज्ञता

जिन भक्तोंने जिस किसी भी प्रकारसे श्रील गुरुदेवकी सेवामें योगदान दिया है, हम सभी उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, भगवान् उनका चिरमङ्गल विधान करें।

[प्रस्तुति—श्रीपाद भक्तिवेदान्त सिद्धान्ती महाराज, श्रीमान सञ्जय दास ब्रह्मचारी]

श्रील गुरुदेवके प्रति अपनी कृतज्ञताका स्मरण करते हुए श्रील गुरुदेवके चरणाश्रित रैक्मो प्रेसके श्रीमान् राकेश भार्गव तथा श्रीमान् मुकेश भार्गवने इस व्यास–पूजा एवं विरह–विशेषांक संख्याके सम्पूर्ण व्यय भारको वहन करके इस विशेषांकको विरही भक्तोंको उपहार स्वरूप प्रदान किया है। इस विशेष सेवाके लिये श्रील गुरुदेव अपने नित्यधामसे इन पर विशेष कृपा वर्षित करें—यही श्रील गुरुदेवके अभय चरणकमलोंमें विनम्र प्रार्थना है।

'श्रीश्रीभागवत पत्रिका' का सम्पादक एवं कार्यकारी मण्डल

विरह-महोत्सव

श्रीगौड़मण्डल

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीप

श्रीव्रजमण्डल

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ, गोवर्धन

श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावन

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा

श्रीक्षेत्र–मण्डल

श्रीजयश्री–दामोदर गौड़ीय मठ, जगन्नाथ पुरी